LL.B.-6th Sem. Paper-I Administrative Law-II

प्रश्न न0 1– लोकहितवाद क्या है? इसकी परिभाषा, विशेषताओं एवं सामाजिक कार्यों में विस्तार की चर्चा कीजिए।

उत्तर– लोकहित वाद (PIL) ऐसा वाद या न्यायिक कार्यवाही है जिसमें जन साधारण अथवा जनता के एक बड़े वर्ग का हित निहित होता है। अथवा दूसरे शब्दों में यह कह सकते है कि ऐसा वाद अथवा न्यायिक कार्यवाही अथवा मामला जिसमे जन साधारण अथवा समाज का हित हो वह लोकहित वाद कहलाता है।

लोकहित वाद निर्धन व कमजोर वर्ग के लोगों को न्याय दिलाने का एक अनूठा मंच है। जब कोई व्यक्ति निर्धनता, आर्थिक कमजोरी या अन्य किसी कारण से न्यायालय में वाद पेश करने अथवा न्यायिक कार्यवाही करने में असमर्थ रहता है तब उसकी और से अन्य व्यक्ति, स्वैच्छिक संगठन अथवा संस्था द्वारा लोकहित वाद के माध्यम से न्यायालय में वाद अथवा न्यायिक कार्यवाही पेश की जाती है। जैसे– कोई व्यक्ति अर्थाभाव (निर्धनता) के कारण न्यायालय में देने का साहस नहीं जुटा पाता है तो उसकी ओर से कोई भी अन्य व्यक्ति या संगठन न्यायालय में दस्तक दे सकता है, यही लोकहित वाद है।

उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश कृष्ण अय्यर का कहना है कि – ''पीडित व्यथित व्यक्ति के ही न्यायालय में जा सकने की संकुचित धारणा अब समाप्त हो गई है। उसका स्थान अब वर्ग कार्यवाही, लोकहित वाद, प्रतिनिधि वाद आदि ने ले लिया है। अब कोई भी व्यक्ति जो किसी लोकहित (Public Interest) से जुड़ा है, ऐसे हितों की सुरक्षा के लिए न्यायालय में जा सकता है।''

ब्लैक लॉ डिक्शनरी के अनुसार– "जनहित याचिका का अर्थ है जनहित या सामान्य हित के प्रवर्तन के लिए न्यायालय में शुरू की गई कानूनी कार्रवाई जिसमें जनता या समुदाय के वर्ग का आर्थिक हित हो या कोई ऐसा हित हो जिससे उनके कानूनी अधिकार या दायित्व प्रभावित हों।''

1981 में न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती ने जनहित याचिका की अवधारणा को इस प्रकार स्पष्ट किया, ''जहां किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के एक निश्चित वर्ग को किसी संवैधानिक या कानूनी अधिकार के उल्लंघन के कारण कोई कानूनी गलत या कानूनी चोट पहुंचाई जाती है या किसी संवैधानिक या कानूनी प्रावधान के उल्लंघन में या कानून के अधिकार के बिना कोई बोझ डाला जाता है या ऐसा कोई कानूनी गलत या कानूनी चोट या अवैध बोझ धमकी दी जाती है और ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के एक निश्चित वर्ग को गरीबी, असहायता या विकलांगता या सामाजिक या आर्थिक रूप से वंचित स्थिति में राहत के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में असमर्थ कोई भी व्यक्ति अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में उचित निर्देश, आदेश या रिट के लिए आवेदन कर सकता है और ऐसे व्यक्ति या निश्चित वर्ग के व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय में ऐसे व्यक्ति या निश्चित वर्ग के व्यक्तियों को हुई कानूनी गलती या कानूनी क्षति के लिए न्यायिक निवारण की मांग कर सकता है।

लोकहित वाद का विस्तार–

लोकहित वाद का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके क्षेत्र का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जा सकता है कृ विषयवस्तु की दृष्टि से तथा अधिकारिता (locus standi) की दृष्टि से।

विषय–वस्तु (subject matter) की दृष्टि से– (i) जो व्यापक जन हित (public interest) से जुड़े हुए हैंय

(ii) जिनमें निजी हित (private interest) निहित नहीं है;

(iii) जो राजनीति से प्रेरित नहीं है।

ऐसे अनेक मामले हैं जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि निजी हित से जुड़े मामले लोकहित वाद के माध्यम से नहीं उठाये जा सकते हैं। (स्वतंत्रता सेनानी रामचन्द्र बिहारी सेवाश्रम बनाम स्टेट ऑफ बिहार, ए.आई.आर. 2008 एन.ओ.सी. 98, पटना, नेशनल कौंसिल फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, ए.आई.आर. 2007, एस. सी. 2631)।

अधिकारिता' (locus standee) की दृष्टि से–लोकहित से जुड़े मामलों को किसी भी व्यक्ति अथवा संगठन द्वारा न्यायालय में उठाया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि पीड़ित अथवा व्यथित व्यक्ति ही न्यायालय में दस्तक दें। । सामान्य नियम यह है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत कोई रिट केवल उसी व्यक्ति द्वारा संस्थित की जा सकती है जिसके विधिक अधिकारों का अतिक्रमण हुआ हो। लेकिन अब समाज का कोई भी व्यक्ति, संघ या संगठन किसी ऐसे व्यक्ति या वर्ग के विधिक अधिकारों के संरक्षण के लिए न्यायालय में दस्तक दे सकता है जो निर्धनता या अन्य किसी कारण से न्यायालय तक पहुँचने में असमर्थ हैद्य आवश्यक मात्र यह है कि ऐसे मामलों में व्यापक जनहित निहित हो। लोकहित वाद के बढ़ते हुए क्षेत्र का अच्छा उदाहरण पत्रों एवं समाचार पत्रों की कतरनों को रिट मानकर उन पर कार्यवाही किया जाना है। पिछले कुछ वर्षों से समाचार पत्रों की कतरनों तथा पोस्ट कार्डों व पत्रों को रिट मानकर कार्यवाही करने की प्रवृत्ति में अभिवृद्धि हुई है। बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया (ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 805), पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया (ए.

आई. आर. 1982 एस.सी. 1473), सुनील बचा बनाम दिल्ली प्रशासन (ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 1579) आदि ऐसे अनेक मामले हैं जिनमें पत्रों एवं समाचारों की कतरनों को रिट मानकर कार्यवाही की गई है।

लोकहित वाद के लिए आवश्यक यह है कि –

(i) ऐसा मामला व्यापक जनहित से जुड़ा हुआ हो;

(ii) उसमें किसी का निजी हित निहित नहीं हो;

(iii) वह सद्भावपूर्वक हो;

(iv) राजनीति से प्रेरित न हो।

गंगा के पानी एवं ताज के सौन्दर्य को प्रदूषण से बचाना आदि लोकहित वाद के अच्छे उदाहरण हैं।

पर्यावरण एवं पारिस्थिति के मामले लोक हित वाद के माध्यम से उठाये जा सकते हैं। (बॉम्बे डाईंग एण्ड मेन्यूफेक्चरिंग क. लि. बनाम बम्बई एन्वायरमेन्टल एक्शन ग्रुप, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 1489)।

गिरीश व्यास बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र (ए.आई.आर. 2012 एस.सी. 2043) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि लोकहित वाद सरकार एवं सरकारी तंत्र के लिए एक चुनौती भी है और वह उन्हें इस बात का अवसर भी प्रदान करता है कि वे मानव के मूलभूत अर्थात् बनियादी अधिकारों को अर्थपूर्ण बनाये।

प्रश्न न0 2– बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख क्या है? न्यायालय द्वारा प्रत्यक्षीकरण लेख जारी करने के कारण एवं इसकी प्रकृति की विवेचना कीजिए।

उत्तर– बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख, जिसे श्ग्रेट रिटश भी कहा जाता है, एक याचिका है जिसे हिरासत में लिए गए व्यक्ति द्वारा न्यायालय में दायर की जा सकती है. इस लेख का इस्तेमाल किसी कैदी या अन्य बंदी को अदालत के सामने लाने के लिए किया जाता है. इसका मकसद यह पता लगाना होता है कि व्यक्ति की कैद या हिरासत वैध है या नहीं. बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख के जरिए, यह भी पता चलता है कि गिरफ्तारी और हिरासत से जुड़े तथ्यों में कोई गड़बड़ी तो नहीं है. जैसे कि, गिरफ्तारी की तारीख गलत हो, बुकिंग शीट पर आरोप गलत लिखे हों, या अपराधी की जन्मतिथि गलत हो. बंदी प्रत्यक्षीकरण लेख के जरिए, किसी भी प्रत्यर्पण प्रक्रिया, जमानत की राशि, और अदालत के अधिकार क्षेत्र की भी जांच की जा सकती है।

हैबियस कॉर्पस लैटिन शब्द है जिसका मतलब है 'आपको शव अपने पास रखना होगा।' यह न्यायालय द्वारा जारी किया गया आदेश है, जिसमें बंदी को न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है और यह जांच की जाती है कि गिरफ्तारी वैध थी या नहीं।

परमादेश रिट–परमादेश रिट किसी भी कानून या विधि द्वारा स्वीकृत किसी प्राधिकरण द्वारा किसी व्यक्ति, निगम या किसी अन्य प्राधिकरण को कोई सार्वजनिक कर्तव्य निभाने के लिए जारी किया गया आदेश या आदेश है।

निषेधाज्ञा– निषेधाज्ञा रिट का अर्थ है उच्च अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ अधिकारी को जारी किया गया रिट, ताकि कानून द्वारा निषिद्ध किसी चीज को रोका जा सके। यह रिट केवल न्यायिक और अर्ध–न्यायिक निकाय के विरुद्ध ही जारी की जा सकती है।

Certiorari की रिट–सर्टिओरारी शब्द लैटिन भाषा का शब्द है जिसका मतलब है सूचित होना। यह रिट उच्च न्यायालय द्वारा निचली अदालत के कार्यों की समीक्षा करने के लिए जारी की जाती है।

अधिकार पृच्छा रिट–क्वो वारन्टो रिट का अर्थ है किस प्राधिकारी द्वारा। यह रिट जारी की जाती है जिसमें किसी व्यक्ति को यह दिखाने की आवश्यकता होती है कि उसने किस प्राधिकारी द्वारा अपनी शक्तियों या अधिकारों का प्रयोग किया है।

अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को इस तरह की रिट जारी करने का अधिकार है। हालांकि अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर रिट जारी करता है, लेकिन अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को कानूनी और मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए रिट जारी करने का व्यापक क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका का अर्थ– बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट एक कानूनी प्रक्रिया है जो अवैध रूप से हिरासत में लिए गए व्यक्ति के लिए एक उपचारात्मक उपाय के रूप में कार्य करती है। बंदी प्रत्यक्षीकरण शब्द लैटिन शब्द है जिसका अर्थ है शव को न्यायालय के समक्ष लाना या प्रस्तुत करना। यह गैरकानूनी रूप से हिरासत में लिए गए व्यक्ति को उपलब्ध सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है। इस रिट का उपयोग करने का मूल उद्देश्य किसी व्यक्ति को गैरकानूनी हिरासत या कारावास से मुक्त करना है। यह रिट बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को निर्धारित करती है।

चित्रण–A को पुलिस अधिकारी B ने बिना वारंट के हिरासत में ले लिया है। A के परिवार द्वारा A का पता जानने के लिए किए गए सभी प्रयास व्यर्थ हो गए। चूँकि उसे B (पुलिस अधिकारी) द्वारा गलत तरीके से हिरासत में लिया गया था, इसलिए A के परिवार द्वारा उसकी ओर से अदालत में बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की जा सकती है।

बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका की प्रकृति–बंदी प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा का पता तेरहवीं शताब्दी में लगाया जा सकता है। बंदी प्रत्यक्षीकरण सह कारण रिट एक आदेश है जिसमें किसी अन्य व्यक्ति को हिरासत में लेने वाले व्यक्ति को अदालत में पेश करने और उसके कार्यों को उचित ठहराने के लिए कहा जाता है कि किस आधार पर और किस

अधिकार के तहत उसने उस व्यक्ति को हिरासत में लिया है। यदि अदालत को कारण के लिए कोई कानूनी औचित्य नहीं मिलता है, तो वह हिरासत में लिए गए या कैद किए गए व्यक्ति की तत्काल रिहाई का आदेश देगी।

बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के लिए कौन आवेदन कर सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए न्यायालयों ने विभिन्न मामलों में यह स्पष्ट कर दिया है कि जो व्यक्ति बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के लिए आवेदन कर सकता है, उसे

(1) अवैध रूप से बंधक या हिरासत में लिया गया व्यक्ति।

(2) वह व्यक्ति जो मामले के लाभ से अवगत है।

(3) वह व्यक्ति जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से परिचित है और स्वेच्छा से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर करता है।

(4) जब बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका अस्वीकार कर दी जाती है

बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका अस्वीकृत होने की निम्नलिखित स्थितियाँ हैं–

(1) जब न्यायालय के पास बंदी पर प्रादेशिक अधिकारिता नहीं होती।

(2) जब किसी व्यक्ति की हिरासत न्यायालय के आदेश से जुड़ी हो।

(3) जब हिरासत में लिया गया व्यक्ति पहले ही रिहा हो चुका हो।

(4) जब दोषों को दूर करके कारावास को वैध बना दिया गया हो।

(5) आपातकाल के दौरान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका उपलब्ध नहीं होगी।

(6) जब सक्षम न्यायालय गुण–दोष के आधार पर याचिका को खारिज कर देता है।

क्या इस रिट पर रिस जुडिकाटा का सिद्धांत लागू होता है

जब किसी व्यक्ति को अवैध रूप से बंधक बनाने की बात आती है, तो रिस जुडिकाटा का सिद्धांत लागू नहीं होता। अनुच्छेद 32 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए लगातार याचिका नए आधारों के साथ न्यायालय में दायर की जा सकती है, जो पहले दायर की गई याचिका में शामिल नहीं थे। बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए याचिका तभी स्वीकार्य है जब इसे स्वतंत्र अस्तित्व और अलग अधिकार क्षेत्र और योग्यता वाले फोरम में दायर किया जाए।

लल्लूभाई जोगीभाई पटेल बनाम भारत संघ एवं अन्य मामले में 15 दिसंबर, 1980 को यह माना गया कि बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के लिए कोई दूसरी याचिका न्यायालय में स्वीकार्य नहीं है, यदि वह पहली याचिका के समान ही आधारों पर दायर की गई हो।

निवारक निरोध–निवारक निरोध किसी व्यक्ति को भविष्य में किसी भी तरह का अपराध करने से रोकने के लिए उसे कारावास में रखना है। यह किसी व्यक्ति पर लगाई गई सजा या दंड के रूप में कार्य नहीं करता है, यह केवल एक एहतियाती तरीका है। निवारक निरोध और बंदी प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा एक साथ आती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22 में निवारक निरोध की प्रक्रिया बताई गई है और कानून का सख्ती से पालन करने की आवश्यकता है। संसद को इससे जुड़े विभिन्न कारणों से निवारक निरोध के लिए कानून बनाने का अधिकार है जैसे–

(1) रक्षा।

(2) विदेशी संबंध या देश के विदेशी मामले।

(3) इसका मुख्य उद्देश्य भारत और उसके राज्य को सुरक्षा प्रदान करना है।

(4) सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए।

हालाँकि, ऐसी हिरासत की पूर्व शर्तों की जाँच करके न्यायिक समीक्षा के माध्यम से निगरानी की जा सकती है।

वैकल्पिक उपाय– यदि प्रतिवादी हिरासत या कारावास के लिए वैध औचित्य देता है तो न्यायालय द्वारा बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी नहीं की जा सकती है। हालांकि, वैकल्पिक उपाय के मामले में, आवेदक को अभी भी बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने का अधिकार है। आवेदक के पास वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर इसे अस्वीकार नहीं किया जाता है।

सबूत का बोझ– सबूत का भार व्यक्ति या प्राधिकारी पर होता है कि वह न्यायालय को यह संतुष्टि दे कि व्यक्ति की हिरासत या कारावास कानूनी आधार पर किया गया था। और यदि बंदी यह आरोप लगाता है कि कारावास दुर्भावनापूर्ण था और व्यक्ति को हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र से बाहर था, तो सबूत का भार बंदी पर होता है।

प्रादेशिक अधिकार क्षेत्र– भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत, सर्वोच्च न्यायालय को भारत के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर और बाहर सभी प्राधिकरणों पर अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को उस मामले से निपटने का अधिकार है जब उच्च न्यायालय का उस प्राधिकरण पर नियंत्रण हो और कार्रवाई का संभावित कारण उत्पन्न हो।

आपातकालीन उद्घोषणा के दौरान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका– आपातकालीन उद्घोषणा के दौरान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को बनाए रखा जा सकता है, क्योंकि 1978 में 44वें संशोधन के बाद यह कहा गया था कि अनुच्छेद 20 और 21 के तहत निहित मौलिक अधिकारों को निलंबित नहीं किया जा सकता है। और इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए, रिट याचिका अदालत में दायर की जा सकती है।

अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट जबलपुर बनाम शिव कांत शुक्ला 1976 एससी 1207 इस मामले को बंदी प्रत्यक्षीकरण मामले के रूप में भी जाना जाता है और यह जारी करने के आधार और इस रिट के व्यवहार्यता पहलू पर आधारित

था। यह पूरा मामला उस स्थिति के इर्द–गिर्द घूमता है जब आपातकाल की घोषणा की गई थी और यह सवाल उठाया गया था कि क्या इस स्थिति में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट बनाए रखने योग्य है या नहीं। यह माना गया कि जैसा कि लिवरसिज बनाम एंडरसन के मामले में आपातकाल के दौरान सभी अधिकार निलंबित कर दिए गए थे, वैसा ही इस मामले में भी माना गया जहां राज्य के पास आपातकालीन स्थिति में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निहित अधिकारों, विशेष रूप से जीवन के अधिकार को रोकने की शक्ति है। इस निर्णय को भारतीय इतिहास का सबसे काला दिन माना गया।

शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य 1983 एससीसी 96 इस मामले में, लॉकअप में मारपीट की शिकार महिला कैदियों की स्थिति के बारे में सर्वोच्च न्यायालय को एक पत्र लिखा गया था और इस स्थिति के बारे में वादी द्वारा रिट याचिका दायर की गई थी, जो एक मानवाधिकार कार्यकर्ता है। न्यायालय द्वारा स्थिति और वादी द्वारा लगाए गए आरोपों की जांच करने के लिए एक जांच अधिकारी भेजा गया था। यह पाया गया कि आरोप सही थे। यह माना गया कि यदि हिरासत में लिया गया या बंद किया गया व्यक्ति रिट के लिए आवेदन नहीं कर सकता है, तो कोई अन्य व्यक्ति उसकी ओर से इसे दायर कर सकता है, जिसने लोकस स्टैंडी दृष्टिकोण को रद्द कर दिया।

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन 1980 एआईआर 1579 इस मामले में न्यायालय ने माना कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट याचिका न्यायालय में न केवल कैदी की गलत या अवैध हिरासत के लिए बल्कि उसकी हिरासत के लिए जिम्मेदार अधिकारी द्वारा किसी भी तरह के दुर्व्यवहार और भेदभाव से उसकी सुरक्षा के लिए भी दायर की जा सकती है। इस प्रकार याचिका गैरकानूनी हिरासत के लिए दायर की जा सकती है और हिरासत के तरीके की जांच की जा सकती है।

नीलाबती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य इस मामले में याचिकाकर्ता के बेटे को उड़ीसा पुलिस पूछताछ के लिए ले गई थी। उसे खोजने के लिए किए गए सभी प्रयास व्यर्थ साबित हुए। इसलिए अदालत में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट याचिका दायर की गई। याचिका के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता के बेटे का शव रेलवे ट्रैक पर मिला। याचिकाकर्ता को 1,50,000 रुपये का मुआवजा दिया गया।

कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट दार्जिलिंग एवं अन्य 1974 एआईआर 510 इस मामले में, यह माना गया कि शव को अदालत के समक्ष पेश करने की पारंपरिक पद्धति का पालन करने के बजाय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए हिरासत की वैधता पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। इस मामले में मुख्य रूप से मामले की प्रकृति और दायरे पर ध्यान केंद्रित किया गया और कहा गया कि यह रिट एक प्रक्रियात्मक रिट है न कि एक मूल रिट।

ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य इस मामले में, निवारक निरोध अधिनियम की संवैधानिक वैधता के आधार पर जांच की गई। यदि कोई विधानमंडल किसी व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करता है, तो उसे पहले ऐसा कानून बनाने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम होना चाहिए। यदि निरोध का समर्थन करने वाला कानून गैरकानूनी है, तो उसे गैरकानूनी माना जाता है। व्यक्ति को न्यायालय जाने का अधिकार है। बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के लिए आवेदन स्वीकार करने या अस्वीकार करने के मामले में कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर कर सकता है।

प्रश्न न0 3– अपकृत्य के सम्बन्ध में राज्य के दायित्व की विवेचना कीजिए संक्षिप्त में कीजिए। प्रभुता सम्पन्न कार्य एवं प्रभुताविहीन कार्यों अन्तर संक्षिप्त रूप में कीजिए।

उत्तर– संप्रभु प्रतिरक्षा सरकार या उसके प्रतिनिधियों द्वारा किए गए गलत कामों के लिए दिया जाने वाला तर्क है। जाहिर है, ये सार्वजनिक नीति के आधार पर हैं। नतीजतन, भले ही कार्रवाई योग्य दावे के सभी तत्व मौजूद हों, इस तर्क को देकर देयता को रोकना संभव है। संप्रभु प्रतिरक्षा का सिद्धांत ब्रिटिश न्यायशास्त्र से प्राप्त कॉमन लॉ के सिद्धांत पर केंद्रित है जिसके अनुसार राजा कोई गलत काम नहीं करता है और उस पर व्यक्तिगत लापरवाही या कदाचार का आरोप नहीं लगाया जा सकता है, और इस तरह उसे अपने सेवकों की लापरवाही या कदाचार के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। इस सिद्धांत का एक और हिस्सा यह है कि किसी राज्य पर उसकी अपनी अदालतों में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है और इसे संप्रभुता का एक तत्व माना जाता है।

उन्नीसवीं सदी के मध्य से लेकर हाल ही तक भारतीय न्यायालयों में यह सिद्धांत बदलता रहा। जब क्षतिपूर्ति के लिए कोई वैध दावा न्यायालयों के समक्ष लाया जाता है और उसे पुराने कानून द्वारा खारिज कर दिया जाता है, तो जाहिर है कि उसकी कोई वैधता नहीं होती, आक्रोश और स्पष्टीकरण के लिए अनुरोध होना स्वाभाविक है। वैध दावों को पराजित न होने देने के लिए भारतीय न्यायालय संप्रभु कार्यों के दायरे को छोटा करते रहे ताकि पीड़ित क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकें। भारत के विधि आयोग ने भी अपनी पहली रिपोर्ट में इस पुराने सिद्धांत को समाप्त करने का सुझाव दिया था। हालाँकि इस सिद्धांत को समाप्त करने के लिए मसौदा विधेयक कई कारणों से कभी पारित नहीं हुआ, और इसलिए इस सिद्धांत को भारतीय संविधान के अनुसार एकीकृत करने का निर्णय न्यायाधीश पर छोड़ दिया गया।

राज्य के संप्रभु और गैर–संप्रभु कार्य

राज्य के संप्रभु कार्यों को उन कार्यों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिनके निष्पादन के लिए राज्य न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी नहीं है। ये कार्य मुख्य रूप से देश की रक्षा, देश के सशस्त्र बलों के रखरखाव और क्षेत्र में शांति बनाए रखने से संबंधित हैं। ये कार्य केवल बाहरी संप्रभुता के लिए राज्य द्वारा किए जा सकते हैं और

इसीलिए वे सामान्य सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के अधीन नहीं हैं और मुख्य रूप से अविभाज्य कार्य हैं। लेकिन इसके अलावा, राज्य के कई संप्रभु कार्य हैं जो मुख्य रूप से अविभाज्य नहीं हैं जिनमें कराधान, कानून और व्यवस्था के रखरखाव सहित पुलिस कार्य, विधायी कार्य, कानून और नीतियों का प्रशासन और क्षमा प्रदान करना शामिल हैं।

जबकि गैर–संप्रभु कार्य वे कार्य हैं जो एक सामान्य सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आते हैं और यदि राज्य कोई गलत कार्य करता है या अनुबंध का उल्लंघन करता है, तो वह किए गए गलत कार्य के लिए उत्तरदायी होगा। लेकिन आज, राज्य के संप्रभु और गैर–संप्रभु कार्यों के बीच अंतर करना बहुत मुश्किल हो गया है। **पेनिनसुलर एंड ओरिएंटल स्टीम नेविगेशन कंपनी बनाम सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया के मामले के अनुसार** , अदालत ने पहली बार संप्रभु और गैर–संप्रभु कार्यों के बीच अंतर पर विचार किया। इसने कहा कि राज्य का सचिव अपने संप्रभु कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा और केवल वाणिज्यिक कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा। इस फैसले से अदालत को राज्य के कार्यों को समझने और व्याख्या करने में मदद मिली जब दायित्व का प्रश्न उठा। लेकिन यह तय करने के लिए कोई स्थापित प्रोटोकॉल या मानदंड नहीं था कि कौन सा कार्य संप्रभु है और कौन सा गैर–संप्रभु।

राज्य के संप्रभु और गैर–संप्रभु कार्यों के बीच अंतर करने वाले महत्वपूर्ण निर्णय–राज्य द्वारा किए जाने वाले कार्यों को समझने तथा राज्य के संप्रभु तथा गैर–संप्रभु कार्यों के बीच अंतर करने के लिए इनका उपयोग कैसे किया जा सकता है, यह समझने के लिए न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित निर्णय दिए गए हैं–

वैधानिक कर्तव्य का पालन–एक विशेष मापदंड है जिसके आधार पर न्यायालय यह तय कर सकता है कि कोई कार्य संप्रभु कार्य के अंतर्गत आता है या नहीं। शिवभजन दुर्गा प्रसाद बनाम राज्य सचिव के मामले में , जिसमें एक मुख्य कांस्टेबल को गिरफ्तार किया गया और उस पर मुकदमा चलाया गया। बाद में उसे बरी कर दिया गया। लेकिन याचिकाकर्ता ने राज्य के सचिव पर यह कहते हुए मुकदमा दायर किया कि वह कांस्टेबल द्वारा किए गए गलत काम के लिए उत्तरदायी है। न्यायालय ने माना कि सचिव कांस्टेबल के कृत्यों के लिए उत्तरदायी नहीं था।

सार्वजनिक पथ का रखरखाव– राज्य जन कल्याण के लिए सार्वजनिक मार्गों का रखरखाव करता है और इसमें कोई वाणिज्यिक उद्देश्य शामिल नहीं है। सार्वजनिक पथों का निर्माण और उनका रखरखाव संप्रभु कार्यों का एक हिस्सा है। मैकइनर्नी बनाम राज्य सचिव के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने माना कि सार्वजनिक सड़क के रखरखाव में, राज्य ने कोई वाणिज्यिक संचालन नहीं किया और इस प्रकार, सरकार द्वारा निर्मित सार्वजनिक सड़क के खंभे के संपर्क में आने से वादी को हुए किसी भी नुकसान के लिए वह उत्तरदायी नहीं है।

सैन्य सड़क का रखरखाव–यह भी सरकार के महत्वपूर्ण संप्रभु कार्यों में से एक है। सैन्य सड़क का रखरखाव सरकार द्वारा रक्षा के उद्देश्य से किया जाता है। **सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम कॉकक्राफ्ट के मामले में** , वादी को नौकर की लापरवाही के कारण चोट लगी थी। नौकर ने सैन्य सड़क पर बजरी का ढेर छोड़ दिया, जिस पर कोई नहीं चल रहा था। न्यायालय ने माना कि सरकार ऐसे कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होगी क्योंकि सैन्य सड़क का रखरखाव एक संप्रभु कार्य है।

युद्ध के दौरान माल की जब्ती– केसोराम पोद्दार एंड कंपनी बनाम सचिव के प्रसिद्ध मामले में युद्ध के दौरान माल की कमान संभालना एक संप्रभु कार्य कहा गया था। मामले के तथ्यों के अनुसार, एक कंपनी ने राज्य के सचिव पर हर्जाना वसूलने के लिए मुकदमा दायर किया क्योंकि प्रतिवादी द्वारा खरीदे गए कुछ सामानों की डिलीवरी लेने और भुगतान करने में विफल रहने के कारण कंपनी को भारी नुकसान हुआ। न्यायालय ने माना कि चूंकि माल और डिलीवरी का यह आदेश माल की कमान संभालने के अंतर्गत आता है जो एक संप्रभु कार्य है, इसलिए इस तरह के दावे को खारिज कर दिया जाता है।

रक्षा हेतु प्रशिक्षण– सरकार आम जनता की सुरक्षा के लिए प्रशिक्षण प्रदान करती है और इसीलिए यह एक संप्रभु कार्य भी है। **सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम नागेराव लिम्बाजी के मामले** में , जहां वादी ने रक्षा के लिए अभ्यास करने वाले क्षेत्र के पास विस्फोट के कारण अपनी उंगली के नुकसान के लिए राज्य के सचिव पर हर्जाने के लिए मुकदमा दायर किया था, अदालत ने माना कि बमबारी अभ्यास और रक्षा के लिए अन्य प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं दी जाती हैं, ये राज्य के संप्रभु कार्यों के अंतर्गत आते हैं क्योंकि ऐसे कार्य सरकार द्वारा अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं किए जाते हैं, बल्कि ये देश और उसके नागरिकों के कल्याण और सुरक्षा के लिए किए जाते हैं।

गिरफ्तारी और नजरबंदी– कानून और व्यवस्था बनाए रखने में गिरफ्तारी और हिरासत का कर्तव्य शामिल है। जब कोई कार्य सद्भावनापूर्वक किया जाता है तो यह राज्य का संप्रभु कार्य होता है। उन्होंने **एमए कादोर जैलानी बनाम राज्य सचिव के मामले** में राज्य सचिव के खिलाफ हर्जाने के बारे में शिकायत दर्ज कराई , जहां कुछ पुलिस अधिकारियों ने वादी को गलत तरीके से हिरासत में लिया और कैद कर लिया। यह माना गया कि, जब तक गलत काम या तो आदेश द्वारा या उसकी ओर से नहीं किया गया था और बाद में इसे स्वीकार या अपनाया गया था, तब तक सरकार अपने अधिकारियों द्वारा किए गए गलत कामों के लिए जिम्मेदार नहीं थी। इसी तरह, गुरुचरण कौर बनाम मद्रास प्रांत के मामले में , डीएसपी ने पुलिस उपनिरीक्षक को स्टेशन पर जाने और अन्य महाराजा को स्टेशन छोड़ने से रोकने का निर्देश दिया। ट्रेन के आने पर, उपनिरीक्षक ने सद्भावना के तहत, हालांकि गलत धारणा के तहत काम करते हुए, फैसला किया कि उसे महारानी को हिरासत में लेना है, न केवल महारानी को ट्रेन में चढ़ने से रोका बल्कि लोहे की बाड़ में गेट भी बंद कर दिया और उसके पास दो कांस्टेबलों को तैनात किया। महारानी

और उनकी बेटी ने गलत तरीके से कारावास के बारे में शिकायत दर्ज कराई। यह माना गया कि सरकार को अपने वैधानिक कर्तव्य की पूर्ति में सद्भावनापूर्वक किए गए पुलिस आचरण के लिए जवाबदेह नहीं ठहराया जाना चाहिए। इस प्रकार, यदि सरकारी कर्मचारी का अन्यायपूर्ण हस्तक्षेप अच्छे विवेक से किया जाता है, तो राज्य जिम्मेदार नहीं होगा।

सैन्य कर्तव्य का पालन–भारत संघ बनाम हरबंस सिंह के मामले में , जहाँ सैन्य सेवा में लगे भारत के सैन्य विभाग के एक ट्रक चालक की लापरवाही और असावधानी के परिणामस्वरूप, वादी के पिता को सेवारत सैन्य कर्मियों को भोजन प्रदान करते समय टक्कर मार दी गई और कुचल दिया गया। राज्य को उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है क्योंकि चालक का कार्य संप्रभु कार्य करते समय किया गया था।

कानून और व्यवस्था बनाए रखना– उड़ीसा राज्य बनाम पद्मलोचन के मामले में दिए गए तथ्यों के अनुसार , उड़ीसा सैन्य पुलिस ने अपनी मांगों को लेकर जिला न्यायालय के सामने एकत्रित भीड़ पर लाठीचार्ज किया। यह दावा किया गया कि पुलिस कर्मियों ने मजिस्ट्रेट या अन्य पुलिस अधिकारियों के आदेश के बिना भीड़ के सदस्यों पर हमला किया, जिसके परिणामस्वरूप वादी को चोटें आईं। उसने खुद को लगी चोटों के लिए राज्य के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई। निचली अदालत ने वादी के पक्ष में फैसला सुनाया लेकिन, अपील पर, उच्च न्यायालय ने माना कि पुलिस अधिकारियों ने बिना प्राधिकरण के अपने कर्तव्यों के निष्पादन में कदाचार किया और यह गैरकानूनी कृत्य को सौंपे गए संप्रभु कार्य की क्षमता से छूट नहीं देता है और आगे माना कि वादी को जो भी चोटें आईं

राजस्व संग्रहण– कुप्पन्ना चेट्टी एंड कंपनी बनाम अनंतपुर के कलेक्टर के मामले में , तहसीलदार ने मद्रास राजस्व वसूली अधिनियम के तहत चल माल को गलत तरीके से कुर्क किया और इस वजह से वादी को भारी नुकसान हुआ। न्यायालय ने माना कि चूंकि आय का संग्रह एक संप्रभु या विशुद्ध रूप से राज्य की गतिविधि थी, अपने वैधानिक कर्तव्यों का उल्लंघन करते हुए, राज्य ऐसी गतिविधि के दौरान किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा किए गए किसी भी अपकार के लिए उत्तरदायी नहीं था। इसी तरह आंध्र प्रदेश राज्य बनाम अंकन्ना के मामले में भी इसे बरकरार रखा गया था। मामले के तथ्य के अनुसार, वादी की एक बैलगाड़ी को राजस्व वसूली अधिनियम के तहत भूमि राजस्व की वसूली के लिए आय अधिकारियों द्वारा गैरकानूनी और दुर्भावनापूर्ण तरीके से रोक लिया गया था। न्यायालय ने कहा कि भूमि आय का संग्रह एक संप्रभु गतिविधि थी और राज्य अपने कर्मचारियों के दुर्भावनापूर्ण कृत्य के लिए जिम्मेदार नहीं था, जब वह कार्य किसी कानून के तहत किया गया था

उपरोक्त मामले के कानूनों के माध्यम से, यह व्याख्या की जा सकती है कि राज्य को आय संग्रह आदि जैसे संप्रभु कार्यों के क्षेत्र में अपने विधायी कर्तव्यों के कथित अभ्यास में किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा किए गए किसी भी गलत कार्य के लिए जवाबदेह नहीं ठहराया जा सकता है।

न्याय का प्रशासन–न्याय प्रशासन, जो संप्रभु कार्यों के अभ्यास में राज्य के कार्यों में से एक है, ऐसे व्यक्तियों को पहचानना और कानून के अनुसार उनके परीक्षण का आदेश देना है। यदि लोग न्याय प्रशासन का निर्वहन करते समय दोषी पाए जाते हैं, तो न्यायिक कर्तव्यों के ढांचे को ठीक से निष्पादित नहीं किया जा सकता है। यह उस व्यक्ति पर लागू होता है जिसके न्यायिक अधिकारी के रूप में कार्यों को उसकी न्यायिक क्षमता में माना जा सकता है। सरकार के एक एजेंट के पास न्यायिक और कार्यकारी दोनों शक्तियाँ होंगी। केवल तभी जब वह न्याय प्रशासन के दौरान न्यायिक कार्यों का निर्वहन करता है, तो उसे दायित्व से बख्शा जाएगा। भले ही उसने अपनी कार्यकारी क्षमता में कार्य करते समय झूठे कारावास का अपराध किया हो, वह संप्रभु प्रतिरक्षा का दावा नहीं कर सकता।

द्वेशपूर्ण अभियोजन– महाराजा बोस बनाम गवर्नर–जनरल इन काउंसिल के मामले में याचिकाकर्ता ने गवर्नर–जनरल इन काउंसिल के खिलाफ झूठी गिरफ्तारी और नुकसान के लिए दुर्भावनापूर्ण अभियोजन का मुकदमा दायर किया था। मामले के तथ्यों के अनुसार, शिकायतकर्ता प्रतिवादी की रेलवे से हावड़ा से पटना की यात्रा कर रहा था। वह ट्रेन के इंट्राक्लास डिब्बे में चढ़ गया। रात के करीब 1 बजे, जब उक्त ट्रेन आसनसोल रेलवे स्टेशन पर पहुंची, तो तीन भारतीय सैनिकों ने जबरन वादी की सीट पर कब्जा कर लिया। शिकायतकर्ता ने इस पर आपत्ति जताई और उसने दो रेलवे कर्मचारियों को इसके बारे में बताया। हालांकि, उन्होंने कोई कार्रवाई नहीं की।

प्रतिवादी के नौकर, जिनके विरुद्ध वादी ने पहले शिकायत की थी, ने पहुंचकर काफी पूछताछ की तथा सिपाहियों से इसे खाली करने को कहा। जब ड्यूटी असिस्टेंट स्टेशन पर इस तरह की चर्चा चल रही थी, तब स्टेशन मास्टर ने डिब्बे में पहुंचकर वादी पर चेन खींचने का आरोप लगाया तथा गंदी भाषा का प्रयोग कर उसे अपमानित किया तथा उसके साथ गंभीर मारपीट की। फिर कभी सुनवाई किए बिना ही वादी को डिब्बे से बाहर खींच लिया गया।

राज्य का प्रतिनिधिक दायित्व और अपकृत्य दायित्व– प्रतिनिधि दायित्व एक प्रकार का कठोर, द्वितीयक दायित्व है जो एजेंसी के सामान्य कानून सिद्धांतों के तहत उत्पन्न होता है, अर्थात रेस्पोंडेट सुपीरियर जिसका अर्थ है अपने अधीनस्थ के कार्यों के लिए वरिष्ठ की जिम्मेदारी, या, व्यापक अर्थ में, किसी तीसरे व्यक्ति की जिम्मेदारी जिसके पास उल्लंघनकर्ता की गतिविधियों को नियंत्रित करने का 'अधिकार, क्षमता या कर्तव्य' है। जिम्मेदारी अपराधी पर नहीं बल्कि उस व्यक्ति पर डाली जाती है जिसे अपराधी को नियंत्रित करना चाहिए। अधिकारियों की अपनी गलतियों के लिए नैतिक जिम्मेदारी अधिक प्रचलित हो गई है, जिसमें शासक और संबंधित व्यक्ति के बीच समानता का संकेत देने वाले प्रमाण हैं।

केवल तभी जब राजा को किसी सार्वजनिक अधिकारी की जिम्मेदारी संभालना आवश्यक लगता था, तब इसका उपयोग राज्य के खजाने से शुल्क का भुगतान करने के लिए किया जाता था। धर्म को राजा और प्रजा दोनों पर

बाध्यकारी नागरिक कानून के रूप में देखा जाता था। हिंदू कानून और मुस्लिम कानून दोनों में जहाँ तक संभव था, शासक स्वयं न्याय करते थे और बाकी का काम असाधारण रूप से विद्वान, ईमानदार न्यायाधीशों द्वारा किया जाता था। हाल ही में सबसे उल्लेखनीय घटना न्यायालय की यह घोषणा रही है कि उसके पास मुआवजा देने का अधिकार क्षेत्र है।

भारत में राज्य दायित्व को संविधान के अनुच्छेद 300(1) से आसानी से समझा जा सकता है , जो मूल रूप से भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 176 के माध्यम से आया था । इसका पता भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 32 से लगाया जा सकता है , जिसका मूल भारत सरकार अधिनियम, 1858 की धारा 65 में देखा जा सकता है । इसलिए यह देखा जाएगा कि 1858 के अधिनियम से शुरू होने वाले विधान की श्रृंखला के अनुसार, प्रत्येक राज्य की भारत सरकार और संविधान ईस्ट इंडिया कंपनी के उत्तराधिकार के अनुसार हैं। दूसरे शब्दों में, सरकार की जिम्मेदारी वही है जो 1858 से पहले ईस्ट इंडिया कंपनी की थी।

<u>प्रश्न न0 4–</u> शक्ति पृथक्करण से आप समझते है भारत में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को किस प्रकार से लागू किया किया है?

<u>उत्तर–</u> सत्ता का पृथक्करण लंबे समय से एक विवादास्पद मुद्दा रहा है। सरकार में, यह महत्वपूर्ण है। विवाद का एक और मुद्दा यह है कि यह हमारे संविधान में शामिल है या नहीं। इस शोध पत्र का मुख्य लक्ष्य शक्तियों के पृथक्करण को परिभाषित करना है। यह महत्वपूर्ण क्यों है? किस प्रकार के संविधान मौजूद हैं, और हमारे पास कौन सा है? क्या हमारे संविधान में जाँच और संतुलन प्रणाली है? न्यायपालिका की स्वतंत्रता का क्या महत्व है?

शक्तियों के पृथक्करण के मोंटेस्क्यू के सिद्धांत का अमेरिका में कैसे उपयोग किया जाता है, और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या यह हमारे संविधान में निहित है या नहीं? चूँकि इस शोध का लक्ष्य उन सामान्य व्यक्तियों को शिक्षित करना और जागरूक करना है जो मानते हैं कि कानून जटिल है और आम लोगों के लिए नहीं है, इसलिए अत्यंत सरल अंग्रेजी का उपयोग किया जाता है।

''जब विधायी और कार्यकारी शक्तियाँ एक ही व्यक्ति या एक ही निकाय या मजिस्ट्रेट में एकजुट होती हैं, तो कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती। फिर, अगर न्यायिक शक्ति विधायी और कार्यकारी शक्तियों से अलग नहीं होती है, तो कोई स्वतंत्रता नहीं है। जहाँ यह विधायी शक्ति के साथ जुड़ती है, वहाँ विषय का जीवन और स्वतंत्रता मनमाने नियंत्रण के अधीन हो जाएगी, क्योंकि तब न्यायाधीश विधायक होगा। जहाँ यह कार्यकारी शक्ति के साथ जुड़ती है, वहाँ न्यायाधीश हिंसा और उत्पीड़न के साथ व्यवहार कर सकता है। अगर एक ही व्यक्ति या एक ही निकाय, चाहे कुलीनों का हो या लोगों का, उन तीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, कानून बनाने, सार्वजनिक प्रस्तावों को निष्पादित करने और व्यक्तियों के मामलों की सुनवाई करने के लिए, सब कुछ खत्म हो जाएगा।''

वेड और फिलिप्स शक्तियों के पृथक्करण की तीन परिभाषाएँ देते हैं–

(1) सरकार की एक शाखा को दूसरे के कर्तव्यों का पालन नहीं करना चाहिए, जैसे मंत्रियों को विधायी अधिकार देना;

(2)सरकार की एक शाखा को दूसरी शाखा के कर्तव्यों के निर्वहन पर नियंत्रण या हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जैसे कि जब न्यायपालिका कार्यपालिका शाखा से अलग हो या जब मंत्री संसद के प्रति जवाबदेह न हों;

(3) एक ही व्यक्ति को सरकार की तीन शाखाओं में से एक से अधिक में सेवा नहीं करनी चाहिए, जैसे कि संसद में मंत्री के रूप में बैठना।

शक्तियों के पृथक्करण सिद्धांत में सरकारी शक्तियों के संरचनात्मक वर्गीकरण के तीन सूत्र शामिल हैं–

(1) एक व्यक्ति को सरकार की तीन शाखाओं में से एक से ज्यादा में काम नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए, मंत्रियों को हाउस ऑफ कॉमन्स में बैठने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

(2) किसी सरकारी संस्था को किसी अन्य सरकारी संस्था के काम में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

(3) सरकार के एक अंग का कार्य दूसरे अंग द्वारा नहीं किया जाना चाहिए।

इसी प्रकार जेम्स मेडिसन ने कहा है कि ''इस बात की तुलना में कोई अन्य राजनैतिक सत्य इतने अधिक अन्तर्निहित महत्व का या स्वतन्त्रता के उद्बुद्ध पोषक अधिकार के रूप में मान्य नहीं है कि सभी शक्तियों, विधायिनी, कार्यपालिकीय और न्यायपालिकीय का एक ही हाथों में केन्द्रीयकरण उचित रूप में ही अत्याचार तन्त्र की दूसरी परिभाषा है।''

शक्ति–पृथक्करण के सिद्धान्त का विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इग्लैण्ड का संविधान परम्पराओं करी देन है। यहाँ का संविधान अलिखित संविधान है। अतः अमेरिका के संविधान से पृथक् अस्तित्व रखने वाला संविधान है अतः शक्ति–पृथक्करण का सिद्धान्त प्रारम्भ में यहाँ प्रभावहीन हो रहा है।

भारत में शक्ति–पृथक्करण का सिद्धान्त– भारत में शक्तियों के बजाय कार्यों के पृथक्करण का पालन किया जाता है। अमेरिका के विपरीतए भारत में शक्तियों के पृथक्करण की अवधारणा का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता है। हालाँकिए जाँच और संतुलन की एक प्रणाली इस तरह से लागू की गई है कि न्यायपालिका के पास विधायिका द्वारा पारित किसी भी असंवैधानिक कानून को रद्द करने की शक्ति है। आज, अधिकांश संवैधानिक प्रणालियों में शास्त्रीय अर्थों में विभिन्न अंगों के बीच शक्तियों का सख्त पृथक्करण नहीं है क्योंकि यह अव्यावहारिक है। भारत का संविधान निहित तरीके से शक्तियों के पृथक्करण के विचार को अपनाता है। शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को

उसके पूर्ण रूप में मान्यता देने वाला कोई स्पष्ट प्रावधान न होने के बावजूदए संविधान सरकार के तीन अंगों के बीच कार्यों और शक्तियों के उचित पृथक्करण के लिए प्रावधान करता है।

सरकार के तीन अंग–

विधायिका– विधायिका का मुख्य कार्य कानून बनाना है। यह अन्य दो अंगोंए कार्यपालिका और न्यायपालिकाए के कामकाज का आधार है। इसे कभी.कभी तीनों अंगों में प्रथम स्थान भी दिया जाता हैए क्योंकि जब तक कानून नहीं बनाए जाते,तब तक कानूनों का क्रियान्वयन और अनुप्रयोग नहीं हो सकता।

कार्यपालिका– कार्यपालिका वह अंग है जो विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों को लागू करती है और राज्य की इच्छा को लागू करती है। यह सरकार का प्रशासनिक प्रमुख है। प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री और राष्ट्रपति/राज्यपाल सहित मंत्री कार्यपालिका का हिस्सा होते हैं।

न्यायपालिका– न्यायपालिका सरकार की वह शाखा है जो कानून की व्याख्या करती हैए विवादों का निपटारा करती है और सभी नागरिकों को न्याय प्रदान करती है। न्यायपालिका को लोकतंत्र का प्रहरी और संविधान का संरक्षक माना जाता है। इसमें सर्वोच्च न्यायालयए उच्च न्यायालयए जिला एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालय शामिल हैं।

शक्तियों का पृथक्करण क्या है?

सख्त अर्थ मेंए शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत बहुत कठोर है।

अवधारणा की पृष्ठभूमि– यह अवधारणा पहली बार चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में अरस्तू के कार्यों में देखी गई थीए जिसमें उन्होंने सरकार की तीन एजेंसियों को महासभाए सार्वजनिक अधिकारी और न्यायपालिका के रूप में वर्णित किया था। प्राचीन रोमन गणराज्य में भी इसी प्रकार की अवधारणा अपनाई गई थी। आधुनिक समय मेंए यह 18वीं शताब्दी के फ्रांसीसी दार्शनिक मोंटेस्क्यू थेए जिन्होंने अपनी पुस्तक डी लश्एस्प्रिट डेस लोइस यद स्पिरिट ऑफ लॉजद्ध में इस सिद्धांत को अत्यधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक बनाया। उनका कार्य अंग्रेजी प्रणाली की समझ पर आधारित है जो सरकार के तीन अंगों के बीच अधिक अंतर की ओर झुकाव दिखा रही थी।

इस विचार को जॉन लॉक ने आगे विकसित किया।

पृथक्करण का उद्देश्य– इसका उद्देश्य किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा सत्ता के दुरुपयोग को रोकना है। यह समाज को राज्य की मनमानीए तर्कहीन और अत्याचारी शक्तियों से बचाएगाए सभी की स्वतंत्रता की रक्षा करेगा और प्रत्येक कार्य को राज्य के उपयुक्त अंगों को उनके संबंधित कर्तव्यों के प्रभावी निर्वहन के लिए आवंटित करेगा।

शक्तियों के पृथक्करण का अर्थ शक्तियों का पृथक्करण शासन तंत्र को तीन शाखाओं में विभाजित करता है अर्थात विधायिकाए कार्यपालिका और न्यायपालिका। हालाँकि अलग.अलग लेखक अलग.अलग परिभाषाएँ देते हैंए लेकिन सामान्य तौर परए हम इस सिद्धांत की तीन विशेषताएँ बता सकते हैं। प्रत्येक अंग में अलग.अलग क्षमता वाले व्यक्ति होने चाहिएए अर्थात एक अंग में कार्य करने वाला व्यक्ति दूसरे अंग का हिस्सा नहीं होना चाहिए।

एक अंग को दूसरे अंगों के कामकाज में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। एक अंग को दूसरे अंग का कार्य नहीं करना चाहिए यउन्हें केवल अपने कार्य तक ही सीमित रहना चाहिए । इस प्रकार ये व्यापक क्षेत्र निर्धारित हैंए लेकिन भारत जैसे जटिल देश में अक्सर एक शाखा द्वारा दूसरी शाखा पर संघर्ष और अतिक्रमण होता रहता है।

सिद्धांत का महत्व–यह सिद्धांत सुनिश्चित करता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में निरंकुशता न घुस पाए। यह नागरिकों को मनमाने शासन से बचाता है। इसलिएए शक्तियों के पृथक्करण सिद्धांत के महत्व को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है–

(1) निरंकुशता को दूर रखता है
(2) व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करता है
(3) कुशल प्रशासन बनाने में मदद करता है
(4) न्यायपालिका की स्वतंत्रता कायम है
(5) विधायिका को मनमाने या असंवैधानिक कानून बनाने से रोकता है

भारत में शक्तियों के पृथक्करण की संवैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान के तहत–

विधानमंडल– संसद यलोकसभा और राज्यसभा राज्य विधान निकाय

कार्यपालिका– केंद्रीय स्तर पर. राष्ट्रपति, राज्य स्तर पर. राज्यपाल

न्यायपालिका– सर्वोच्च न्यायालयए उच्च न्यायालय और अन्य सभी अधीनस्थ न्यायालय

संविधान के कुछ अनुच्छेद–

अनुच्छेद 50: यह अनुच्छेद राज्य को न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने का दायित्व देता है। लेकिनए चूंकि यह राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत आता हैए इसलिए यह लागू नहीं होता है।

अनुच्छेद 53 और 154: यह प्रदान करता है कि संघ और राज्य की कार्यकारी शक्ति राष्ट्रपति और राज्यपाल के पास निहित होगी और वे नागरिक और आपराधिक दायित्व से उन्मुक्ति का आनंद लेंगे।

अनुच्छेद 121 और 211: ये प्रदान करते हैं कि विधायिकाएं सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के आचरण पर चर्चा नहीं कर सकती हैं। वे ऐसा केवल महाभियोग के मामले में कर सकते हैं।

अनुच्छेद 123: राष्ट्रपतिए देश के कार्यकारी प्रमुख होने के नातेए कुछ शर्तों के तहत विधायी शक्तियों यअध्यादेशों को लागू करनाद्ध का प्रयोग करने के लिए सशक्त हैं।

अनुच्छेद 361: राष्ट्रपति और राज्यपाल अदालती कार्यवाही से उन्मुक्ति का आनंद लेते हैं।

इसमें नियंत्रण और संतुलन की एक प्रणाली हैए जिसमें विभिन्न अंग कुछ प्रावधानों द्वारा एक दूसरे पर नियंत्रण लगाते हैं। न्यायपालिका के पास कार्यपालिका और विधायिका के कार्यों की न्यायिक समीक्षा करने की शक्ति है। न्यायपालिका को विधायिका द्वारा पारित किसी भी कानून को रद्द करने का अधिकार हैए यदि वह अनुच्छेद 13 के अनुसार असंवैधानिक या मनमाना है ययदि वह मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है। यह असंवैधानिक कार्यकारी कार्यों को भी शून्य घोषित कर सकता है। विधायिका कार्यपालिका के कामकाज की भी समीक्षा करती है। यद्यपि न्यायपालिका स्वतंत्र हैए परंतु न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा की जाती है। संवैधानिक सीमाओं का पालन करते हुए विधायिका निर्णय के आधार में परिवर्तन भी कर सकती है। जाँच और संतुलन सुनिश्चित करते हैं कि कोई भी अंग बहुत ज्यादा शक्तिशाली न बन जाए। संविधान गारंटी देता है कि किसी एक अंग को दी गई विवेकाधीन शक्ति लोकतांत्रिक सिद्धांत के भीतर है।

कार्यात्मक ओवरलैप– विधानमंडल कानून बनाने की शक्तियों का प्रयोग करने के अलावा अपने विशेषाधिकार के उल्लंघनए राष्ट्रपति के महाभियोग और न्यायाधीशों को हटाने के मामलों में न्यायिक शक्तियों का प्रयोग भी करता है। कार्यपालिका मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों के पद पर नियुक्तियां करके न्यायपालिका के कामकाज को और अधिक प्रभावित कर सकती है। न्यायालय द्वारा अधिकार.बाह्य घोषित कानून को संशोधित करने तथा उसे पुनः वैध बनाने के मामले में विधायिका द्वारा न्यायिक शक्तियों का प्रयोग। अपने सदस्यों को अयोग्य ठहराने और न्यायाधीशों पर महाभियोग चलाने का कार्य करते हुएए विधायिका न्यायपालिका के कार्यों का निर्वहन करती है। संसद में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अतिक्रमण करने पर विधानमंडल दंड लगा सकता हैय यह संसद की शक्तियों और विशेषाधिकारों के अंतर्गत आता है। लेकिन ऐसी शक्ति का प्रयोग करते समय यह हमेशा आवश्यक है कि वह उचित प्रक्रिया के अनुरूप हो। प्रत्येक सरकारी मंत्रालय का प्रमुख विधायिका का सदस्य होता हैए इस प्रकार कार्यपालिका विधायिका का एक अभिन्न अंग बन जाती है। मंत्रिपरिषद जिसकी सलाह पर राष्ट्रपति और राज्यपाल कार्य करते हैंए विधानमंडल के निर्वाचित सदस्य होते हैं कुछ परिस्थितियों में विधानमंडल में निहित विधायी शक्ति का प्रयोग कार्यपालिका द्वारा किया जा सकता है। यदि राष्ट्रपति या राज्यपालए विधानमंडल के सत्र में न होने पर और यह संतुष्ट हो कि ऐसी परिस्थितियाँ विद्यमान हैंए जिनमें तत्काल कार्रवाई आवश्यक हैए तो वे अध्यादेश जारी कर सकते हैंए जिसकी शक्ति संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए अधिनियम के समान होगी। संविधान अनुच्छेद 118 और अनुच्छेद 208 के माध्यम से केंद्र और राज्यों में विधानमंडल को इस संविधान के प्रावधानों के अधीन अपनी.अपनी प्रक्रिया और कामकाज के संचालन को विनियमित करने के लिए नियम बनाने का अधिकार देता है। कार्यपालिका भी प्रत्यायोजित विधान के तहत कानून बनाने की शक्ति का प्रयोग करती है। न्यायाधिकरण और अन्य अर्ध.न्यायिक निकाय जो कार्यपालिका का हिस्सा हैंए न्यायिक कार्य भी करते हैं। प्रशासनिक न्यायाधिकरण जो कार्यपालिका का हिस्सा हैं न्यायिक कार्य भी करते हैं। उच्च प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में हमेशा न्यायपालिका का एक सदस्य होना चाहिए। उच्च न्यायपालिका को अधीनस्थ न्यायालयों के कामकाज की निगरानी करने की शक्ति दी गई है। यह अपने आचरण को विनियमित करने वाले कानून और मामलों के निपटान के संबंध में नियम बनाते समय विधायिका के रूप में भी कार्य करता है।

कार्यात्मक ओवरलैपिंग के अलावा, भारतीय प्रणाली में तीन विभागों के बीच कर्मियों के पृथक्करण का भी अभाव है। भारतीय परिदृश्य में संवैधानिक सीमा और विश्वास के सिद्धांतों को लागू करते हुएए एक ऐसी प्रणाली बनाई गई है जहाँ कोई भी अंग उन कार्यों या शक्तियों को हड़प नहीं सकता है जो किसी अन्य अंग को स्पष्ट या आवश्यक प्रावधान द्वारा सौंपे गए हैंए न ही वे संविधान के तहत अपने आवश्यक कार्यों से खुद को वंचित कर सकते हैं।

इसके अलावा, भारत का संविधान स्पष्ट रूप से उक्त सर्वोच्च दस्तावेज से प्राप्त शक्ति के मनमाने या मनमानी उपयोग को रोकने के लिए जाँच और संतुलन की एक प्रणाली प्रदान करता है। हालाँकि ऐसी प्रणाली शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को शिथिल करती प्रतीत होती हैए लेकिन ऐसी संवैधानिक प्रणाली के न्यायपूर्ण और न्यायसंगत कामकाज को सक्षम करने के लिए यह आवश्यक है।

ऐसी शक्तियाँ देकर, संबंधित अंगों द्वारा संवैधानिक शक्तियों के प्रयोग पर नियंत्रण के लिए एक तंत्र स्थापित किया जाता है। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि भारतीय संविधान अपनी योजना में शक्तियों के सख्त पृथक्करण का प्रावधान नहीं करता है। इसके बजायए यह सरकार के तीन अंगों से मिलकर एक प्रणाली बनाता है और उन्हें अनन्य और अतिव्यापी दोनों तरह की शक्तियाँ और कार्य प्रदान करता है। इस प्रकारए सरकार के तीन अंगों के बीच कार्यों का कोई पूर्ण पृथक्करण नहीं है।

न्यायिक घोषणा

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य ;1973): इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि संसद की संशोधन शक्ति संविधान की मूल विशेषताओं के अधीन है। इसलिएए मूल विशेषताओं का उल्लंघन करने वाले किसी भी संशोधन को असंवैधानिक घोषित किया जाएगा। **स्वर्ण सिंह केस ;1998): इस मामले** में सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश के राज्यपाल द्वारा एक दोषी को क्षमादान दिए जाने को असंवैधानिक माना।

राम जवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य 1955 इस मामले में यह माना गया कि भारतीय संविधान ने वास्तव में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को पूर्ण कठोरता से मान्यता नहीं दी हैए लेकिन सरकार के विभिन्न भागों या शाखाओं के कार्यों को पर्याप्त रूप से विभेदित किया गया है और परिणामस्वरूप यह बहुत अच्छी तरह से कहा जा सकता है कि हमारा संविधान राज्य के एक अंग या भाग द्वारा उन कार्यों को ग्रहण करने की परिकल्पना नहीं करता है जो अनिवार्य रूप से दूसरे के हैं। **इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण 1975** जहां प्रधानमंत्री के चुनाव से संबंधित विवाद सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लंबित थाए वहां यह माना गया कि किसी विशिष्ट विवाद का निपटारा एक न्यायिक कार्य हैए जिसे संसदए संवैधानिक संशोधन शक्ति के तहत भी प्रयोग नहीं कर सकती। इसलिए,जिस मुख्य आधार पर संशोधन को अधिकारहीन माना गयाए वह यह था कि जब संविधान निकाय ने घोषणा की कि प्रधानमंत्री का चुनाव शून्य नहीं होगाए तो उसने एक न्यायिक कार्य कियाए जिसे पृथक्करण के सिद्धांत के अनुसार उसे नहीं करना चाहिए था। इस निर्णय के बाद भारतीय संदर्भ में इस सिद्धांत का स्थान थोड़ा स्पष्ट हो गया।

प्रश्न न0 5– लोक निगम पर न्यायिक नियंत्रण की विवेचना कीजिए।

उत्तर– विकसित या विकासशील लोकतंत्र वाले सभी देशों में, मुख्य लक्ष्य एक कुशल और प्रभावी प्रशासनिक प्रणाली प्राप्त करना है। भारत में प्रशासनिक कानून को 20वीं सदी के मध्य में मान्यता दी गई थी। प्रशासनिक कानून न तो विधायी है और न ही न्यायिक, यह एक अर्ध–न्यायिक और अर्ध–विधायी प्रणाली है जो व्यक्तियों और सरकार के बीच संबंधों से संबंधित है।

सरल शब्दों में, यह प्रशासनिक अधिकारियों के कार्यों को नियंत्रित करता है और ऐसे अधिकारियों के संगठन, शक्तियों और कर्तव्यों को निर्धारित करता है। प्रशासनिक कानून संवैधानिक कानून की एक प्रजाति है और यह अपनी शक्तियों का प्रयोग संवैधानिक कानून से परे नहीं कर सकता है। हालाँकि, न्यायपालिका के लिए प्रशासनिक कार्यों और उनकी संवैधानिकता की जाँच करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि प्रशासनिक कानून का दायरा अन्य कानूनों की तुलना में व्यापक है। न्यायिक नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा की जाने वाली कार्रवाइयों की वैधता के साथ–साथ संवैधानिकता सुनिश्चित करके व्यक्तियों के अधिकारों को प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा शक्तियों के दुरुपयोग से बचाना है।

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण का दायरा– भारत में, संविधान स्वतंत्र न्यायिक और विधायी शक्तियों का प्रावधान करता है। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों के पृथक्करण की व्यवस्था है। भारतीय संविधान में शक्तियों के पृथक्करण की एक प्रभावी और कुशल प्रणाली सुनिश्चित करने के लिए कई प्रावधान शामिल हैं। उदाहरण के लिए– कार्यपालिका सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करती है, लेकिन उसके द्वारा दिए गए दिशा–निर्देशों की सीमाओं के भीतर। और ऐसी नियुक्ति के बाद, कार्यपालिका का न्यायपालिका द्वारा कार्यों के निर्वहन पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाता है। इसी तरह, हालांकि न्यायपालिका के पास अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों को नियंत्रित करने की शक्ति है, लेकिन इस तरह के नियंत्रण का प्रयोग उनकी अपनी इच्छा से नहीं किया जा सकता है, बल्कि इसका प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब राहत मांगी जाए। न्यायिक हस्तक्षेप या नियंत्रण प्रकृति में प्रतिबंधात्मक होता है जो इसके आवेदन के दायरे को सीमित कर देता है।

आम तौर पर, इस तरह का नियंत्रण निम्नलिखित मामलों तक ही सीमित होता है–

अधिकार क्षेत्र का अभाव–जब कोई सार्वजनिक अधिकारी या प्रशासनिक प्राधिकरण अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य करता है, तो न्यायालय के पास ऐसे कार्य को अधिकार क्षेत्र से बाहर घोषित करने का अधिकार होता है। उदाहरण के लिए– किसी संगठन में, किसी विशेष प्राधिकरण को कुछ निर्णय या कार्रवाई करने की शक्ति दी जाती है और सक्षम प्राधिकारी के अलावा कोई अन्य प्राधिकरण निर्णय लेने की ऐसी शक्ति का प्रयोग करता है, तो कोई व्यक्ति अधिकार क्षेत्र संबंधी त्रुटि के प्रावधान के तहत न्यायालय से हस्तक्षेप की मांग कर सकता है।

तर्कहीनता– सामान्य सिद्धांत यह है कि प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग उचित रूप से किया जाना चाहिए। लेकिन अगर कोई प्रशासनिक अधिकारी ऐसा निर्णय देता है जो समाज के नैतिक मानकों को दरकिनार कर देता है और ऐसा है जो कानून के तहत अनुपस्थित है तो ऐसे निर्णय को अनुचित माना जा सकता है। इसे कानून में गलत कार्य भी कहा जा सकता है। न्यायिक नियंत्रण के लिए आधार के रूप में तर्कहीनता की अवधारणा को **एसोसिएटेड प्रांतीय पिक्चर हाउस बनाम वेडनसबरी (1947) के मामले** के माध्यम से स्थापित किया गया था। इस मामले को वेडनसबरी परीक्षण के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि अदालत ने यह निर्धारित करने के लिए तीन परीक्षण निर्धारित किए थे कि किसी अदालत को तर्कहीनता के आधार पर हस्तक्षेप करने का अधिकार है या नहीं:

(1)यदि प्रतिवादी ने किसी तथ्य पर विचार नहीं किया है जिस पर विचार किया जाना था।

(2)यदि प्रतिवादी ने किसी ऐसे तथ्य पर विचार किया है जिस पर विचार नहीं किया जाना था।

(3)यदि निर्णय ऐसा है कि किसी भी उचित प्राधिकारी ने बुद्धि के उचित प्रयोग के पश्चात् ऐसे निर्णय को लागू करने पर विचार नहीं किया होगा।

(4) अदालत ने यह भी कहा कि कोई भी अदालत केवल असहमति के आधार पर हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

प्रक्रियात्मक अनुचितता–इसका अर्थ है किसी प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा निर्धारित नियमों और प्रक्रियाओं या सामान्य कानून का पालन करने में विफलता। प्रक्रियात्मक अनुचितता के मामले में, न्यायपालिका के पास हस्तक्षेप करने की शक्ति है, भले ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को नकारा न गया हो। **सिविल सेवा यूनियनों की परिषद बनाम**

सिविल सेवा मंत्री के मामले में लॉर्ड डिप्लॉक ने प्रक्रियात्मक अनुचितता को यह निर्धारित करने के प्रमुख कारकों में से एक माना कि कोई प्रशासनिक कार्रवाई न्यायिक हस्तक्षेप के अधीन है या नहीं।

आनुपातिकता– इसका मतलब है कि प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा जो भी कार्रवाई की जाती है, वह निर्णय के उद्देश्य के अनुपात तक ही सीमित होनी चाहिए।

तर्कहीनतारू इसे 'वेडनसबरी अनुचितता' भी कहा जा सकता है । यह ऐसे निर्णय पर लागू होता है जो तर्क या स्वीकृत नैतिक मानकों की अवहेलना में इतना अपमानजनक होता है कि कोई भी समझदार व्यक्ति जो निर्णय किए जाने वाले प्रश्न पर अपना दिमाग लगाता, वह उस पर नहीं पहुंच सकता था। प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा की गई किसी भी कार्रवाई के लिए न्यायालय के लिए उसके लाभों के साथ–साथ नुकसानों पर भी विचार करना आवश्यक है। जब तक न्यायालय को यह संतुष्टि न हो कि यह कार्रवाई आम जनता के हित में आवश्यक है, तब तक इसे बरकरार नहीं रखा जाएगा। यदि कोई ऐसा प्राधिकरण कोई ऐसी कार्रवाई करता है जो उसके निजी लाभ के लिए है और जनहित को लाभ नहीं पहुंचाती है, तो न्यायालय से हस्तक्षेप की मांग की जा सकती है।

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के स्वरूप

(1)न्यायिक समीक्षा
(2)वैधानिक अपील
(3) सरकार के खिलाफ मुकदमा
(4)सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध आपराधिक और दीवानी मुकदमे
(5) असाधारण उपचार

न्यायिक समीक्षा– न्यायिक समीक्षा उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय की सबसे महत्वपूर्ण शक्तियों में से एक है। प्रशासनिक कार्यों और उनकी संवैधानिकता के साथ–साथ वैधता की जाँच करके जनता के अधिकारों की रक्षा और सुरक्षा करना विकासशील सभ्यता की बुनियादी आवश्यकता है। यह सिद्धांत उन देशों में प्रचलित है जहाँ संविधान को उनका सर्वोच्च कानून माना जाता है, उदाहरण के लिए– यूएसए, भारत, ऑस्ट्रेलिया आदि। न्यायिक समीक्षा करने के लिए न्यायालयों की शक्ति संविधान द्वारा प्रतिबंधित है। हालाँकि, अगर प्रशासनिक कार्रवाई संविधान के विरुद्ध है या सार्वजनिक हित को नुकसान पहुँचाती है तो विधानमंडल न्यायिक समीक्षा को बाहर नहीं कर सकता है। न्यायिक समीक्षा का सिद्धांत पहली बार 24 फरवरी, 1803 को अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट द्वारा मार्बरी बनाम मैडिसन के मामले में स्थापित किया गया था जब इसने विधायी (कांग्रेस) के एक अधिनियम को असंवैधानिक घोषित किया था। न्यायिक समीक्षा के तंत्र निम्नलिखित हैं–

(1) विधायी कार्यों की न्यायिक समीक्षा।
(2) न्यायिक निर्णय की न्यायिक समीक्षा।
(3) प्रशासनिक कार्रवाई की न्यायिक समीक्षा.

केशवानंद भारती, चंद्र कुमार बनाम यूओआई के मामलों में न्यायिक समीक्षा को आवश्यक माना गया और इसे भारतीय संविधान का एक अनिवार्य और अभिन्न अंग घोषित किया गया। श्री शंकरी प्रसाद सिंह देव बनाम भारत संघ में , 1951 के प्रथम संशोधन अधिनियम को चुनौती दी गई थी, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान में संशोधन करने के लिए संसद को पूर्ण शक्ति प्रदान करके इस तर्क को खारिज कर दिया। गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के ऐतिहासिक मामले में ष्सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय को उलट दिया क्योंकि उसने देखा कि अनुच्छेद 368 संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है।

वैधानिक अपील–विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून और कानून किसी भी तरह के दुख या नुकसान की स्थिति में न्यायिक हस्तक्षेप की मांग करते हैं। पीड़ित पक्ष को मूल निर्णय लेने वाले न्यायाधिकरण की तुलना में उच्च प्रशासनिक न्यायाधिकरण में अपील करने का अधिकार है। उदाहरण के लिए, सत्र न्यायालय के निर्णय से पीड़ित कोई भी व्यक्ति हस्तक्षेप के लिए उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय है और इसलिए, इसके निर्णयों के खिलाफ अपील करने का कोई अधिकार नहीं है।

सरकार के खिलाफ मुकदमा– सरकार के खिलाफ मुकदमा चलाने के संबंध में कुछ सीमाएँ हैं। अनुबंध कानून के तहत सरकार की जिम्मेदारी नागरिकों की जिम्मेदारी के समान है, जो संविधान के तहत संसद द्वारा विनियमित की जा सकने वाली सीमाओं के अधीन है। हालाँकि, सरकार अपने अधिकारियों के केवल उन्हीं कार्यों के लिए उत्तरदायी है जिनके लिए वे उत्तरदायी हैं। सरकार को केवल गैर–संप्रभु कार्यों के संबंध में अपने अधिकारियों के कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध दीवानी और आपराधिक मुकदमे– सरकारी अधिकारियों के कृत्यों के विरुद्ध दीवानी और फौजदारी कार्यवाही से संबंधित कानून अलग–अलग देशों में अलग–अलग हैं। भारत में, दंड प्रक्रिया संहिता सरकारी अधिकारियों द्वारा ऐसी क्षमता में किए गए कृत्यों के लिए उनकी व्यक्तिगत जिम्मेदारी बनाती है और दो महीने की पूर्व सूचना के साथ ऐसे कृत्यों के विरुद्ध मुकदमा दायर करने की अनुमति देती है। हालाँकि, मंत्रियों को छोड़कर कुछ अधिकारी ऐसे दीवानी मुकदमों से प्रतिरक्षित हैं जैसे कि राष्ट्रपति और राज्यपाल। ब्रिटेन में, सम्राट और अमेरिका में राष्ट्रपति ऐसी कानूनी कार्यवाही से प्रतिरक्षित हैं।

असाधारण उपचार– उपर्युक्त प्रकार के न्यायिक नियंत्रणों के अलावा, भारतीय संविधान अनुच्छेद 13 और अनुच्छेद 226 के तहत रिट के माध्यम से कुछ अतिरिक्त उपचार प्रदान करता है। न्यायालय के पास इन उपचारों को प्रदान

करने के लिए विवेकाधीन शक्तियाँ हैं, सिवाय बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट के, जब कोई अन्य उपाय उपलब्ध न हो। ये रिट सर्वोच्च न्यायालय द्वारा केवल नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए जारी की जाती हैं, लेकिन उच्च न्यायालय को अन्य अधिकारों की सुरक्षा के लिए भी ये रिट जारी करने का अधिकार है। निषेधाज्ञा रिट भारतीय संविधान के तहत विशेष रूप से प्रदान नहीं की गई है, लेकिन फिर भी इसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक उपाय के रूप में प्रदान किया गया है। निषेधाज्ञा रिट दो प्रकार की होती है– निवारक और अनिवार्य। अनिवार्य रिट किसी तरह परमादेश रिट के समान होती है और निवारक निषेध रिट के समान होती है। निषेधाज्ञा रिट कार्यकारी अधिकारियों के खिलाफ जारी की जाती है।

रिट के माध्यम से उपचार इस प्रकार हैं–

बंदी प्रत्यक्षीकरण– यह लैटिन शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है ष्आप शव को अपने पास रख सकते हैंष्। इसका उपयोग किसी ऐसे व्यक्ति को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है जिसे अवैध रूप से या अवैध रूप से हिरासत में लिया गया हो। इस रिट के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय किसी अन्य व्यक्ति को आदेश दे सकता है जिसने किसी अन्य व्यक्ति को अवैध रूप से हिरासत में लिया है, कि वह उस व्यक्ति का शव न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करे। न्यायालय को हिरासत में लिए गए व्यक्ति से हिरासत के लिए वैध आधार प्रदान करने की आवश्यकता होती है और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है तो हिरासत में लिए गए व्यक्ति को न्यायालय द्वारा रिहा कर दिया जाएगा। यह रिट सार्वजनिक और निजी दोनों प्रकार के अधिकारियों के विरुद्ध जारी की जा सकती है। न्यायालय के पास, उन सभी क्षेत्रों में, जिनके संबंध में वह अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है, किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को, जिसमें उचित मामलों में कोई भी सरकार शामिल है, उन क्षेत्रों के भीतर निर्देश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति होगी, जिसमें बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, अधिकार–पृच्छा और उत्प्रेषण या उनमें से कोई भी प्रकृति के रिट शामिल हैं, भाग प्प् द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए और किसी अन्य उद्देश्य के लिए। इच्छू देवी बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी भी निरूस्वार्थ सार्वजनिक व्यक्ति द्वारा पोस्टकार्ड के माध्यम से किया गया आवेदन भी बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने के लिए विचार किया जाएगा।

परमादेश–यह सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा निचली या अधीनस्थ अदालतों, न्यायाधिकरणों या सार्वजनिक प्राधिकरणों को दिया गया आदेश है। यह रिट किसी भी सरकार, न्यायालय, निगम या सार्वजनिक प्राधिकरण को जारी की जा सकती है, यदि वे अपने संबंधित कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहते हैं। जॉन पैली और अन्य बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि न्यायालय परमादेश की रिट जारी करके किसी राज्य विधानमंडल को न्यायाधिकरण स्थापित करने का निर्देश नहीं दे सकता। याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता और इसे खारिज कर दिया गया।

अधिकार–पृच्छा– यह रिट किसी निजी व्यक्ति के विरुद्ध तब जारी की जाती है जब वह किसी ऐसे लोक सेवक का पद ग्रहण करता है जिस पर उसका कोई अधिकार नहीं होता। इस रिट को जारी करने का अधिकार विवेकाधीन है और यह न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है कि वह इस रिट को जारी करे या नहीं। यह रिट केवल तभी जारी की जा सकती है जब कोई वास्तविक सार्वजनिक पद शामिल हो और इसे निजी या मंत्री पद के विरुद्ध जारी नहीं किया जा सकता। निरंजन कुमार गोयनका बनाम बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर के मामले में न्यायालय ने कहा कि यदि व्यक्ति सार्वजनिक पद पर नहीं है तो अधिकार–पृच्छा रिट जारी नहीं की जा सकती।

उत्प्रेषण–पत्र–यह उच्च न्यायालय द्वारा अवर न्यायालयों को जारी किया जाता है। यह प्रकृति में सुधारात्मक है और इसका कार्य त्रुटियों को सुधारना है। यह तब जारी किया जाता है जब अवर न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से अधिक हो या उच्च न्यायालय किसी मामले में स्वयं निर्णय लेना चाहता हो। ए.के. क्राइपक बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अर्ध–न्यायिक प्राधिकरणों और प्रशासनिक प्राधिकरणों के बीच अंतर निर्धारित किया। सर्वोच्च न्यायालय ने उत्प्रेषण–पत्र जारी करके निर्णय को रद्द कर दिया।

निषेध–यह रिट अक्सर जारी नहीं की जाती है और यह एक असाधारण उपाय है जिसे उच्च न्यायालय किसी निचली अदालत या न्यायाधिकरण को जारी करता है ताकि उन्हें किसी मामले पर निर्णय लेने से रोका जा सके क्योंकि उनके पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। यदि न्यायालय या न्यायाधिकरण के पास अधिकार क्षेत्र नहीं है और फिर भी वह मामले पर निर्णय लेता है, तो निर्णय अमान्य होगा क्योंकि किसी कार्य को वैध होने के लिए उसे कानून की मंजूरी होनी चाहिए। यह रिट केवल न्यायिक और अर्ध–न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ ही जारी की जा सकती है। प्रूडेंशियल कैपिटल मार्केट्स बनाम स्टेट ऑफ एपी और अन्य के मामले में यह सवाल उठाया गया था कि ष्क्या जिला मंचोंध्राज्य आयोगों के खिलाफ निषेध रिट जारी की जा सकती है जिन्होंने उपभोक्ता मामलों के बारे में पहले ही निर्णय पारित कर दिया है? न्यायालय ने माना कि आदेश के निष्पादन के बाद, निषेध रिट जारी नहीं की जा सकती है और न ही निर्णय को रोका जा सकता है और न ही रोका जा सकता है।

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की सीमाएं

अदालतों में पहले से ही ढेर सारे मामले होने के कारण, अदालतों के लिए इस बोझ को संभालना मुश्किल हो जाता है। न्याय में अत्यधिक देरी न्याय चाहने वालों को अदालत जाने से हतोत्साहित करती है। पुरानी कहावत ''न्याय में देरी न्याय से वंचित होने के बराबर है'' आज भी ऐसे मामलों में सही साबित होती है। चूंकि न्यायालय प्रशासनिक कार्यों में अपनी मर्जी से हस्तक्षेप नहीं कर सकते और वे केवल तभी हस्तक्षेप कर सकते हैं जब न्याय की मांग की

जाती है, इससे न्याय की प्रक्रिया में देरी होती है। चूंकि अधिकांश मामलों में न्यायपालिका केवल तभी हस्तक्षेप करने में सक्षम होती है जब पहले से ही काफी नुकसान हो चुका होता है और ऐसे मामलों में पीड़ित द्वारा पहले से ही उठाए गए नुकसान को कम करने का कोई तरीका नहीं होता है। न्यायिक प्रक्रियाओं की उच्च लागत के कारण अधिकांश समय केवल अमीर लोग ही प्रशासनिक कार्रवाइयों के खिलाफ राहत पाने में सक्षम होते हैं और गरीब लोग न्याय से वंचित रह जाते हैं तथा ऐसी प्रशासनिक कार्रवाइयों और न्याय से इनकार के शिकार बन जाते हैं। भारत में न्यायालय कुछ वैधानिक सीमाओं से बंधे हैं और उनके विरुद्ध कार्रवाई नहीं कर सकते। कुछ प्रशासनिक कार्य न्यायिक नियंत्रण से बाहर हैं और उनकी समीक्षा नहीं की जा सकती। सामान्य जागरूकता की कमी भी न्यायिक नियंत्रण की सीमाओं में से एक बन जाती है। भारत जैसे देश में जहाँ निरक्षरता अधिक है, लोग शिकायतों के मामले में न्यायपालिका द्वारा प्रदान किए जाने वाले उपायों के सामान्य ज्ञान से भी वंचित हैं। न्यायालयों के लिए जो केवल तभी कार्य कर सकते हैं जब राहत मांगी जाती है, इस मामले में नागरिकों को न्याय प्रदान करना कठिन हो जाता है।

न्यायिक नियंत्रण से संबंधित हालिया मामले

अजीजुर रहमान बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य के हालिया मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने माना कि न्यायपालिका की न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रशासनिक कार्य की वैधता और संवैधानिकता की जाँच करना है, न कि ऐसे कार्य की बुद्धिमत्ता या सुदृढ़ता की। न्यायपालिका अपनी शक्तियों का प्रयोग केवल तभी करेगी जब कार्य पूरी तरह से मनमाना हो या व्यक्तिगत लाभ के लिए हो या जनता के हित को प्रभावित करता हो। **आई.आर. कोलोहो (मृत) बाय एल.आर.एस. बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य के मामले** में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि 24 अप्रैल, 1973 के बाद संशोधनों के माध्यम से संविधान की 9वीं अनुसूची में जो कानून जोड़े गए हैं, उनमें संशोधन किया जा सकता है, यदि वे संविधान के विरुद्ध हों।

<u>प्रश्न न0 6–</u>नैसर्गिक न्याय की परिभाषा दीजिए तथा प्रशासनिक कार्यों में इसके प्रयोग की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

<u>उत्तर–</u> प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत रोमन कानून के शब्द श्जस नेचुरलश से लिया गया है और यह आम कानून और नैतिक सिद्धांतों से निकटता से जुड़ा हुआ है, लेकिन इसे संहिताबद्ध नहीं किया गया है। यह प्रकृति का एक कानून है जो किसी कानून या संविधान से नहीं लिया गया है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन सभ्य राज्य के सभी नागरिकों द्वारा सर्वोच्च महत्व के साथ किया जाता है। निष्पक्ष व्यवहार के प्राचीन दिनों में, उस समय जब औद्योगिक क्षेत्रों में काम पर रखने और निकालने के लिए कठोर और सख्त कानून थे, सर्वोच्च न्यायालय ने समय बीतने और श्रमिकों के लिए सामाजिक, न्याय और अर्थव्यवस्था वैधानिक सुरक्षा की स्थापना के साथ अपना आदेश दिया।

पहला नियम है 'सुनवाई नियम' जिसमें कहा गया है कि विशेषज्ञ सदस्यों के पैनल द्वारा लिए गए निर्णय से प्रभावित होने वाले व्यक्ति या पक्ष को अपना बचाव करने के लिए अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए।

दूसरा, 'पक्षपात नियम' आम तौर पर यह व्यक्त करता है कि निर्णय लेते समय विशेषज्ञों के पैनल को पक्षपात रहित होना चाहिए। निर्णय स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से दिया जाना चाहिए जो प्राकृतिक न्याय के नियम को पूरा कर सके।

और तीसरा, 'तर्कसंगत निर्णय' जो न्यायालय के उस आदेश, निर्णय या फैसले को बताता है जो पीठासीन अधिकारियों द्वारा वैध और उचित आधार पर दिया जाता है।

प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत बहुत पुरानी अवधारणा है और इसकी शुरुआत बहुत कम उम्र में हुई थी। ग्रीक और रोमन लोग भी इस अवधारणा से परिचित थे। कौटिल्य के समय में अर्थशास्त्र और एडम ने प्राकृतिक न्याय की अवधारणा को मान्यता दी थी। बाइबिल के अनुसार, ईव और एडम के मामले में, जब उन्होंने ज्ञान का फल खाया, तो भगवान ने उन्हें मना कर दिया। सजा सुनाने से पहले, ईव को खुद का बचाव करने का उचित मौका दिया गया और एडम के मामले में भी यही प्रक्रिया अपनाई गई।

बाद में, प्राकृतिक न्याय की अवधारणा को अंग्रेजी न्यायविदों ने स्वीकार कर लिया। प्राकृतिक न्याय शब्द रोमन शब्द श्जस–नेचुरलश और श्लेक्स–नेचुरलश से लिया गया है , जिसने प्राकृतिक न्याय, प्राकृतिक कानून और समानता के सिद्धांतों की योजना बनाई।

'प्राकृतिक न्याय का अर्थ है क्या गलत है और क्या सही है इसका बोध।'

भारत में इस अवधारणा को बहुत पहले ही पेश किया गया था। मोहिंदर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त के मामले में न्यायालय ने माना कि निष्पक्षता की अवधारणा हर कार्य में होनी चाहिए चाहे वह न्यायिक, अर्ध–न्यायिक, प्रशासनिक और या अर्ध–प्रशासनिक कार्य हो।

सिद्धांत का उद्देश्य

(1)सुनवाई का समान अवसर प्रदान करना।
(2) निष्पक्षता की अवधारणा.
(3) कानून की खामियों और कमियों को पूरा करना।
(4) मौलिक अधिकारों की रक्षा करना।
(5) संविधान की मूल विशेषताएँ

(6) न्याय में कोई चूक नहीं हुई।
प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत पक्षपात से मुक्त होने चाहिए तथा पक्षकारों को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए तथा न्यायालय द्वारा लिए गए सभी कारणों और निर्णयों से संबंधित पक्षों को अवगत कराया जाना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि उचित और न्यायसंगत निर्णय पर पहुंचना न्यायिक और प्रशासनिक निकायों का उद्देश्य है। प्राकृतिक न्याय का मुख्य उद्देश्य न्याय की विफलता को रोकना है।
एक समिति यानि **"मिनिस्टर्स पावर"** ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से संबंधित 3 आवश्यक प्रक्रियाएँ बताईं।
(1) किसी को भी अपने मामले में न्यायाधीश नहीं बनना चाहिए।
(2) किसी की भी निंदा अनसुनी नहीं की जा सकती।
(3) पक्षकार को प्रत्येक कारण तथा प्राधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय को जानने का अधिकार है।

इसका दावा कब किया जा सकता है?

प्राकृतिक न्याय का दावा न्यायिक या अर्ध–न्यायिक रूप से कार्य करते समय भी किया जा सकता है जैसे कि पंचायत और न्यायाधिकरण आदि। इसमें निष्पक्षता की अवधारणा, बुनियादी नैतिक सिद्धांत और विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रह शामिल हैं और प्राकृतिक न्याय की आवश्यकता क्यों है और इसमें कौन से विशेष मामले या परिस्थितियाँ शामिल हैं जहाँ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू नहीं होंगे।
बम्बई प्रांत बनाम खुशालदास आडवाणी के मामले में कहा गया था कि प्राकृतिक न्याय वैधानिक न्याय पर लागू होगा क्योंकि यह प्राकृतिक न्याय का एक मूल सिद्धांत है जो निष्पक्षता और न्याय की ओर ले जाता है।
(1) कार्य का प्रभाव
(2) प्रशासनिक कार्रवाई.
(3) नागरिक परिणाम.
(4) वैध अपवाद का सिद्धांत.
(5) कार्य में निष्पक्षता.
(6) अनुशासनात्मक कार्यवाही.
बोर्ड ऑफ हाई स्कूल बनाम घनश्याम के मामले में , एक छात्र को परीक्षा हॉल में नकल करते हुए पकड़ा गया और उसे इस कृत्य के कारण परीक्षा से वंचित कर दिया गया। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि छात्र परीक्षा बोर्ड के खिलाफ जनहित याचिका दायर नहीं कर सकता।
हाई वाटर मार्क केस– यूरेशियन इक्विपमेंट एंड कंपनी लिमिटेड बनाम पश्चिम बंगाल राज्य रू इस केस के तहत सभी कार्यकारी इंजीनियरों को ब्लैक लिस्ट में डाल दिया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि बिना वैध और उचित आधार दिए आप किसी को भी ब्लैक लिस्ट में नहीं डाल सकते और साथ ही उसे सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए।

निमो जुडेक्स इन कॉसा सुआ

'किसी को भी अपने मामले में न्यायाधीश नहीं होना चाहिए' क्योंकि यह पक्षपात के नियम की ओर ले जाता है। पक्षपात का अर्थ है ऐसा कार्य जो किसी पक्ष या किसी विशेष मामले के संबंध में सचेत या अचेतन अवस्था में अनुचित गतिविधि की ओर ले जाता है। इसलिए, इस नियम की आवश्यकता न्यायाधीश को निष्पक्ष बनाने और मामले के अनुसार दर्ज किए गए साक्ष्य के आधार पर निर्णय देने के लिए है।
व्यक्तिगत पूर्वाग्रह– व्यक्तिगत पूर्वाग्रह पार्टी और निर्णय लेने वाले प्राधिकारी के बीच संबंध से उत्पन्न होता है। जो निर्णय लेने वाले प्राधिकारी को संदिग्ध स्थिति में अनुचित गतिविधि करने और अपने व्यक्ति के पक्ष में निर्णय देने के लिए प्रेरित करता है। इस तरह के समीकरण व्यक्तिगत और व्यावसायिक संबंधों के विभिन्न रूपों के कारण उत्पन्न होते हैं। व्यक्तिगत पूर्वाग्रह के आधार पर प्रशासनिक कार्रवाई को सफलतापूर्वक चुनौती देने के लिए, पूर्वाग्रह का उचित कारण देना आवश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि चयन समिति के एक सदस्य का भाई भी प्रतियोगिता में उम्मीदवार था, लेकिन इस कारण चयन की पूरी प्रक्रिया को रद्द नहीं किया जा सकता। यहां, अपने भाई की ओर से पक्षपातपूर्ण कार्य से बचने के लिए अभ्यर्थी से जुड़े संबंधित पैनल सदस्य को चयन समिति के पैनल से बाहर जाने का अनुरोध किया जा सकता है। जिससे निष्पक्ष और उचित निर्णय लिया जा सके। रामानंद प्रसाद सिंह बनाम यूओआई ।
आर्थिक पूर्वाग्रह– यदि किसी न्यायिक निकाय को किसी भी प्रकार का वित्तीय लाभ होता है, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, तो प्रशासनिक प्राधिकार में पक्षपात पैदा होगा।
विषय वस्तु पूर्वाग्रह– जब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्णयकर्ता प्राधिकारी किसी विशेष मामले की विषय–वस्तु में शामिल हो। मुरलीधर बनाम कदम सिंह मामले में न्यायालय ने इस आधार पर चुनाव न्यायाधिकरण के निर्णय को रद्द करने से इनकार कर दिया कि अध्यक्ष की पत्नी कांग्रेस पार्टी की सदस्य थीं, जिसे याचिकाकर्ता ने हराया था।
विभागीय पूर्वाग्रह–विभागीय पूर्वाग्रह की समस्या या मुद्दा प्रत्येक प्रशासनिक प्रक्रिया में बहुत आम है और इसे प्रभावी ढंग से नहीं रोका जाता है और हर छोटे अंतराल पर यह कार्यवाही में निष्पक्षता की नकारात्मक अवधारणा को जन्म देता है।

नीतिगत धारणा पूर्वाग्रह– पूर्व निर्धारित नीति धारणा से उत्पन्न होने वाले मुद्दे बहुत ही समर्पित मुद्दा है। वहां बैठे दर्शक यह उम्मीद नहीं करते कि न्यायाधीश खाली कागज लेकर बैठेंगे और मामले पर निष्पक्ष सुनवाई और निर्णय देंगे।

हठ के कारण पक्षपात– सुप्रीम कोर्ट ने अनुचित शर्त के माध्यम से पक्षपात के नए मानदंड खोजे हैं। यह नई श्रेणी एक ऐसे मामले से उभरी है जिसमें कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने अपील में अपने ही फैसले को बरकरार रखा। पक्षपात के नियमों का सीधा उल्लंघन इसलिए किया जाता है क्योंकि कोई भी न्यायाधीश अपने ही मामले में अपील में नहीं बैठ सकता।

ऑडी अल्टरम पार्टम– इसमें केवल 3 लैटिन शब्द शामिल हैं, जिसका मूल अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना अदालत द्वारा दोषी नहीं ठहराया जा सकता या दंडित नहीं किया जा सकता। कई न्यायक्षेत्रों में, अधिकांश मामलों को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना ही अनिर्णीत छोड़ दिया जाता है।

इस नियम का शाब्दिक अर्थ यह है कि दोनों पक्षों को अपनी–अपनी बात रखने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए तथा निष्पक्ष सुनवाई की जानी चाहिए। यह प्राकृतिक न्याय का एक महत्वपूर्ण नियम है और इसका शुद्ध रूप किसी को बिना किसी वैध और उचित आधार के दंडित नहीं करना है। किसी व्यक्ति को पहले से सूचना दे दी जानी चाहिए ताकि वह यह जानने के लिए तैयार हो सके कि उसके खिलाफ क्या–क्या आरोप लगाए गए हैं। इसे निष्पक्ष सुनवाई के नियम के रूप में भी जाना जाता है । निष्पक्ष सुनवाई के घटक प्रकृति में निश्चित या कठोर नहीं हैं। यह मामले दर मामले और प्राधिकरण दर प्राधिकरण अलग–अलग होता है।

प्रश्न न0 7– लोकपाल के द्वारा जाँच करने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

उत्तर– लोकपाल अधिनियम की धारा 20 प्रारंभिक जांच और जांच के संबंध में प्रक्रिया को परिभाषित करती है। शिकायत प्राप्त होने पर, यह पता लगाने के लिए कि क्या मामले में कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया मामला मौजूद है, लोकपाल मामले में प्रारंभिक जांच का आदेश देता है ।

20–शिकायतों तथा प्रारंभिक जांच और अन्वेषण से संबंधित प्रावधान–

(1) लोकपाल किसी शिकायत की प्राप्ति पर, यदि वह आगे कार्यवाही करने का निर्णय लेता है, तो आदेश दे सकता है–

(क) किसी लोक सेवक के विरुद्ध अपनी जांच शाखा या किसी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान सहित) द्वारा प्रारंभिक जांच, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मामले में कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया मामला मौजूद है या नहींय या

(ख) किसी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान सहित) द्वारा जांच, जब प्रथम दृष्टया मामला मौजूद होरू बशर्ते कि यदि लोकपाल ने प्रारंभिक जांच के साथ आगे बढ़ने का निर्णय लिया है, तो वह सामान्य या विशेष आदेश द्वारा, समूह ए या समूह बी या समूह सी या समूह डी से संबंधित लोक सेवकों के संबंध में प्राप्त शिकायतों या शिकायतों की श्रेणी या शिकायत को केंद्रीय सतर्कता आयोग को संदर्भित करेगा।

केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (2003 का 45) की धारा 3 की उपधारा (1) के अंतर्गत गठित आयोगरू

इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि केंद्रीय सतर्कता आयोग, समूह ए और समूह बी के लोक सेवकों के संबंध में प्रारंभिक जांच करने के बाद, पहले प्रावधान के तहत उसे भेजी गई शिकायतों के संबंध में, उपधारा (2) और (4) में निहित प्रावधानों के अनुसार अपनी रिपोर्ट लोकपाल को प्रस्तुत करेगा और समूह सी और समूह डी के लोक सेवकों के मामले में, आयोग केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (2003 का 45) के प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही करेगा–

इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि खंड (बी) के तहत जांच का आदेश देने से पहले, लोकपाल लोक सेवक से स्पष्टीकरण मांगेगा ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि जांच के लिए प्रथम दृष्टया मामला मौजूद है या नहींरू

इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि जांच से पहले लोक सेवक से स्पष्टीकरण मांगने से तलाशी और जब्ती, यदि कोई हो, में बाधा नहीं आएगी। इस अधिनियम के तहत किसी भी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना सहित) द्वारा किए जाने की आवश्यकता है।

(2) उप–धारा (1) में निर्दिष्ट प्रारंभिक जांच के दौरान, जांच विंग या कोई भी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना सहित) प्रारंभिक जांच करेगी और एकत्रित सामग्री, सूचना और दस्तावेजों के आधार पर लोक सेवक और सक्षम प्राधिकारी से शिकायत में लगाए गए आरोपों पर टिप्पणियां मांगेगी और संबंधित लोक सेवक और सक्षम प्राधिकारी की टिप्पणियां प्राप्त करने के बाद, संदर्भ की प्राप्ति की तारीख से साठ दिनों के भीतर लोकपाल को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी।

(3) लोकपाल के कम से कम तीन सदस्यों वाली एक पीठ, जांच विंग या किसी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना सहित) से उप–धारा (2) के तहत प्राप्त प्रत्येक रिपोर्ट पर विचार करेगी और लोक सेवक को सुनवाई का अवसर देने के बाद यह तय करेगी कि क्या प्रथम दृष्टया मामला बनता है और निम्नलिखित में से एक या अधिक कार्रवाई करेगी, अर्थात–

(क) किसी एजेंसी या दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना द्वारा जांच, जैसा भी मामला हो;

(ख) सक्षम प्राधिकारी द्वारा संबंधित लोक सेवकों के खिलाफ विभागीय कार्यवाही या कोई अन्य उचित कार्रवाई शुरू करना;

(ग) लोक सेवक के खिलाफ कार्यवाही को बंद करना और धारा 46 के तहत शिकायतकर्ता के खिलाफ कार्रवाई करना।

(4) उप–धारा (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक प्रारंभिक जांच सामान्यतः शिकायत प्राप्त होने की तारीख से नब्बे दिन की अवधि के भीतर और लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए नब्बे दिन की अतिरिक्त अवधि के भीतर पूरी की जाएगी।

(5) यदि लोकपाल शिकायत की जांच करने का निर्णय लेता है, तो वह किसी भी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान सहित) को यथासंभव शीघ्रता से जांच करने और अपने आदेश की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर जांच पूरी करने का निर्देश देगा–

बशर्ते कि लोकपाल लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से उक्त अवधि को एक बार में छह महीने से अधिक की अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ा सकता है।

(6) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 173 में निहित किसी भी बात के बावजूद, कोई भी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना सहित) लोकपाल द्वारा उसे भेजे गए मामलों के संबंध में उस धारा के तहत जांच रिपोर्ट अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय को प्रस्तुत करेगी और उसकी एक प्रति लोकपाल को भेजेगी।

(7) लोकपाल के कम से कम तीन सदस्यों वाली एक पीठ किसी भी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना सहित) से उप–धारा (6) के तहत प्राप्त प्रत्येक रिपोर्ट पर विचार करेगी और सक्षम प्राधिकारी और लोक सेवक की टिप्पणियां प्राप्त करने के बाद–

(क) अपने अभियोजन विंग या जांच एजेंसी को आरोप–पत्र दायर करने या लोक सेवक के खिलाफ विशेष न्यायालय के समक्ष रिपोर्ट को बंद करने का निर्देश देने की मंजूरी दे सकती है;

(ख) सक्षम प्राधिकारी को संबंधित लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही या कोई अन्य उचित कार्रवाई आरंभ करने का निर्देश दे सकता है।

(8) लोकपाल उपधारा (7) के अंतर्गत आरोप–पत्र दाखिल करने के संबंध में निर्णय लेने के पश्चात अपनी अभियोजन शाखा या किसी जांच एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस सहित) को आरोप–पत्र दाखिल करने का निर्देश दे सकता है।

एजेंसी द्वारा जांचे गए मामलों के संबंध में विशेष न्यायालय में अभियोजन आरंभ करने के लिए लोकपाल (स्थापना) को अधिकृत किया गया है।

(9) लोकपाल, प्रारंभिक जांच या अन्वेषण के दौरान, जैसा भी मामला हो, प्रारंभिक जांच या अन्वेषण से संबंधित दस्तावेजों की सुरक्षित अभिरक्षा के लिए उचित आदेश पारित कर सकता है, जैसा भी मामला हो, जैसा भी वह उचित समझे।

(10) लोकपाल की वेबसाइट समय–समय पर और विनियमों द्वारा निर्दिष्ट तरीके से, जनता को उसके समक्ष लंबित या निपटाए गए शिकायतों की संख्या की स्थिति प्रदर्शित करेगी।

(11) लोकपाल मूल अभिलेखों और साक्ष्यों को अपने पास रख सकता है, जिनकी प्रारंभिक जांच या अन्वेषण की प्रक्रिया में या उसके द्वारा या विशेष न्यायालय द्वारा किसी मामले के संचालन में आवश्यकता पड़ने की संभावना है।

(12) अन्यथा उपबंधित के सिवाय, इस अधिनियम के अधीन प्रारंभिक जांच या अन्वेषण (जिसमें लोक सेवक को उपलब्ध कराई जाने वाली सामग्री और दस्तावेज शामिल हैं) करने का तरीका और प्रक्रिया ऐसी होगी, जैसी विनियमों द्वारा निर्दिष्ट की जा सकती है।

21. जिन व्यक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, उनकी सुनवाई की जाएगी। – यदि कार्यवाही के किसी भी चरण में लोकपाल –

(क) अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण की जांच करना आवश्यक समझता है; या

(ख) उसकी राय है कि अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर प्रारंभिक जांच से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, तो लोकपाल उस व्यक्ति को प्रारंभिक जांच में सुनवाई का उचित अवसर देगा और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देगा।

22. लोकपाल किसी लोक सेवक या किसी अन्य व्यक्ति से सूचना आदि प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकता है। – इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, किसी प्रारंभिक जांच या अन्वेषण के प्रयोजन के लिए, लोकपाल या जांच एजेंसी, जैसा भी मामला हो, किसी लोक सेवक या किसी अन्य व्यक्ति से, जो उसकी राय में, ऐसी प्रारंभिक जांच या अन्वेषण से संबंधित सूचना प्रस्तुत करने या दस्तावेज प्रस्तुत करने में सक्षम है, ऐसी कोई सूचना प्रस्तुत करने या कोई दस्तावेज प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकती है।

23. अभियोजन आरंभ करने के लिए मंजूरी देने की लोकपाल की शक्ति–

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 197 या दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 (1946 का 25) की धारा 6ए या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 19 में निहित किसी बात के होते हुए भी, लोकपाल को धारा 20 की उपधारा (7) के खंड (ए) के अंतर्गत अभियोजन के लिए मंजूरी देने की शक्ति होगी।

(2) उपधारा (1) के अंतर्गत कोई अभियोजन किसी ऐसे लोक सेवक के विरुद्ध आरंभ नहीं किया जाएगा, जिस पर उसके द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का अभिप्राय रखते हुए किए गए

किसी अपराध का आरोप है और कोई भी न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान लोकपाल की पूर्व मंजूरी के बिना नहीं लेगा।

(3) उपधारा (1) और (2) में निहित कोई भी बात संविधान के प्रावधानों के अनुसरण में पद धारण करने वाले व्यक्तियों के संबंध में लागू नहीं होगी और जिनके संबंध में ऐसे व्यक्ति को हटाने की प्रक्रिया उसमें निर्दिष्ट की गई है।

(4) उपधारा (1), (2) और (3) में निहित प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 311 और अनुच्छेद 320 के खंड (3) के उप–खंड (सी) में निहित प्रावधानों की व्यापकता के प्रतिकूल नहीं होंगे।

24. प्रधानमंत्री, मंत्री या संसद सदस्य जैसे लोक सेवक के विरुद्ध जांच पर कार्रवाई। – जहां जांच के समापन के बाद लोकपाल के निष्कर्षों से पता चलता है कि धारा 14 की उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) में निर्दिष्ट किसी लोक सेवक द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) के अंतर्गत कोई अपराध किया गया है, वहां लोकपाल विशेष न्यायालय में मामला दर्ज कर सकेगा और रिपोर्ट की एक प्रति अपने निष्कर्षों के साथ सक्षम प्राधिकारी को भेजेगा।

<u>प्रश्न न0 8–</u> न्यायिक सक्रियता से आप क्या समझते है? समाज को उच्चीकृत करने के लिए यह किस प्रकार आवश्यक है? विवेचना कीजिए।

<u>उत्तर–</u> न्यायिक सक्रियता – जानें इसका क्या मतलब है। न्यायपालिका किसी देश में नागरिकों के अधिकारों को बनाए रखने और बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नागरिकों के अधिकारों को बनाए रखने और देश की संवैधानिक और कानूनी व्यवस्था को बनाए रखने में न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका को न्यायिक सक्रियता के रूप में जाना जाता है।

न्यायिक सक्रियता समाज के उत्थान के लिए आवश्यक हो सकती है क्योंकि यह नागरिकों के अधिकारों को बनाए रखने और बढ़ावा देने तथा देश की संवैधानिक और कानूनी व्यवस्था को संरक्षित करने में मदद कर सकती है। उदाहरण के लिए, कुछ ऐसे फैसले जिन्हें न्यायिक सक्रियता माना गया है, उन्होंने समाज में महिलाओं की स्थिति को बढ़ाया है, पर्यावरण की रक्षा की है, बंधुआ मजदूरों की रक्षा की है और जेल में अमानवीय व्यवहार से सुरक्षा प्रदान की है।

न्यायिक सक्रियता का दायरा इतना व्यापक है कि इसकी कोई सटीक परिभाषा मौजूद नहीं है। इसकी कोई वैधानिक परिभाषा नहीं है क्योंकि प्रत्येक न्यायविद या विद्वान इसे अलग–अलग तरीके से परिभाषित करता है। न्यायिक सक्रियता के समर्थक इसे न्यायिक समीक्षा का उचित रूप मानते हैं। इसके विपरीत, थॉमस जेफरसन इसे संघीय न्यायाधीशों की शनिरंकुश शक्तिश के रूप में संदर्भित करते हैं। वीडी कुलश्रेष्ठ के अनुसार, न्यायिक सक्रियता तब होती है जब न्यायपालिका को वास्तव में कानून बनाने की प्रक्रिया में भाग लेने का काम सौंपा जाता है और बाद में वह कानूनी प्रणाली में एक महत्वपूर्ण खिलाड़ी के रूप में उभरती है।

'न्यायिक सक्रियता' की अवधारणा ष्न्यायिक संयमष के विचार के विपरीत है। इन दोनों शब्दों का इस्तेमाल अक्सर न्यायिक शक्ति की मुखरता का वर्णन करने के लिए किया जाता है, और इनका इस्तेमाल व्यक्तिगत और पेशेवर दृष्टिकोण से भी किया जाता है, जिससे अदालतें उचित भूमिका निभाने के लिए किसी एक दृष्टिकोण की ओर झुक सकती हैं। 'न्यायिक सक्रियता', 'न्यायिक सर्वोच्चता', 'न्यायिक निरंकुशत', 'न्यायिक अराजकता' और अन्य शब्दों का इस्तेमाल अक्सर संयुक्त राज्य अमेरिका में एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है। 'न्यायिक सक्रियता' शब्द को भी आरोपित माना जाता है। इसका मतलब है कि न्यायाधीशों का प्रदर्शन उनकी विचारधाराओं, राय, मूल्यों और हितों पर आधारित होता है।

न्यायिक सक्रियता की उत्पत्ति और विकास

न्यायिक सक्रियता का सिद्धांत यूनाइटेड किंगडम में न्यायिक समीक्षा प्रक्रिया के दौरान उभरा। ब्रिटिश संविधान एक अलिखित संविधान का उदाहरण है जो न्यायिक सक्रियता की अनुमति देता है। स्टुअर्ट के शासनकाल (1603–1688) के दौरान, अलिखित संविधान ने न्यायिक समीक्षा की संभावना पैदा की, और इस प्रकार न्यायिक सक्रियता का जन्म हुआ। न्यायिक समीक्षा सिद्धांत की स्थापना 1610 में जस्टिस एडवर्ड कोक ने की थी। थॉमस बोनहम बनाम कॉलेज ऑफ फिजिशियन केस (1610) में , उन्होंने यह निर्णय दिया कि संसद द्वारा पारित कोई भी कानून जो सामान्य कानून या तर्क के विरुद्ध है, उसकी समीक्षा की जा सकती है और उसे न्यायालयों द्वारा अमान्य घोषित किया जा सकता है। न्यायिक समीक्षा और, तदनुसार, न्यायिक सक्रियता के इस सिद्धांत का समर्थन सर हेनरी होबार्ट ने किया, जो 1615 में सर एडवर्ड कोक के बाद कोर्ट ऑफ कॉमन प्लीज के मुख्य न्यायाधीश बने। न्यायिक समीक्षा के विचार से जुड़ा पहला महत्वपूर्ण मामला मैडबरी बनाम मैडिसन (1803) था , जिसमें अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने 1801 के न्यायपालिका अधिनियम के कुछ प्रावधानों को स्पष्ट रूप से असंवैधानिक घोषित किया था। अमेरिकी इतिहास में पहली बार, किसी अदालत ने किसी कानून को असंवैधानिक घोषित किया। जब से सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया है कि संघीय अदालतों के पास असंवैधानिक कानूनों को अमान्य करने का अधिकार है, तब से न्यायिक समीक्षा ने संयुक्त राज्य अमेरिका में लोकप्रियता हासिल की है। हालाँकि, सटीक वाक्यांश 'न्यायिक सक्रियता' का इस्तेमाल आर्थर श्लेसिंगर जूनियर ने अपने लेख ' द सुप्रीम कोटर्रू 1947' में किया था, जो फॉर्च्यून पत्रिका के जनवरी 1947 के अंक में छपा था। उन्होंने उस समय अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों को न्यायिक कार्यकर्ता, आत्म–संयम के चौंपियन और दो वर्गों के बीच के न्यायाधीशों के रूप में वर्गीकृत करने के लिए इस वाक्यांश का इस्तेमाल किया।

सकाल न्यूजपेपर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ (1962) के मामले में , सरकार ने समाचार पत्र अधिनियम 1956 और 1960 के आदेश के अनुसार समाचार पत्र की कीमत के संबंध में पृष्ठों की संख्या को विनियमित करने की मांग की। सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि समाचार पत्र अन्य व्यवसायों के समान विनियमन के अधीन नहीं हो सकते क्योंकि वे विचारों और सूचनाओं के आदान–प्रदान के लिए एक मंच के रूप में कार्य करते हैं। इस निर्णय ने संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) द्वारा प्रदान की गई मुक्त अभिव्यक्ति की सुरक्षा को व्यापक बनाया।

आरक्षण नीति–बालाजी बनाम मैसूर राज्य (1963) के मामले में , सर्वोच्च न्यायालय ने तर्क दिया कि आर्थिक पिछड़ापन सामाजिक पिछड़ेपन का मूल कारण है। न्यायालय ने जाति को वर्ग से अलग किया और फैसला सुनाया कि पिछड़ेपन का आकलन करने के लिए जाति का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यह निर्णय लिया गया कि कुल में आरक्षित श्रेणी का प्रतिशत 50ः से अधिक नहीं होना चाहिए। यह निर्णय लिया गया कि अनुच्छेद 14, साथ ही अनुच्छेद 15 और 16 के उपसमूहों का अनुपालन किया जाना चाहिए। चित्रलेखा बनाम मैसूर राज्य (1964) के मामले में न्यायालय द्वारा आरक्षण पर इसी तरह की सीमाएँ लगाई गई थीं ।

भावी अधिनिर्णय का सिद्धांत– भावी अधिनिर्णय का सिद्धांत सबसे पहले अमेरिकी कानूनी प्रणाली में सामने आया। इसमें कहा गया है कि किसी विशिष्ट मामले में लिया गया निर्णय केवल भविष्य को प्रभावित करेगा और पिछले निर्णयों पर इसका कोई पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं होगा। गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1971) में, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के 17वें संशोधन की संवैधानिक वैधता को संबोधित करते हुए ष्भावी अधिनिर्णयष के विचार का बीड़ा उठाया और निर्धारित किया कि संसद के पास संविधान के भाग प्प् में संशोधन करने या किसी भी मौलिक अधिकार को कम करने का अधिकार नहीं है ।

मूल संरचना का सिद्धांत– केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) के मामले में , सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐसा निर्णय जारी किया जिसे भारतीय संवैधानिक न्यायशास्त्र में एक महत्वपूर्ण क्षण माना जाता है। संविधान के अनुच्छेद 368 द्वारा प्रदत्त संशोधन शक्ति के दायरे को संबोधित करते हुए , न्यायालय ने ष्मूल संरचनाष का सिद्धांत विकसित किया। 7रू6 बहुमत से, 13 न्यायाधीशों की एक पीठ ने फैसला सुनाया कि संसद के पास संविधान में संशोधन करने की व्यापक शक्तियाँ हैं, लेकिन उस शक्ति को संविधान के मूल ढांचे या बुनियादी ढांचे को कम या नष्ट नहीं करना चाहिए।

बंदी प्रत्यक्षीकरण मामला– एडीएम जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला (1976) का मामला , जिसमें अनुच्छेद 21 को उठाया गया था, न्यायिक सक्रियता के बारे में सर्वोच्च न्यायालय का सबसे विवादास्पद निर्णय था। एडीएम जबलपुर के मामले की सुनवाई करने वाली पीठ के बहुमत ने माना कि गंभीर आपात स्थितियों के मामलों में, जैसे कि 1975 और 1977 के बीच मौजूद थे, एक कानूनी प्रक्रिया स्थापित की जा सकती है, जिसके बाद मानव जीवन भी समाप्त हो सकता है। हालाँकि, निर्णय लिखने वाले न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ को सरकार के पक्ष में राय लिखने के लिए आलोचना का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने जो कानूनी सिद्धांत प्रस्तुत किया वह न्यायिक सक्रियता का एक उत्कृष्ट उदाहरण था। न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने अनुच्छेद 21 की इस तरह से व्याख्या की है और देश की संप्रभुता को बनाए रखने के लिए स्वीकृति की आवश्यकता वाले कानून की वैधता को बरकरार रखा है, अगर इसे आंतरिक या बाहरी आक्रमण से खतरा है।

सक्रियता से अति–पहुंच तक परिवर्तन– संसद ने न्यायपालिका पर न्यायिक हस्तक्षेप का आरोप बार–बार लगाया है। संसद के अनुसार न्यायपालिका अपने संवैधानिक अधिकार के बाहर काम कर रही है। न्यायिक सक्रियता जो सभी न्यायोचित सीमाओं से परे जाती है उसे 'न्यायिक अतिक्रमण' कहा जाता है। न्यायिक अतिक्रमण तब होता है जब न्यायालय मनमाने ढंग से, अत्यधिक और बार–बार विधायिका और कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में दखल देते हैं।

हालाँकि न्यायिक सक्रियता और अतिक्रमण के बीच अंतर सूक्ष्म है, लेकिन समाज पर उनके प्रभाव पूरी तरह से अलग हैं। न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता के विपरीत, न्यायिक अतिक्रमण का इरादा वास्तविक नहीं है। अतिक्रमण एक स्वस्थ लोकतंत्र की संस्थाओं के कामकाज में बाधा डालता है।

मुख्य न्यायाधीश जेएस वर्मा के अनुसार, ''न्यायिक सक्रियता तब उचित है जब यह वैध न्यायिक समीक्षा के दायरे में हो। इसमें कोई न्यायिक अत्याचार या तदर्थवाद नहीं होना चाहिए।''

भारत में न्यायिक सक्रियता क्यों आवश्यक है?

भारत में कानून बनाने का अधिकार विधायिका के पास है और न्यायपालिका को इसमें हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं है। हालाँकि, ऐसे कई उदाहरण हैं जब विधायिका ने कानून पारित करने में विफल रही है, जबकि इसकी आवश्यकता थी। ऐसे मामलों में, न्यायपालिका लोगों को न्याय दिलाने के लिए न्यायिक सक्रियता की अवधारणा का उपयोग कर सकती है, जिसके लिए सक्रियता की आवश्यकता होती है।

प्रश्न न0 9–सूचना पाने का अधिकार एक नागरिक को संवैधानिक अधिकारों के प्रभावी प्रवर्तन के लिए आवश्यक है। विवेचना कीजिए।

उत्तर– सूचना का अधिकार सरकार के रिकॉर्ड को सार्वजनिक जांच के लिए खोल देता है, जिससे नागरिकों को यह जानकारी देने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण मिल जाता है कि सरकार क्या करती है और कितने प्रभावी ढंग

से काम करती है, जिससे सरकार अधिक जवाबदेह बनती है। अनावश्यक गोपनीयता को हटाकर सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा निर्णय लेने में सुधार होता है।

अधिनियम की धारा 2(ए) में 'उपयुक्त सरकार' की परिभाषा दी गई है। उपयुक्त सरकार का तात्पर्य सूचना के अधिकार से संबंधित किसी सार्वजनिक प्राधिकरण के साथ सरकार के संबंध से है। केंद्र सरकार, केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन या राज्य सरकारें ऐसी शक्ति की स्थापना, गठन, अधिकार, प्रबंधन या वित्तपोषण करती हैं।

इस प्रकार, उपर्युक्त तरीके से केंद्र सरकार/संघ शासित प्रदेश प्रशासन से संबद्ध सार्वजनिक प्राधिकरण की स्थिति में संबंधित सरकार "केंद्र सरकार" है। जबकि उपर्युक्त तरीके से राज्य सरकार से संबद्ध सार्वजनिक प्राधिकरण की स्थिति में उपयुक्त सरकार "राज्य सरकार" है।

सक्षम प्राधिकारी धारा 2(ई), अधिनियम की धारा 2(ई) में 'सक्षम प्राधिकारी' की परिभाषा दी गई है। सक्षम प्राधिकारी वह प्राधिकारी है जो संविधान की आवश्यकताओं के अनुसार काम करने वाली स्वायत्त संस्थाओं को नियंत्रित करता है। यह प्राधिकारी अंततः उन संस्थाओं में आरटीआई अधिनियम को लागू करने के लिए जिम्मेदार है। उदाहरण के लिए, भारत के सर्वोच्च न्यायालय के मामले में, भारत के मुख्य न्यायाधीश सक्षम प्राधिकारी हैं।

सूचना धारा 2(एफ), धारा 2एफ) में सूचना के अधिकार के तहत प्राप्त की जा सकने वाली जानकारी के प्रकार को निर्दिष्ट किया गया है। "सूचना" शब्द किसी भी रूप में किसी भी सामग्री को संदर्भित करता है, जिसमें शामिल हैं– अभिलेख (किसी सरकारी निकाय से संबंधित किसी अधिनियम, नीति या निर्णय का कोई नक्शा, चित्र आदि सहित लिखित जानकारी), दस्तावेज (किसी अभिलेख का एक भाग या एक अलग दस्तावेज या किसी विशिष्ट विषय या सरकारी प्राधिकरण के निर्णय पर विवरण देने वाली सूचना का एक भाग), ज्ञापन (ये किसी विशेष विषय पर पत्र या नोट के रूप में हो सकते हैं), ई–मेल, राय (सरकारी रिकॉर्ड के भाग के रूप में सरकारी मामलों में प्रेषित किसी सरकारी एजेंसी या सरकारी कार्मिक की राय),सलाह (आधिकारिक रिकॉर्ड का हिस्सा बनने वाले आधिकारिक मामलों पर सलाह), प्रेस में प्रकाशन (आधिकारिक क्षमता में जारी किए गए आधिकारिक मामलों पर प्रेस ब्रीफिंग या प्रेस नोट), परिपत्र (सरकारी/सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा आधिकारिक क्षमता में प्रसारित परिपत्र जो किसी निश्चित निर्णय या नीति की जानकारी देते हैं), आदेश (सरकारी प्राधिकरण द्वारा आधिकारिक क्षमता में जारी किया गया कोई भी आदेश), लॉगबुक (सार्वजनिक प्राधिकरण की किसी विशेष परियोजना की जानकारी, अवलोकन और आंकड़े युक्त दस्तावेज), अनुबंध (सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा किए गए आधिकारिक अनुबंध और उनकी विशिष्टताएं), रिपोर्ट (परीक्षण परिणाम, जांच रिपोर्ट और किसी निश्चित विषय पर विशेषज्ञ रिपोर्ट सहित आधिकारिक मुद्दों के बारे में रिपोर्ट), पत्र (कार्यवाही पर चर्चा करने वाले पत्र), नमूने (सरकारी प्रयोजनों के लिए खरीदीध्उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के नमूने), मॉडल (कार्यक्रमों और परियोजनाओं के मॉडल),किसी भी इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में रखा गया डेटा (कंप्यूटर, पेन ड्राइव, सीडी में संग्रहीत डेटा), किसी भी निजी संगठन के बारे में जानकारी जो कोई सार्वजनिक प्राधिकरण किसी अन्य कानून के तहत प्राप्त कर सकता है, अब प्रभावी है।

सार्वजनिक प्राधिकरण धारा 2(एच), 'सार्वजनिक प्राधिकरण'शब्द को धारा 2(एच) के तहत परिभाषित किया गया है। सार्वजनिक प्राधिकरण एक स्वशासी प्राधिकरण, निकाय या संगठन है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सरकार से जुड़ा होता है। ऐसा प्राधिकरण निम्नलिखित तरीकों से सरकार से जुड़ा हो सकता है–

(1) यह संविधान के तहत स्थापित या निर्मित है। (2) इसकी स्थापना संसद के एक अधिनियम द्वारा की जाती है। (3) इसकी स्थापना राज्य विधानमंडल अधिनियम द्वारा की जाती है। (4) यह उपयुक्त सरकार द्वारा जारी नोटिस या आदेश द्वारा स्थापित या गठित होता है। (5) कोई भी संस्था जो उपयुक्त सरकार के स्वामित्व में हो, प्रबंधित हो, या पर्याप्त रूप से वित्तपोषित हो; (6) कोई भी संस्था जो उपयुक्त सरकार के स्वामित्व में हो, प्रबंधित हो, या पर्याप्त रूप से वित्तपोषित हो।

रिकॉर्ड धारा 2(प), अधिनियम की धारा 2(प) में परिभाषित अनुसार, रिकॉर्ड में निम्नलिखित में से कुछ भी शामिल हो सकता है–

दस्तावेज–यह किसी भी सूचना के टुकड़े या किसी निश्चित विषय पर जानकारी देने वाले दस्तावेजों के संग्रह को संदर्भित कर सकता है।

पाण्डुलिपि– अपने मूल रूप में हस्तलिखित पाठ, मानचित्र या रेखाचित्र।

फाइल– किसी निश्चित विषय पर कागजात या संबंधित दस्तावेजों का संग्रह। माइक्रोफिल्म, माइक्रोफिच और फैक्सीमिली प्रतिलिपि के रूप में डिजिटल दस्तावेज। इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेजों को छवियों के रूप में पुनरुत्पादित किया जाता है। कंप्यूटर या अन्य डिवाइस द्वारा निर्मित या उत्पन्न कोई भी अतिरिक्त सामग्री

सूचना का अधिकार ध्धारा 2(जे), 'सूचना का अधिकार' शब्द को धारा 2(र) में परिभाषित किया गया है । यह आरटीआई अधिनियम के तहत उपलब्ध जानकारी प्राप्त करने के अधिकार को संदर्भित करता है जो किसी भी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा रखी या नियंत्रित की जाती है। इन अधिकारों में शामिल हैंरू

निरीक्षण का अधिकार–

यह कागजात, काम और अभिलेखों की जांच और छानबीन करने के अधिकार को संदर्भित करता है। इस मामले में, कोई दस्तावेज या दस्तावेज की प्रतिलिपि प्राप्त नहीं की जाती है, और जानकारी को केवल देखा और जांचा जाता है।

नोट्स, अंश आदि लेने का अधिकार– नोट्स या अंश लेने का मतलब है कागजात से खास जानकारी को नोट करना। कागजात से महत्वपूर्ण जानकारी यहाँ लिखी जाती है, और दस्तावेजों से प्रामाणिक अंश भी कॉपी किए जा सकते हैं।

सत्यापित सामग्री के नमूने प्राप्त करने का अधिकार– किसी नागरिक को सरकार द्वारा खरीदी गई सामग्री या सरकार द्वारा उपयोग की जाने वाली सामग्री के सत्यापित नमूने प्राप्त करने का अधिकार है।

इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में जानकारी प्राप्त करने का अधिकार–जब मांगी गई सूचना कंप्यूटर या अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरण पर दर्ज की जाती है, तो सूचना का अधिकार अधिनियम नागरिकों को इसे इलेक्ट्रॉनिक रूपों में प्राप्त करने की अनुमति देता है, जैसे टेप, वीडियो कैसेट, फ्लॉपी डिस्क, डिस्केट, प्रिंटआउट आदि।

प्रश्न न0 10– निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

उत्तर– (1) लोकनीति का उल्लंघन– सार्वजनिक नीति के उल्लंघन का तात्पर्य यह है कि भले ही किसी निश्चित व्यवहार को कानून द्वारा स्पष्ट रूप से मान्यता न दी गई हो, लेकिन अदालतों ने पहले भी इसे बरकरार रखा है। जब किसी कर्मचारी को संवैधानिक या वैधानिक अधिकार का प्रयोग करने के लिए निकाल दिया जाता है, तो सार्वजनिक नीति का उल्लंघन हो सकता है।

सार्वजनिक नीति के उल्लंघन में गलत तरीके से बर्खास्तगी

प्राथमिक टैब–सार्वजनिक नीति के उल्लंघन में गलत तरीके से बर्खास्तगी (या बर्खास्तगी) के लिए कार्रवाई से बर्खास्त कर्मचारी को गलत तरीके से बर्खास्तगी के लिए अपने पूर्व नियोक्ता के खिलाफ कार्रवाई करने का अधिकार मिलता है । हालाँकि रोजगार संबंध आम तौर पर इच्छा पर आधारित होते हैं , और इसलिए किसी भी पक्ष द्वारा बिना किसी कारण के समाप्त किए जा सकते हैं , गलत तरीके से बर्खास्तगी के लिए यह कार्रवाई इच्छा सिद्धांत के लिए एक संकीर्ण अपवाद के रूप में कार्य करती है।

सार्वजनिक नीति के उल्लंघन में गलत तरीके से बर्खास्तगी का दावा करने के लिए वादी को यह दिखाना होगा कि–

(1) स्पष्ट सार्वजनिक नीति अस्तित्व में थी और वह राज्य या संघीय संविधान, कानून या प्रशासनिक विनियमन, या सामान्य कानून में अभिव्यक्त होती थी;

(2) वादी की बर्खास्तगी जैसी परिस्थितियों में कर्मचारियों को बर्खास्त करने से सार्वजनिक नीति खतरे में पड़ जाएगी;

(3) वादी की बर्खास्तगी सार्वजनिक नीति से संबंधित आचरण से प्रेरित थी; तथा

(4) नियोक्ता के पास बर्खास्तगी के लिए कोई वैध व्यावसायिक औचित्य नहीं था।

कर्मचारी आमतौर पर निम्नलिखित कारणों से नौकरी से निकाले जाने के बाद यह दावा कर सकते हैं–

(1) कानूनी अधिकार का प्रयोग करते हुए,

(2) कोई अवैध कार्य करने से इंकार करना, या

(3) अवैध आचरण की रिपोर्ट करना।

उदाहरण के लिए , कैलिफोर्निया ने माना है कि अप्रवासन सुधार और नियंत्रण अधिनियम (आईआरसीए) का उल्लंघन करते हुए, बिना दस्तावेज वाले कर्मचारियों को नियुक्त करने की कंपनी की प्रथा की रिपोर्ट करने के लिए कर्मचारियों को बर्खास्त करना, सार्वजनिक नीति का उल्लंघन करते हुए गलत तरीके से बर्खास्तगी थी। ऐसा इसलिए है क्योंकि आईआरसीए निम्नलिखित सार्वजनिक नीतियों पर आधारित था–

(1) दस्तावेज वाले श्रमिकों को रोजगार भेदभाव से बचाना, और

(2) सभी प्रमाणित श्रमिकों को उन अनिर्धारित श्रमिकों से प्रतिस्पर्धा से बचाना, जिनकी कम मजदूरी स्वीकार करने की इच्छा से श्रमिक संघों की प्रभावशीलता कम हो जाएगी।

परिणामस्वरूप, अधिनियम के उल्लंघन की रिपोर्ट करने वाले कर्मचारियों को नौकरी से निकालने से अधिनियम के नीतिगत उद्देश्यों को सीधे तौर पर खतरा पैदा हो जाएगा।

चूँकि सार्वजनिक नीति के उल्लंघन में गलत तरीके से बर्खास्तगी को आम तौर पर टोर्ट कानून के तहत मान्यता दी जाती है, इसलिए अदालतों ने वादी को प्रतिपूरक और दंडात्मक हर्जाने की वसूली की अनुमति दी है। हालाँकि, अर्कांसस जैसे कुछ अधिकार क्षेत्र इस कार्रवाई को विशेष रूप से अनुबंध कानून पर आधारित मानते हैं , और परिणामस्वरूप, दंडात्मक हर्जाने की वसूली की अनुमति नहीं देते हैं।

(2) नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन– प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन तब होता है जब कोई न्यायाधिकरण किसी मामले का फैसला किसी ऐसे आधार पर करता है जो पक्षों ने नहीं उठाया या विचारित नहीं किया है. इसके अलावा, अगर मुद्दों पर पक्षों द्वारा किए गए तर्कों और प्रस्तुतियों पर विचार किए बिना फैसला किया जाता है, तो भी यह प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन माना जाएगा. हालांकि, अगर निर्णायक ने किसी प्रस्तुतिकरण पर विचार न करने की वजह बताई है और यह वजह सद्भावनापूर्ण है, तो यह प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन नहीं होगा. ऐसा तब हो सकता है जब प्रस्तुतिकरण गलती से छूट गए हों या इतने अविश्वसनीय हों कि निर्णायक को अपने निष्कर्षों को स्पष्ट रूप से बताने की जरूरत न लगे।

प्राकृतिक न्याय के कुछ और उदाहरण–

(1) अनुशासनात्मक जांच के बिना किसी कर्मचारी की सेवाओं को खत्म करना।

(2) किसी व्यक्ति के बारे में किसी भी कारण से पूर्व राय बनाना
(3) किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर फैसला करना
(4) किसी समुदाय या संस्था के लिए पूर्वाग्रह पर आधारित नियम या कानून बनाना
(5) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होने पर, वैकल्पिक उपाय के तौर पर राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया जा सकता है।

(3) राज्य के संविदात्मक दायित्व– राज्य का संविदात्मक दायित्व, किसी समझौते के परिणामस्वरूप लागू होने वाले कानूनी रूप से मान्य दायित्वों को संदर्भित करता है. संविदात्मक दायित्व, अनुबंध के नियमों और शर्तों में निर्धारित जिम्मेदारियों और कर्तव्यों को कहते हैं, जिन्हें अनुबंध में शामिल पक्ष कानूनी रूप से पूरा करने के लिए सहमत होते हैं. ये दायित्व, सहमत लक्ष्यों को पूरा करने के लिए हर पक्ष को उठाए जाने वाले विशिष्ट कार्यों को निर्देशित करते हैं. संविदात्मक दायित्व, किसी भी अनुबंध की रीढ़ होते हैं. अगर इन दायित्वों को स्पष्ट रूप से बताया जाए, तो इससे विवादों को रोका जा सकता है और मुद्दों को जल्दी से सुलझाया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 299 में सरकार पर संविदात्मक दायित्व के साथ बाध्यता की औपचारिकताओं से जुड़ी बातें कही गई हैं. अगर कोई लोक प्राधिकरण, कानून द्वारा उसे सौंपे गए कर्तव्य को पूरा करने में विफल रहता है, तो उसे परमादेश रिट जारी की जाती है. संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत उपचार सार्वजनिक कानून उपचार हैं, जिनकी मदद से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि सार्वजनिक प्राधिकरण अपने संबंधित क्षेत्रों में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें।

LL.B.-6th Sem. Paper-II Environmental Law Including Laws for the Protection of the Wild Life and Other Living Creature Including Animal Welfare

प्रश्न न0 1– पर्यावरण एवं पर्यावरणीय प्रदूषण पदो के अर्थ एवं विस्तार–क्षेत्र की व्याख्या कीजिए। पर्यावरण के लिए कौन–कौन से कारण उत्तरदायी है? व्याख्या कीजिए।

उत्तर– पर्यावरण एक अत्यधिक व्यापक शब्द है। इसके विस्तार की कोई सीमा नहीं है। सीधे शब्दों, में यह कहना शत–प्रतिशत सत्य होगा कि पर्यावरण है तो हम है, इसके बिना न तो जीव का और न ही किसी वनस्पति का अस्तित्व सम्भव है।

पर्यावरण को अंग्रेजी में (Environment) कहते है। शब्द (Environment) फ्रेच भाषा के शब्द (Environer) से बना है। जिसका अभिप्राय सम्पूर्ण पारिस्थितिकी (Ecology) अथवा परिवृत्ति होता है। इसके अन्तर्गत सभी स्थितियाँ, परिस्थितियाँ, दशाएँ एवं प्रभाव जो कि जैव तथा जैविकीय समूह पर प्रभाव डालते है, शामिल है।

पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ होता है आस–पास या पास–पड़ोस मानव, जन्तुओं, या पौधों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाली वाहय दशाएँ इत्यादि।

पर्यावरण' शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी शब्द 'एनवायरनर' से हुई है, जिसका अर्थ है 'घेरना'। इसमें वे सभी परिवेश शामिल हैं जहाँ मनुष्य रहते हैं। ये परिवेश प्राकृतिक दुनिया की संपूर्णता और मानव निर्मित भूभाग दोनों को कवर करते हैं। प्राकृतिक पर्यावरण में हवा, पानी, झीलें, पेड़ और पहाड़ जैसे तत्व शामिल हैं, जबकि मानव निर्मित पर्यावरण में इमारतें, सड़कें, पार्क, पुल, स्मारक, उद्यान और बहुत कुछ जैसे विकास शामिल हैं।

पर्यावरण प्रदूषण क्या है?

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 2(ए) के अनुसार पर्यावरण में जल, वायु और भूमि तथा जल, वायु और भूमि एवं मानव, अन्य जीवित प्राणियों, पौधों, सूक्ष्म जीवों और संपत्ति के बीच विद्यमान अंतर–संबंध शामिल हैं।

1. संयुक्त राज्य अमेरिका की विज्ञान सलाहकार समिति के अनुसार–प्रदूषण हमारें परिवेश का प्रतिकूल परिवर्तन है जिसका ऊर्जा प्रतिमान, विकिरण स्तर, रासायनिक भौतिक संघटक और जैविकों की प्रचुरता में परिवर्तन का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव करता है।

2. लाघम के अनुसार–प्रदूषण का तात्पर्य व्यक्ति पर्यावरण के किसी भाग में अपशिष्ट पदार्थों या अतिरिक्त ऊर्जा, या किसी अन्य परिसंकटमय वस्तुओं का समावेश है, जो पर्यावरण को परिवर्तित कर देता है और इस परिवर्तन के द्वारा उस ढंग में, जिसमें व्यक्ति चाहते है, व्यक्ति के प्रयोग या उपयोग के अवसर को प्रत्यक्षतः प्रभावित करता है।

पर्यावरण के कारक– पर्यावरण के कारक निम्नलिखित है–

(क) पारिथितिक कारक– पर्यावरण के इस कारक के अन्तर्गत 3 कारक आते है–

(1) जैविक कारक– जैविक कारक हैं किसी पारिस्थितिकी तंत्र में रहने वाले जीव उस पारिस्थितिकी तंत्र में रहने वाले अन्य जीवों को प्रभावित करते ह ैइनमें पौधे, जानवर, कवक, बैक्टीरिया और प्रोटिस्ट शामिल हो सकते हैं। जैविक कारक अन्य जीवित चीजों के साथ कई तरीकों से बातचीत कर सकते हैं, जैसे कि प्रतिस्पर्धा, उपभोग, शिकार, परजीवीवाद, बीमारी और सहजीवन के माध्यम से। उदाहरण के लिए, हिरण एक जैविक कारक है जो घास खाता है, जो पारिस्थितिकी तंत्र में घास की मात्रा को प्रभावित करता है।

जैविक कारकों के अन्तर्गत निम्नलिखित सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है–

(1) प्राणियों के जैविक सम्बन्ध में
(2) पौधों के जैविक सम्बन्ध में
(3) प्राणियों को पौधों पर प्रभाव, और
(4) मानव का योगदान

(2) वायुमण्डल– आकाश में वायु ऐसा आवरण जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे है, वायुमण्डल में बहुत सी सतहें होती है। इन सतहो के आधार पर वायुमण्डल को निम्नलिखित 5 भागों में विभावित कर सकते हैं–

(1) ओजोन मण्डल
(2) आयन मण्डल
(3) समताप मण्डल
(4) क्षोभमण्डल
(5) क्षोभमण्डल

(3) अग्निकारक– ताप की उस अवस्था को अग्नि कहते है जिस पर पहुँचकर पदार्थ जलने लगते है। अग्नि प्राकृतिक या कृत्रिम किसी भी ढंग से उत्पन्न हो सकती है। प्राकृतिक अग्नि आकाश में बिजली चमकने, शाट सर्किट से, ज्वालामुखियों के फूटने से, और तेज हवा चलने पर पेड़ों के आपस में रगड़ने से उत्पन्न होती है। कृत्रिम आग मानव द्वारा लगाने पर उत्पन्न होती है।

तीव्रता एवं फैलाव के आधार पर अग्नि निम्नलिखित तीन प्रकार की हो सकती है–

(1) शिखर अग्नि

(2) बहिस्तल अग्नि
(3) भू–अग्नि
(ख) अजैविक कारक– अजैविक कारकों को निम्नलिखित दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–
(1) भौतिक कारक
(2) रासायनिक कारक
पर्यावरण के कारण– पर्यावरण प्रदूषण के निम्नलिखित प्रमुख कारण है–
(1) जनसंख्या वृद्धि– पर्यावरण प्रदूषण का प्रमुख कारण मानव जनसंख्या में वृद्धि है, इसके परिणामस्वरूप अनेक पैदा हुए है, जो कि पर्यावरण को सीधे रूप में प्रदूषित करते है। जनसंख्या वृद्धि के कारण सीमित प्राकृतिक संसाधनों पा दिनों दिन दबाब बढ़ता चला जा रहा है जिस कारण अनेक समस्यायें पैदा हो रही है, जो कि हमारे पर्यावरण को प्रभाविति करती है।
जनसंख्या से सम्बन्धित पर्यावरण प्रदूषण के निम्न महत्वपूर्ण मूल कारण है–
(1) विश्व की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि,
(2) नगरों मे विस्तार तथा नगरों में जनसंख्या के घनत्व में सतत वृद्धि,
(3) विश्व के विकसित एवं विकासशील प्रदेशों की जनसंख्या में तीव्र गति से बढ़ता अन्तराल,
(4) नगर–ग्रामीण जनसंख्या के अनुपात में वृद्धि आदि।
(2) औद्योगिक क्रिया–किलाप–मानवीय सभ्यता के विकास के साथ–साथ औद्योगीकरण भी विकसित होता गया परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याये पैदा होती गई। औद्योगिक विकास प्रत्यक्ष तथ अप्रत्यक्ष दोनों रूपों में हमारे वातावरण को प्रदूषित करता है।
औद्योगीकरण के दो प्रमुख संघटकों अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र गति से विदोहन तथा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि कर पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव होता है। कारखनों में कच्चे पदार्थों के उपयोग के लिए प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक विदोहन के कारण निम्न परिणाम उत्पन्न होते जो पर्यावरण की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं–
(1) वनों की कटाई के कारण वन क्षेत्रों में कमी।
(2) खनिज पदार्थो के खनन के कारण धरातल का उत्खलन द्वारा बंजर भूमि में परिवर्तन,
(3) औद्योगिक विस्तार के कारण कृषि भूमि में हास,
(4) भूमिगत जल के अत्यधिक निष्कासन के कारण भूमिगत जल के तल में गिरावट,
(5) भूमिगत जल में एवं खनिज तेल के निष्कासन के कारण धरातलीय सतल में अवतलन आदि।
(3) कृषि विकास–आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी, रासायनिक खादों के अत्यधिक प्रयोगों के द्वारा अनेक प्रकार से पर्यावरण को प्रदूषित किया है।
कृषि में तेजी से विस्तार होने से पर्यावरण में निम्न रूपों में प्रदूषण होता है–
(1) वन विकास तथा सम्बन्धित भूमि उपयोग में परिवर्तन होने से,
(2) खेतों में रासायनिक खादों, कीटनाशी एवं शाकनाशी रसायनों के प्रयोग से,
(3) सिंचाई सुविधाओं एवं सिंचाई की मात्रा में वृद्धि होने से,
(4) जैविक समुदायों में परिवर्तन होने से आदि।
(4) नगरीकरण–वास्तव में नगरीकरण में विस्तार एवं वृद्धि का तात्पर्य होता है नगरों में नाव नाव जनसंख्या के सान्द्रण में अत्यधिक वृद्धि तथा इस नगरी जनसंख्या में प्रस्फोट के कारण भवनों, सड़कों, गलियों, मलजल के नालों, बरसाती नालों, पक्की सतह, स्वचालित वाहनों (मोटर कार, ट्रक, बस, लारी, मोटर कार, स्कूटर आदि), कारखानों की संख्या, नगरी अपशिष्ट पदार्थों, एयरोसाल, धूम्र, राख, कचरा, मलजल, हानिकारक गैसों आदि में भारी वृद्धि होती है जिस कारण अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।
(5) आधुनिक प्रौद्योगिक–वर्तमान में प्रोद्योगिकी का मूल उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का तीव्र गति से विदोहन करना तथा मानव समाज के भौतिक स्तर को बढ़ाने के लिए इन संसाधनों से नाना प्रकार का उत्पादन करना, जो कि पर्यावरण जो प्रदूषित करता है।
आधुनिक प्रौद्योगिक मानव समाज के प्रत्येक अंग (यथा–आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक और सामाजिक) में प्रवेश कर गई है।
प्रश्न न0 2– पर्यावरण के संरक्षण के लिए पर्यावरणीय विधि के विकास में भारतीय न्यायापालिका के योगदान की व्याख्या कीजिए।
उत्तर– पर्यावरण संरक्षण में न्यायपालिका की भूमिका– भारत, अपने विविध पारिस्थितिकी तंत्र और जनसंख्या के साथ, अनेक पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना कर रहा है। वायु प्रदूषण और वनों की कटाई से लेकर जल की कमी और जैव विविधता के नुकसान तक, देश के प्राकृतिक संसाधन काफी दबाव में हैं। इस संदर्भ में, पर्यावरण संरक्षण सुनिश्चित करने में न्यायपालिका की भूमिका सर्वोपरि हो जाती है।
भारतीय न्यायपालिका ने पर्यावरण कानूनों की व्याख्या और प्रवर्तन, विवादों का निपटारा, पर्यावरण अधिकारों की रक्षा और पर्यावरण शासन को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने सतत विकास सिद्धांतों को अपनाया– भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने पर्यावरण, समाज और अर्थव्यवस्था के बीच संतुलन हासिल करने के महत्व को पहचानते हुए सतत विकास के सिद्धांतों को अपनाया है। यह अवधारणा, हालांकि नई नहीं है, लेकिन वैश्विक औद्योगिक और सूचना समाजों के उदय के साथ इक्कीसवीं सदी में इसने महत्व प्राप्त कर लिया है। सतत विकास का उद्देश्य भविष्य की पीढ़ियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान की जरूरतों को पूरा करना है, जैसा कि ब्रुंडलैंड रिपोर्ट में कहा गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने माना है कि 1972 में संयुक्त राष्ट्र मानव पर्यावरण सम्मेलन और स्टॉकहोम सम्मेलन ने पर्यावरण चेतना को बढ़ाने और प्रथागत अंतर्राष्ट्रीय कानून के हिस्से के रूप में सतत विकास के विचार को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने सतत विकास के कई सिद्धांतों को रेखांकित किया है , जिसमें निरंतर विकास के लिए आवश्यक पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित करते हुए निरंतर आर्थिक और सामाजिक प्रगति को आगे बढ़ाना शामिल है।

अंतर–पीढ़ीगत समानता का सिद्धांत इस बात पर जोर देता है कि विकास को गैर–नवीकरणीय संसाधनों को खत्म किए बिना और भावी पीढ़ियों को उनके लाभों से वंचित किए बिना वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को पूरा करना चाहिए। **बॉम्बे डाइंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड बनाम बॉम्बे एनवायरनमेंटल एक्शन ग्रुप के मामले** में सुप्रीम कोर्ट ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया, यह सुनिश्चित करते हुए कि वर्तमान पीढ़ियाँ भविष्य की पीढ़ियों के लिए नुकसानदेह संसाधनों का दोहन न करें।

एहतियाती सिद्धांत में कहा गया है कि राज्यों को पर्यावरण संरक्षण के लिए एहतियाती दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, भले ही पूर्ण वैज्ञानिक निश्चितता न हो, ताकि अपरिवर्तनीय क्षति को रोका जा सके। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धांत को अपनाया है, इसे पर्यावरण संबंधी मामलों में सबूत के बोझ में शामिल किया है। यथास्थिति को बदलने की मांग करने वालों को प्रस्तावित कार्यों के हानिकारक प्रभावों की अनुपस्थिति को प्रदर्शित करने में सबूत का बोझ उठाना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, न्यायालय इस सिद्धांत का समर्थन करता है कि प्रदूषण करने वालों को सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और निवेश को विकृत किए बिना प्रदूषण की लागत वहन करनी चाहिए। यह सिद्धांत पर्यावरणीय लागतों के अंतर्राष्ट्रीयकरण तथा प्रदूषण करने वालों को न केवल पीड़ितों को मुआवजा देने के लिए बल्कि पारिस्थितिकी तंत्र के पुनर्वास के लिए भी जवाबदेह ठहराने के लिए आर्थिक साधनों के उपयोग को बढ़ावा देता है।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इन सिद्धांतों को मान्यता देना और उनका प्रयोग करना सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण के प्रति उसकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है। इन सिद्धांतों को अपने निर्णयों में शामिल करके, न्यायालय जिम्मेदार व्यवहार, जवाबदेही और आर्थिक विकास तथा पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन को प्रोत्साहित करता है।

न्यायपालिका द्वारा पर्यावरण कानून सिद्धांतों का विकास

पूर्ण उत्तरदायित्व का सिद्धांत– यूनियन कार्बाइड कॉर्पोरेशन बनाम भारत संघ के ऐतिहासिक मामले में , भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्ण दायित्व के सिद्धांत की स्थापना की । न्यायालय ने माना कि जब कोई उद्यम स्वाभाविक रूप से खतरनाक या जोखिमपूर्ण गतिविधियों में संलग्न होता है, तो वह ऐसे कार्यों में दुर्घटनाओं के परिणामस्वरूप होने वाले किसी भी नुकसान के लिए पूरी तरह से उत्तरदायी होता है। यह दायित्व बिना किसी छूट के लागू होता है, जिसका अर्थ है कि उद्यम को दुर्घटना से प्रभावित सभी लोगों को मुआवजा देना होगा। इस निर्णय ने पर्यावरण मामलों में पूर्ण दायित्व की अवधारणा को पेश करते हुए एक नई मिसाल कायम की।

प्रदूषक भुगतान सिद्धांत– हाल के वर्षों में प्रदूषण करने वाले को भुगतान करना होगा के सिद्धांत को काफी मान्यता मिली है। अंतर्निहित सिद्धांत यह है कि यदि कोई व्यक्ति या संस्था पर्यावरण को प्रदूषित करती है, तो वे प्रदूषण और उसकी सफाई से जुड़ी लागतों को वहन करने के लिए जिम्मेदार हैं। यह सिद्धांत दोष निर्धारण पर आधारित नहीं है, बल्कि इस विचार पर आधारित है कि जो लोग पर्यावरण को नुकसान पहुंचाते हैं, उन्हें नुकसान की भरपाई के लिए जवाबदेह होना चाहिए। यह पर्यावरणीय नुकसान को दूर करने के लक्ष्य के साथ संरेखित है। **भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने वेल्लोर सिटीजन वेलफेयर फोरम बनाम भारत संघ के मामले** में प्रदूषण फैलाने वाले को भुगतान करने के सिद्धांत को सतत विकास का अभिन्न अंग माना।

एहतियाती सिद्धांत– वेल्लोर सिटीजन फोरम मामले में भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने एहतियाती सिद्धांत के तीन मुख्य पहलुओं को रेखांकित किया। सबसे पहले, पर्यावरणीय उपायों का उद्देश्य पर्यावरणीय गिरावट के कारणों का पूर्वानुमान लगाना, उन्हें रोकना और उनका समाधान करना होना चाहिए। दूसरा, वैज्ञानिक निश्चितता की कमी को आवश्यक उपायों को स्थगित करने के कारण के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। अंत में, सबूत का भार उस पक्ष पर होता है जो कार्रवाई करने के लिए अपनी सौम्य प्रकृति को प्रदर्शित करता है। ये सिद्धांत उन स्थितियों में निर्णय लेने का मार्गदर्शन करते हैं जहाँ पर्यावरण को संभावित नुकसान मौजूद है।

सार्वजनिक ट्रस्ट सिद्धांत– सार्वजनिक ट्रस्ट सिद्धांत इस सिद्धांत पर आधारित है कि कुछ संसाधन, जैसे वायु, जल, समुद्र और वन, समग्र रूप से समाज के लिए महत्वपूर्ण हैं और उन्हें निजी स्वामित्व के अधीन नहीं किया जाना चाहिए। **एम.सी. मेहता बनाम कमल नाथ एवं अन्य के मामले** में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि सार्वजनिक ट्रस्ट

सिद्धांत देश के कानून का एक अंतर्निहित हिस्सा है। यह सिद्धांत सुनिश्चित करता है कि इन संसाधनों की सुरक्षा और प्रबंधन जनता के सर्वोत्तम हित में किया जाए।

सतत विकास का सिद्धांत–सतत विकास की अवधारणा को विश्व पर्यावरण एवं विकास आयोग (WCED) ने अपनी रिपोर्ट में उजागर किया था, जिसे आमतौर पर ब्रुंडलैंड रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। सतत विकास से तात्पर्य ऐसे विकास से है जो भविष्य की पीढ़ियों की अपनी जरूरतों को पूरा करने की क्षमता से समझौता किए बिना वर्तमान जरूरतों को पूरा करता है। विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संतुलन बनाने में न्यायालय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। **रूरल लिटिगेशन एंड एनटाइटलमेंट केंद्र बनाम यूपी राज्य के मामले में** , न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि प्राकृतिक संसाधन मानव जाति की स्थायी संपत्ति हैं और इन्हें एक पीढ़ी के भीतर समाप्त नहीं किया जाना चाहिए। वेल्लोर सिटीजन वेलफेयर फोरम मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने सतत विकास को गरीबी उन्मूलन और पारिस्थितिकी वहन क्षमता के भीतर रहते हुए मानव जीवन को बेहतर बनाने के लिए एक व्यवहार्य अवधारणा के रूप में मान्यता दी।

न्यायपालिका द्वारा पर्यावरण अधिकारों को मान्यता– पर्यावरण संरक्षण में न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका कई प्रमुख निर्णयों में स्पष्ट है, जिनका सारांश नीचे दिया गया है–

(ए) स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार– चरण लाल साहू मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन के अधिकार में स्वस्थ पर्यावरण का अधिकार भी शामिल है।

दामोधर राव बनाम नगर निगम हैदराबाद मामले में , न्यायालय ने अनुच्छेद 48ए और 51ए(जी) के तहत संवैधानिक आदेशों पर भरोसा करते हुए कहा कि पर्यावरण प्रदूषण अनुच्छेद 21 में निहित जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का उल्लंघन होगा।

(बी) सार्वजनिक उपद्रव: न्यायिक प्रतिक्रिया–रतलाम नगर परिषद बनाम वर्धीचंद मामले में , सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय ने कानून के शासन के सामाजिक न्याय घटक पर जोर दिया। इसने वैधानिक अधिकारियों को सार्वजनिक उपद्रव को कम करने और पर्यावरण को प्रदूषण मुक्त बनाने में अपने दायित्वों को पूरा करने के लिए उत्तरदायी ठहराया, भले ही बजटीय बाधाएं हों। इस मामले ने जनहित याचिका (पीआईएल) को न्यायालयों के संवैधानिक दायित्व के रूप में भी मान्यता दी।

(सी) न्यायिक राहत में पीड़ितों को मुआवजा देना शामिल है– दिल्ली गैस रिसाव मामले (एमसी मेहता बनाम भारत संघ) में सुप्रीम कोर्ट ने कानून के दो महत्वपूर्ण सिद्धांत स्थापित किए। सबसे पहले, इसने अनुच्छेद 21 जैसे मौलिक अधिकारों के सिद्ध उल्लंघन के लिए मुआवजा सहित उपचारात्मक राहत देने की अदालत की शक्ति की पुष्टि की । दूसरे, इसने खतरनाक गतिविधियों में लगे उद्योगों के लिए 'कोई गलती नहीं' दायित्व (पूर्ण दायित्व) की अवधारणा पेश की, जिसने भारत में दायित्व और मुआवजा कानूनों को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया।

(डी) पानी का मौलिक अधिकार– भारत में पानी का मौलिक अधिकार न्यायिक व्याख्या के माध्यम से विकसित हुआ है। **नर्मदा बचाओ आंदोलन बनाम भारत संघ और अन्य मामले में** , सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि पानी मानव अस्तित्व के लिए एक बुनियादी जरूरत है और संविधान के अनुच्छेद 21 में निहित जीवन के अधिकार, मानव अधिकार, स्वस्थ पर्यावरण और सतत विकास के अधिकार का एक अंतर्निहित हिस्सा है।

प्रश्न न0 3– विकास पर्यावरण की कीमत पर नहीं होना चाहिए। इस कथन की व्याख्या कीजिए।

उत्तर– मैक्सिको के कोकोयाक नामक स्थान पर अक्टूबर, 1974 एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। सम्मेलन का विषय था पैटर्न ऑफ रिसोर्स यूज, इनवायर्मेण्ट डेवलपमेंट स्टेटेजीज। सम्मेलन कह अध्यक्षता लेडी जैक्सन बारबारा वार्ड द्वारा की गई। चूँकि यह सम्मेलन कोकोयाक नामक स्थान पर हुआ इसलिए इस सम्मेलन द्वारा स्वीकृति प्रस्ताव को कोकोयाक घोषणा कहते है। इसी सम्मेलन में सर्वप्रथम पर्यावरण एवं सतत विकास शब्द का प्रयोग किया। इस सम्मेलन में यह स्वीकार किया गया कि विकास का उद्देश्य मानव का विकास करना है न कि वस्तुओं का।

कोकोयाक घोषणा के पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के सतत विकास के लिए कार्य करना शुरू कर दिया है। सतत विकास का अर्थ है विकास एवं सकारात्मक पर्यावरणीयता का एकीकरण। सतत विकास के लिए विकास को आर्थिक एवं पारिस्थितिक पोषणीयता के अनुरूप होना चाहिए।

यह इस बात का द्योतक है कि विकास सम्बन्धी परियोजनाएँ पर्यावरण के अनुरूप बनाई जायें ताकि पर्यावरण और विकास जनता के लिए हो, जनता पर्यावरण एवं विकास के लिए नहीं। पर्यावरण एंव विकास परस्पर एक दूसरे पर आश्रित है क्योंकि बिना पर्यावरण संरक्षण के विकास नहीं हो सकता और बिना विकास के पर्यावरण संरक्षण नहीं हो सकता।

पर्यावरण एवं विकास विश्व आयोग के पर्यावरण विधि विशेषज्ञ ग्रुप के पर्यावरण संरक्षण और पोषणीय विकास के बारें पर्यावरणीय संसाधनों अज्ञैर व्यतिकरणों अधिकारों और दायित्वों के सम्बन्धों में निम्नलिखित सिद्धान्तों को अधिकथित किया है–

(1) जीवन और कलयाण के सहारों के लिए पर्याप्त वातावरण का मानव अधिकार है।

(2) राष्ट्रों पर्यावरण और अपने प्राकृतिक संसाधनों के प्रयोग के बारें में अन्तरपीढ़ी साम्या के सिद्धान्त को अपनाना चाहिए।

(3) संरक्षण का एक सिद्धान्त है अर्थात पर्यावरण और इसके संसाधनों के प्रयोग का प्रबन्धन ऐसा हो कि जो वर्तमान पीढ़ी को सबसे बड़ा पोषणीय हित दे जबकि भावी पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करने की संसाधन आधार

योग्यता को बनाए रखे। इस सन्दर्भ में परीक्षण अनुरक्षण उपयोग प्रत्यावर्तन और वृद्धि की धारणाएँ सम्मिलित है। इस सिद्धान्त को नियोजन प्रक्रियाओं का अंगभूत भाग होना चाहिए।

(4) जैवमण्डल के आवश्यक पारिथितिक तंत्र और पारिस्थितिक प्रक्रियाएँ संरक्षण और जैव विभिन्नता को परिरक्षित करने की आवश्यकता के अध्यधीन हो।

(5) राष्ट्रों को पर्यावरण संरक्षण के पर्याप्त मानकों को अपनाना चाहिए और प्राप्त डाटा को प्रकाशित करते हुए पर्यावरणीय संसाधनों की गुणवत्ता और प्रयोग में परिवर्तन को मॉनीटर करना चाहिए।

(6) जहाँ कोई कार्यकलाप पर्यावरण और इसके संसाधनों के प्रयोग में महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है तो ऐसा कार्यकलाप अपने प्रभाव के पर्यावरणीय मूल्यांकन के अधीन होना चाहिए, इसके पहले कि यह निर्णय किया जाए कि क्या इसे आगे बढ़ाने के लिए अनुज्ञात किया जाना चाहिए।

(7) राष्ट्रों को पोषणीय विकास की संकल्पना का समर्थन करने में सहयोग करना चाहिए, और उन राष्ट्रो को जो अधिक विकसित है उन राष्ट्रों की सहायता करनी चाहिए जो अभी विकास कर रहे है।

(8) पूर्ववर्ती प्रकार के कार्यकलाप से सम्भवत प्रभावित होने वाले व्यक्तियों को इस मुद्दे के बारे में ठीक समय में समय मे सूचित किया जाना चाहिए और सुसंगत प्रशासनिक या न्यायिक कार्यवाही के पास पहुँचने दिया जाना चाहिए।

(9) जहाँ प्राकृतिक संसाधन राष्ट्रीय सीमाओं को पार करते है, उनका प्रयोग राष्ट्रों द्वारा युक्तियुक्त और साम्यपूर्ण तरीके से करना चाहिए, जबकि राष्ट्रों को साधारणतया महत्वपूर्ण सीमापार क्षति कारित करने से पर्यावरणीय व्यतिकरण का निवारण करना चाहिए।

(10) जहाँ राष्ट्र अनुज्ञात करते हैं या स्वयं हितकारी कार्यकलाप प्रारम्भ करते है जो खतरनाक भी है, उन्हें खतरा को सीमित करने और प्रतिकार प्रदान करने के लिए युक्तियुक्त एहतियाती उपाय करने चाहिए, यदि सीमापार पर्याप्त क्षति होती है। इसके अतिरिक्त प्रतिकर ऐसी क्षति के बारे में प्रदान किया जाना जहाँ वह ऐसे कार्यकलाप से उत्पन्न होती है जिसकी हानिकारिक समझी नहीं गई थी जब यह हुआ।

(11) राष्ट्रों को यह साधारण बाध्यता है कि वे पर्यावरणीय समस्याओं, व्यतिकरण और प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में सहयोग करें जो राष्ट्रीय सीमाओं के पार जाते है, और अनसम्बन्धित राष्ट्रो को समायोजित रीति में ऐसे सुसंगत सूचना भेज दें।

(12) राष्ट्रों को सीमापार पर्यावरणीय व्यतिकरण के बारे में मानकों को लागू करना चाहिए और पर्यावरणीय संसाधनों का उपयोग उससे कठोर नहीं चाहिए जितना कि घरेलू होता है।

(13) जहाँ विद्यमान या संभावित पर्यावरणीय व्यतिकरण या पर्यावरणीय संसाधनों का उपयोग है, सम्बन्धित राज्यों के प्रारम्भिक प्रक्रम में सद्भाव से एक साथ परामर्श करना चाहिए और वैसे ही उन्हें ऐसे मुद्दों को मॉनीटर करने और खोज करने, उपयुक्त मानकों को स्थापित करने में सहयोग देने में मिलकर कार्य करना चाहिए।

(14) राष्ट्रों को ऐसी स्थितियों से निपटने के लिए, जहाँ सीमापार व्यतिकरण होगा, आकस्मिक योजना का विकास करना चाहिए और जहाँ ऐसा आकस्मिक संकट है उन्हें अन्य सम्बन्धित राज्यों को तुरन्त सावधान करना चाहिए और उनको सुसंगत सूचना प्रदान करनी चाहिए।

(15) जहाँ कोई शक्ति सीमापार व्यतिकरण से प्रभावित होता है या उनके पर्यावरणीय संसाधन के प्रयोग से प्रभावित होता है, तो किन्ही सुसंगत प्रशासनिक या न्यायिक कार्यवाहियों में उस व्यक्ति के लिए समान पहुँच और बर्ताव की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(16) राष्ट्रों को उस कार्यकलाप को बन्द कर देना चाहिए जो अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरणीय बाध्यताओं के उल्लंघन में है और कारित क्षति के लिए प्रतिकर देना चाहिए और शान्तिपूर्ण ढंग से पर्यावरणीय बाध्यता को निपटा भी लेना चाहिए।

भारत में इसे प्रदूषक भुगतान करे का सिद्धान्त के रूप में उच्चतम न्यायालय द्वारा मान्यता दी गयी है। **वेलो सिटीजन्स वेलफेयर बनाम भारत संघ एआईआर 1996 एससी 2715 के मामले** में न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह ने कहा कि निरन्तर विकास पारिस्थितिकी तथा विकास के बीच सन्तुलित अवधारण है। उन्होने यह और स्पष्ट किया है कि निरन्तर विकास की महत्वपूर्ण विशेषताओं में से कुछ, जैसा कि ब्राण्डलैण्ड रिपोर्ट और अन्य अन्तर्राष्ट्रीय दस्तावेजों से स्पष्ट है, अन्तर–पीढ़ीय समानता, प्रयोग और प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, पर्यावरण सम्बन्धी संरक्षण, पूर्वावधानी सिद्धान्त प्रदूषक खोज सिद्धान्त तथा सहयोग करना, गरीबी का उन्मूलन करना और विकासशील देशों को वित्तीय सहयता देना इत्यादि।

इसी प्रकार न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह के अनुसार– ''प्रदूषक भुगतान करे का सिद्धान्त'' का तात्पर्य है कि पर्यावरण के क्षति के आत्यंतिक दायित्व का विस्तार ने केवल प्रदूषण के पीड़ित की क्षतिपूर्ति करने तक बल्कि पर्यावरण सम्बन्धी अपक्षय को प्रत्यावर्तित करने की कीमत तक ही है। क्षतिग्रहस्त पर्यावरण का निरन्तर की प्रक्रिया का भाग है और इस प्रकार प्रदूषक व्यक्तिगत क्षतिग्रस्त को व्यय तथा क्षतिग्रस्त पारिस्थितिकी को परिवर्तित करने में व्यय का भुगतान करने का दायी है।

अतएव पोषणीय विकास वर्तमान युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है– विकास होने पर पर्यावरण का नाश न हो। इस विचारधारा के अन्तर्गत हमें अपने आर्थिक विकास के लिए आवश्यक प्राकृतिक सम्पदाओं वन, जल, मृदा के दुरूपयोग को बचाना होगा। यदि हम इन तीन प्राकृतिक सम्पदाओं का सोच–समझ कर, उनका ध्यान रखकर

उपयोग करें तो कृषि एवं औद्योगिक विकास दोनों सम्भव है तथा उन प्राकृतिक सम्पदाओं को संचित भी रख सकते है।

प्रश्न न0 4– पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत अधिकारियों की नियुक्ति एवं उनके अधिकार तथा कर्तव्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– अधिकारियों की नियुक्ति करने एवं उन्हें आवश्यक शक्तियाँ प्रदान करने की शक्ति– अधिनियम की धारा 4 केन्द्र सरकार की इस शक्ति के बारे में निम्नलिखित उपबन्ध करती है–

(1) धारा 3 की उपधारा (3) के उपबन्धों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, केन्द्र सरकार ऐसे पदनामों से अधिकारियों की नियुक्ति कर सकेगी जैसा वह इस अधिनियमों के प्रयोजनों के लिए उचित समझे।

(2) उपधारा (3) के अधीन नियुक्त अधिकारी केन्द्र सरकार के सामान्य नियन्त्रण और निर्देश के अध्यधीन रहेगे अथवा यदि सरकार निर्देशित किया जाता है तो वे ऐसे प्राधिकारी या प्राधिकारियों के अध्यधीन होगें, यदि कोई धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन प्राधिकरण गठित किया गया है।

धारा 4 अधिकारियों को नियुक्त करने की जो शक्ति केन्द्र सरकार को प्रदान करती है, उसके बारे में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय कही जा सकती है–

(1) केन्द्र सरकार पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के प्रयोजनों को प्राप्त करने लिए–

(क) अपेक्षित संख्या में अधिकारियों के पद सृजित कर सकती है और

(ख) उन पदों पर अधिकारियों की नियुक्ति पद सृजित कर सकती है

(ग) इस प्रकार नियुक्त किए गए अधिकारियों को, केन्द्र सरकार आवश्यक शक्तियाँ प्रदान कर सकती है एवं कृत्य सौंप सकती है।

(2) केन्द्र सरकार के सामान्य नियन्त्रण और निर्देशन के अधीन होंगे अथवा

(क) यदि केन्द्र सरकार निर्देशित करती है तो वे धारा 3 की उपधारा (3) के अधीन गठित प्राधिकरण या प्राधिकारियों के अधीन भी होगे।

(3) केन्द्र सरकार धारा 4 के अन्तर्गत प्राप्त शक्ति का प्रयोग अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) के प्रावधानों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना करेगी।

एमसी मेहता बनाम भारत संघ (गंगा प्रदूषण मामला) (1988) कानपुर लंबे समय से भारत में चमड़े के उद्योग का केंद्र रहा है। इनमें से ज्यादातर उद्योग गंगा नदी के दक्षिणी तट पर स्थित हैं। इन उद्योगों को नदी को प्रदूषित करने के लिए जाना जाता है। 1985 में, नदी में फेंकी गई माचिस की तीली के कारण नदी में भयंकर आग लग गई थी, क्योंकि इसकी सतह पर रसायनों की एक जहरीली परत जम गई थी। इस प्रकार, प्रसिद्ध पर्यावरण अधिवक्ता और कार्यकर्ता एमसी मेहता ने टेनरियों और कानपुर नगर निगम के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की, ताकि उन्हें नदी में अनुपचारित अपशिष्टों को छोड़ने से रोका जा सके, जिससे नदी प्रदूषित हो रही है।

न्यायालय ने माना कि भारत में पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986 और जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 सहित कई कानून लागू हैं। हालाँकि, अधिकारी इन कानूनों के तहत निर्धारित अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने में लापरवाह रहे हैं। इसने यह भी देखा कि प्राथमिक उपचार संयंत्र स्थापित करने के मुद्दे पर विचार करते समय उद्योगों की वित्तीय क्षमताएँ अप्रासंगिक हैं। इसलिए, प्रत्येक टेनरी को कम से कम प्राथमिक उपचार संयंत्र स्थापित करने का निर्देश दिया गया, यदि द्वितीयक संयंत्र नहीं।

न्यायालय ने निम्नलिखित दिशानिर्देश भी निर्धारित किये–

केंद्र सरकार का यह कर्तव्य था कि वह भारत भर के सभी शैक्षणिक संस्थानों को निर्देश दे कि वे पर्यावरण संरक्षण और सुधार पर हर सप्ताह कम से कम एक घंटा पाठ पढ़ाएं।

इसके अलावा, केन्द्र सरकार को पर्यावरण संबंधी पाठ्यपुस्तकें प्रकाशित कर उन्हें विद्यार्थियों में वितरित करना चाहिए।

एमसी मेहता बनाम भारत संघ (वाहन प्रदूषण मामला) (1991) दिल्ली भारत की राष्ट्रीय राजधानी है और फिर भी इसे दुनिया के सबसे प्रदूषित शहरों में से एक माना जाता है। पिछले कुछ सालों में दिल्ली की आबादी कई गुना बढ़ गई है और इसका एक नतीजा यह हुआ है कि प्रदूषण का स्तर आसमान छू रहा है। प्रदूषण का मुख्य स्रोत दोपहिया वाहन रहे हैं। इसलिए, एमसी मेहता ने वाहनों से होने वाले प्रदूषण के कारण राजधानी की दुर्दशा को उजागर करने और समस्या के व्यावहारिक समाधान सुझाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की।

याचिकाकर्ता द्वारा सुझाए गए तकनीकी और अन्य समाधानों तथा प्रस्तुत साहित्य के संदर्भ में, न्यायालय ने निम्नलिखित अंतरिम आदेश पारित किए–रू

पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1955 के तहत राज्य का कर्तव्य है और जैसा कि धारा 51ए में मौलिक कर्तव्य के रूप में उल्लेख किया गया है, पर्यावरण, जीवन, वनस्पतियों और जीव–जंतुओं की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है।

पर्यावरण प्रदूषण को कम करने के लिए जागरूकता बहुत जरूरी है। लोगों को पर्यावरण स्वास्थ्य पर वाहनों से होने वाले प्रदूषण के हानिकारक प्रभावों के बारे में जागरूक किया जाना चाहिए।

राजधानी में वाहन प्रदूषण की जांच करने तथा इसे रोकने के व्यावहारिक समाधान सुझाने के लिए एक समिति गठित की गई।

पर्यावरण (संरक्षण) नियमाचली, 1986 के नियम 4 के अनुसार केन्द्र सरकार पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 की धारा 5 के अधीन निदेश देने की शक्ति का उपयोग करते समय निम्नलिखित शर्तों का पालन करेगी–

(1) निदेश लिखित में होना चाहिए।

(2) निदेश में–

(क) कार्यवाही की प्रकृति का स्पष्ट रूप में उल्लेख होना चाहिए।

(ख) वह अवधि बताई जानी चाहिए जिसमें केन्द्र सरकार के द्वारा गए निदेश का पालन किया जाता है।

(3) जिस व्यक्ति, अधिकारी या प्राधिकारीको ऐसा निदेश जारी किया गया है, उसे प्रस्तावित निदेश की प्रतिलिपि तामील कराई जानी चाहिए और तामीली की तिथि से आपत्ति फाइल करने के लिए कम से कम 15 दिन का समय दिया जान चाहिए।

(4) वहाँ प्रस्तावित निदेश की प्रतिलिपि उद्योग, संक्रिया या प्रक्रिया के अध्यासी को भी कराई जाएगी और 15 दिन के अन्दर आपत्ति फाइल करने का मौका दिया जायेगा, जहाँ प्रस्तावित निदेश बिजली या पानी या कोई अन्य सेवा को–

(क) रोकने, या

(ख) नियमित करने से सम्बन्धित है।

परन्तु अध्यासी को वहाँ सुनवाई का मौाका नहीं दिया जायेगा जहाँ उसे पहले ही सुना जा चुका है और ऐसी सुनवाई के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने बिजली, पानी या कोई अन्य सेवा रोकने या नियमित करने का निदेश जारी किया है।

(5) केन्द्रीय सरकार आपत्ति प्राप्ति की तिथि से उस तिथि से जिस तिथि को किसी व्यक्ति अधिकारी, प्राधिकारी को आपत्ति प्रस्तुत करने का अवसर दिया गया था (जो भी जल्दी हो), 45 दिन के अन्दर आपत्ति का विचार करेगी और लिखित में कारणों को बताते हुए–

(क) निदेश को पुष्ट करेगी, या

(ख) संशोधित करेगी, या

(ग) प्रस्तावित निदेश जारी न करने का निर्णय लेगी।

(6) केन्द्र सरकार वहाँ सुनवाई का अवसर बिना निदेश जारी कर सकती है जहाँ उसकी यह राय हो कि–

(क) पर्यावरण के गम्भीर क्षति होना सम्भाव्य है।

(ख) प्रस्तावित निदेश के विरूद्व आपत्ति फाइल करने का अवसर देना समीचीन नहीं है,

(ग) केन्द्र सरकार सुनवाई का अवसर न देने के लिखित में कारण अवश्य बताएगी।

<u>प्रश्न न0 5–</u> भारतीय पशु कल्याण बोर्ड के गठन, शक्तियाँ एवं कार्यों की व्याख्या कीजिए।

<u>उत्तर–</u> इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(ए)'पशु' का अर्थ है मनुष्य के अलावा कोई भी जीवित प्राणी;

(बी)'बोर्ड' से तात्पर्य धारा 4 के तहत स्थापित बोर्ड से है, तथा धारा 5ए के तहत समय–समय पर पुनर्गठित बोर्ड से है;

(सी) 'बंदी पशु' से तात्पर्य किसी भी पशु (पालतू पशु को छोड़कर) से है जो बंदी या कारावास में है, चाहे वह स्थायी हो या अस्थायी, या जिसे बंदी या कारावास से भागने में बाधा डालने या रोकने के उद्देश्य से किसी उपकरण या युक्ति के अधीन किया गया है या जो कि बंधा हुआ है या जो विकलांग है या प्रतीत होता है;

(डी)'पालतू पशु' से तात्पर्य किसी ऐसे पशु से है जिसे पालतू बनाया गया है या जिसे मनुष्य के उपयोग के लिए किसी प्रयोजन की पूर्ति हेतु पर्याप्त रूप से पालतू बनाया गया है या बनाया जा रहा है या जो, यद्यपि न तो इस प्रकार पालतू बनाया गया है, न बनाया जा रहा है और न ही बनाए जाने का इरादा है, वास्तव में पूर्णतः या आंशिक रूप से पालतू है या बन गया है;

(इ) 'स्थानीय प्राधिकरण' से तात्पर्य किसी नगरपालिका समिति, जिला बोर्ड या अन्य प्राधिकरण से है जिसे किसी निर्दिष्ट स्थानीय क्षेत्र के भीतर किसी भी मामले के नियंत्रण और प्रशासन के लिए कानून द्वारा निवेश किया गया है;

(एफ) किसी पशु के संदर्भ में प्रयुक्त 'स्वामी' में न केवल स्वामी बल्कि पशु पर उस समय का कब्जा या अभिरक्षा रखने वाला कोई अन्य व्यक्ति भी शामिल है, चाहे स्वामी की सहमति से या उसके बिना;

(जी) 'फूका' या 'डूम देव' में किसी दुधारू पशु के मादा अंग में वायु या कोई पदार्थ डालने की कोई प्रक्रिया शामिल है जिसका उद्देश्य पशु से दूध का स्राव निकालना है;

(एच) 'निर्धारितष का तात्पर्य इस अधिनियम के तहत बनाए गए नियमों द्वारा निर्धारित है;

(आई) 'सड़क' में कोई भी रास्ता, सड़क, गली, चौराहा, प्रांगण, गली, मार्ग या खुला स्थान शामिल है, चाहे वह मुख्य मार्ग हो या न हो, जिस तक जनता की पहुंच हो।

पशुओं की देखभाल करने वाले व्यक्तियों के कर्तव्य – किसी पशु की देखभाल या प्रभार संभालने वाले प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य होगा कि वह ऐसे पशु की भलाई सुनिश्चित करने के लिए सभी उचित उपाय करे तथा ऐसे पशु को अनावश्यक पीड़ा या कष्ट पहुंचाने से रोके।

भारतीय पशु कल्याण बोर्ड की स्थापना– (1) साधारणतया पशु कल्याण को बढ़ावा देने के लिए तथा विशेषतया पशुओं को अनावश्यक पीड़ा या कष्ट से बचाने के प्रयोजन के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात यथाशीघ्र एक बोर्ड की स्थापना की जाएगी जिसे भारतीय पशु कल्याण बोर्ड कहा जाएगा।

(2) बोर्ड एक निगमित निकाय होगा, जिसका शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुहर होगी तथा इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए उसे संपत्ति अर्जित करने, धारण करने और उसका निपटान करने की शक्ति होगी तथा वह अपने नाम से वाद ला सकेगा और उस पर वाद लाया जा सकेगा।

बोर्ड का गठन– (1) बोर्ड में निम्नलिखित व्यक्ति शामिल होंगे, अर्थात्

(ए) वन महानिरीक्षक, भारत सरकार, पदेन;

(बी)भारत सरकार के पशुपालन आयुक्त, पदेन;

(1) केन्द्रीय सरकार के गृह मामलों और शिक्षा से संबंधित मंत्रियों का प्रतिनिधित्व करने वाले दो व्यक्ति, जिन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा;

(2) भारतीय वन्य जीव बोर्ड का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक व्यक्ति, जिसे केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा;

(3) तीन व्यक्ति जो, केन्द्रीय सरकार की राय में, पशु कल्याण कार्य में सक्रिय रूप से लगे हुए हैं या लगे हुए हैं तथा सुप्रसिद्ध मानवतावादी हैं, जिन्हें केन्द्रीय सरकार द्वारा नामित किया जाएगा;

(सी) पशुचिकित्सा व्यवसायियों के ऐसे संघ का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक व्यक्ति, जिसे केंद्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए, उस संघ द्वारा निर्धारित तरीके से चुना जाएगा;

(डी) आधुनिक और स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों के चिकित्सकों का प्रतिनिधित्व करने के लिए दो व्यक्ति, जिन्हें केन्द्र सरकार द्वारा नामित किया जाएगा;

(इ) ऐसे दो नगर निगमों में से प्रत्येक का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक व्यक्ति, जो केन्द्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व किए जाने चाहिए, जो उक्त प्रत्येक निगम द्वारा निर्धारित तरीके से निर्वाचित किया जाएगा;

(एफ) पशु कल्याण में सक्रिय रूप से रुचि रखने वाले ऐसे तीन संगठनों में से प्रत्येक का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक व्यक्ति, जिसे केंद्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व किया जाना चाहिए, जिसे निर्धारित तरीके से उक्त संगठनों में से प्रत्येक द्वारा चुना जाएगा;

(जी) पशुओं के प्रति क्रूरता के निवारण से संबंधित ऐसी तीन सोसाइटियों में से प्रत्येक का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक व्यक्ति, जिसे केंद्रीय सरकार की राय में बोर्ड में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए, जिसे निर्धारित तरीके से चुना जाएगा;

(एच) केन्द्र सरकार द्वारा नामित तीन व्यक्ति;

(आई) संसद के छह सदस्य, जिनमें से चार लोक सभा द्वारा तथा दो राज्य सभा द्वारा निर्वाचित किये जायेंगे।

(4) उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (खख) या खंड (खख) में निर्दिष्ट व्यक्तियों में से कोई भी व्यक्ति बोर्ड की किसी भी बैठक में भाग लेने के लिए किसी अन्य व्यक्ति को प्रतिनियुक्त कर सकेगा।

(5) केन्द्रीय सरकार बोर्ड के एक सदस्य को इसका अध्यक्ष तथा बोर्ड के किसी अन्य सदस्य को इसका उपाध्यक्ष नामित करेगी।

बोर्ड के कार्य– बोर्ड के कार्य निम्नलिखित होंगे–

(ए) पशुओं के प्रति क्रूरता की रोकथाम के लिए भारत में लागू कानून का निरंतर अध्ययन करना तथा समय–समय पर ऐसे किसी कानून में किए जाने वाले संशोधनों पर सरकार को सलाह देना;

(बी) सामान्यतः पशुओं को अनावश्यक पीड़ा या कष्ट से बचाने के लिए, और विशेषतः जब उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा रहा हो या जब उनका उपयोग करतब दिखाने वाले पशुओं के रूप में किया जा रहा हो या जब उन्हें बंदीगृह या परिरोध में रखा गया हो, इस अधिनियम के अधीन नियम बनाने के संबंध में केन्द्रीय सरकार को सलाह देना;

(सी) सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी या अन्य व्यक्ति को वाहनों के डिजाइन में सुधार के बारे में सलाह देना ताकि भार ढोने वाले पशुओं पर बोझ कम किया जा सके;

(डी) पशुओं के सुधार के लिए बोर्ड द्वारा उचित समझे जाने वाले सभी कदम उठाना, शेड, जल–कुंड आदि के निर्माण को प्रोत्साहित करना या उसके लिए प्रावधान करना तथा पशुओं को पशु चिकित्सा सहायता उपलब्ध कराना;

(इ) बूचड़खानों के डिजाइन या बूचड़खानों के रखरखाव या पशुओं के वध के संबंध में सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी या अन्य व्यक्ति को सलाह देना, ताकि जहां तक संभव हो, वध–पूर्व चरणों में अनावश्यक दर्द या पीड़ा, चाहे शारीरिक हो या मानसिक, को समाप्त किया जा सके, तथा जहां भी आवश्यक हो, पशुओं को यथासंभव मानवीय तरीके से मारा जाए;

(एफ) बोर्ड द्वारा उचित समझे जाने वाले सभी ऐसे कदम उठाना, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि अवांछित पशुओं को स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा नष्ट कर दिया जाए, जब भी ऐसा करना आवश्यक हो, या तो तुरन्त या पीड़ा या पीड़ा के कारण अचेत हो जाने के बाद;

(जी) वित्तीय सहायता या अन्य अनुदान के माध्यम से पिंजरापोल, बचाव गृह, पशु आश्रय, अभयारण्य और इसी प्रकार के अन्य स्थानों के निर्माण या स्थापना को प्रोत्साहित करना, जहां पशु और पक्षी बूढ़े और बेकार हो जाने पर या जब उन्हें संरक्षण की आवश्यकता हो, आश्रय पा सकें;
(एच) पशुओं को अनावश्यक पीड़ा या कष्ट से बचाने या पशुओं और पक्षियों के संरक्षण के उद्देश्य से स्थापित संघों या निकायों के साथ सहयोग करना और उनके कार्यों का समन्वय करना;
(आई) किसी स्थानीय क्षेत्र में कार्यरत पशु कल्याण संगठनों को वित्तीय एवं अन्य सहायता प्रदान करना अथवा किसी स्थानीय क्षेत्र में पशु कल्याण संगठनों के गठन को प्रोत्साहित करना, जो बोर्ड के सामान्य पर्यवेक्षण एवं मार्गदर्शन के अधीन कार्य करेंगे;
(जे) पशु अस्पतालों में प्रदान की जाने वाली चिकित्सा देखभाल और ध्यान से संबंधित मामलों पर सरकार को सलाह देना और जब भी बोर्ड ऐसा करना आवश्यक समझे, पशु अस्पतालों को वित्तीय और अन्य सहायता देना;
(के) पशुओं के प्रति मानवीय व्यवहार के संबंध में शिक्षा प्रदान करना तथा पशुओं को अनावश्यक पीड़ा या दर्द पहुँचाने के विरुद्ध जनमत के निर्माण को प्रोत्साहित करना तथा व्याख्यानों, पुस्तकों, पोस्टरों, चलचित्र प्रदर्शनियों आदि के माध्यम से पशु कल्याण को बढ़ावा देना;
(एल) पशु कल्याण या पशुओं को अनावश्यक पीड़ा या कष्ट पहुँचाने की रोकथाम से संबंधित किसी भी मामले पर सरकार को सलाह देना।

बोर्ड की विनियम बनाने की शक्ति– बोर्ड, केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन के अधीन रहते हुए, ऐसे विनियम बना सकेगा, जिन्हें वह अपने कार्यों के प्रशासन तथा अपने कार्यों के निष्पादन के लिए ठीक समझे।

प्रश्न न0 6–पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 के अन्तर्गत पर्यावरण को संरक्षित एवं परिवृद्धि के लिए केन्द्र सरकार की शक्तियों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर– पर्यावरण की सुरक्षा और सुधार के लिए उपाय करने की केंद्र सरकार की शक्तियां–

धारा 3 केंद्र सरकार को पर्यावरण की गुणवत्ता की रक्षा और सुधार करने तथा पर्यावरण प्रदूषण को रोकने, नियंत्रित करने और कम करने के लिए आवश्यक या समीचीन समझे जाने वाले सभी उपाय करने का अधिकार देती है। इनमें से कुछ उपाय इस प्रकार हैं–
(1) राज्य सरकारों, अधिकारियों और अन्य प्राधिकारियों के बीच कार्यों का समन्वय करना।
(2) राष्ट्रव्यापी कार्यक्रमों की योजना बनाना और उनका क्रियान्वयन करना।
(3) पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं की गुणवत्ता के लिए मानक निर्धारित करना।
(4) प्रदूषकों के उत्सर्जन या निर्वहन के लिए मानक निर्धारित करना।
(5) विशिष्ट क्षेत्रों में कुछ उद्योगों, प्रक्रियाओं या कार्यों के संचालन को प्रतिबंधित करना।
(6) प्रदूषण के कारण होने वाली दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिए प्रक्रियाएं और सुरक्षा उपाय निर्धारित करना तथा उपचारात्मक उपाय करना।
(7) खतरनाक पदार्थों के संचालन के लिए प्रक्रियाएं और सुरक्षा उपाय निर्धारित करना।
(8) उन विनिर्माण प्रक्रियाओं, सामग्रियों और पदार्थों की जांच करना जो प्रदूषण पैदा करने में सक्षम हैं।
(9) प्रदूषण से संबंधित मुद्दों पर जांच और अनुसंधान करना तथा प्रायोजित करना।
(10) परिसर, संयंत्र, उपकरण, मशीनरी, विनिर्माण या अन्य प्रक्रियाओं, सामग्रियों या पदार्थों का निरीक्षण करना।
(11) पर्यावरण प्रयोगशालाओं और संस्थानों की स्थापना करना या उन्हें मान्यता देना।
(12) प्रदूषण संबंधी मामलों पर जानकारी एकत्रित करना और उसका प्रसार करना।
(13) पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण और उपशमन से संबंधित कोड, मैनुअल या मार्गदर्शिका तैयार करना।
(14) ऐसे अन्य मामले जिन्हें सरकार आवश्यक या समीचीन समझे।

केन्द्रीय सरकार को ऐसी शक्तियों और कार्यों के प्रयोग और निष्पादन के प्रयोजनार्थ ऐसे प्राधिकरण/प्राधिकरणों का गठन करने का भी अधिकार है, जिन्हें सरकार उसे सौंपे।

प्रश्न न0 7– जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम, 1974 के अन्तर्गत केन्द्रीय बोर्ड के गठन, शक्तियाँ एवं कार्यों की विवेचना कीजिए।

उत्तर– केंद्रीय बोर्ड, राज्य बोर्ड और पीसीबी के कार्य सभी जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 द्वारा कवर किए गए हैं। केंद्रीय बोर्ड, जिसे केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के रूप में भी जाना जाता है, केंद्र सरकार द्वारा जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम की धारा 3 द्वारा स्थापित किया गया था।

केंद्रीय बोर्ड को एक स्थायी उत्तराधिकार निकाय कॉर्पोरेट के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसके पास इसे प्राप्त करने, बनाए रखने और निपटाने का अधिकार है। जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम, 1974 की धारा 3(3) के तहत व्यक्ति या पक्ष के साथ अनुबंध किया जा सकता है । केंद्रीय बोर्ड के नाम पर, वे मुकदमा दायर कर सकते हैं या प्राप्त कर सकते हैं।

केंद्रीय बोर्ड– केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड

संविधान एवं संरचना (धारा 3)–केंद्र सरकार को आधिकारिक राजपत्र में अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड नामक एक केंद्रीय बोर्ड नियुक्त करने या स्थापित करने का अधिकार है। जहां तक बोर्ड की संरचना का सवाल है, केंद्रीय बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य शामिल होने चाहिए–

(1) एक अध्यक्ष जिसके पास पर्यावरण संरक्षण से संबंधित मामलों से निपटने का ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो। अध्यक्ष की नियुक्ति केवल केंद्र सरकार द्वारा की जाएगी।
(2) केन्द्र सरकार का प्रतिनिधित्व करने वाले 5 से अधिक अधिकारी नहीं।
(3) राज्य बोर्ड के सदस्यों में से केन्द्र सरकार द्वारा अधिकतम 5 सदस्य नामित किये जायेंगे।
(4) कृषि, मत्स्य पालन, व्यापार या किसी अन्य हित का प्रतिनिधित्व करने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा अधिकतम 3 सदस्यों की नियुक्ति की जाएगी, जैसा कि सरकार उचित समझे।
(5) 2 व्यक्ति जो केन्द्र सरकार के स्वामित्व, नियंत्रण या स्वामित्व वाली कम्पनियों या निगमों का प्रतिनिधित्व करेंगे।
(6) एक पूर्णकालिक सदस्य सचिव जिसके पास वैज्ञानिक प्रबंधन और पर्यावरण प्रदूषण की रोकथाम का पूर्ण ज्ञान, अनुभव और योग्यता हो।

केंद्रीय बोर्ड के कार्य (धारा 16)–

(1) जल प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण से संबंधित किसी भी मामले पर केंद्र सरकार को सलाह देना।
(2) राज्य बोर्डों की गतिविधियों का समन्वय करना तथा उनके बीच विवादों का समाधान करना।
(3) राज्य बोर्डों को तकनीकी सहायता और मार्गदर्शन प्रदान करना, जल प्रदूषण की समस्याओं और जल प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण या उपशमन से संबंधित जांच और अनुसंधान को संचालित करना और प्रायोजित करना।
(4) जल प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण या उपशमन के लिए लगे हुए या लगाए जाने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण की योजना बनाना और उसे आयोजित करना, ऐसे नियमों और शर्तों पर जैसा कि केंद्रीय बोर्ड निर्दिष्ट करे।
(5) जल प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण के संबंध में जनसंचार माध्यमों के माध्यम से एक व्यापक कार्यक्रम आयोजित करें।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की शक्तियां– 1974 के जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम और 1981 के वायु (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम दोनों ने केंद्रीय पीसीबी की स्थापना की, जो एक वैधानिक निकाय है। देश में प्रदूषण को रोकने और प्रबंधित करने के लिए पर्यावरण कानूनों और विनियमों को बढ़ावा देना और उन्हें लागू करना ब्व्ब्ठ का मुख्य लक्ष्य है। इसकी क्षमताएँ और कर्तव्य निम्नलिखित हैं–
(1) जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम की धारा 18 केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को निर्देश देने का अधिकार देती है।
(2) यदि इसके किसी निर्देश का पालन नहीं किया जाता है, तो केंद्रीय पीसीबी को राज्य पीसीबी के किसी भी कर्तव्य को पूरा करने का अधिकार है।
(3) जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम की धारा 33ए केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को किसी भी गतिविधि, उद्योग, प्रक्रिया को प्रतिबंधित करने, बंद करने या विनियमित करने या ऊर्जा, जल या किसी अन्य सेवा आपूर्ति पर प्रतिबंध लगाने के निर्देश देने का अधिकार देती है।
ऐसे कई मामले सामने आए हैं, जिनमें च्ब्ठ से जुड़े पर्यावरण संबंधी मुद्दे अदालतों के सामने लाए गए हैं। यहाँ च्ब्ठ के बारे में कुछ उदाहरण और उनके महत्व के बारे में स्पष्टीकरण दिए गए हैं।

एम.सी. मेहता बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि टर्नरी की वित्तीय क्षमता कोई प्रासंगिक कारक नहीं है, जिसके कारण उन्हें बुनियादी उपचार संयंत्र लगाने के लिए बाध्य होना पड़ता है। राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड किसी उद्योग को संचालन जारी रखने की अनुमति नहीं देगा यदि वह प्राथमिक उपचार संयंत्र नहीं बना सकता है।

नरुला डाइंग एंड प्रिंटिंग वर्क्स बनाम यूनियन ऑफ इंडिया के मामले में दिए गए फैसले के अनुसार, जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम) की धारा 25 (2) के अनुसार राज्य पीसीबी द्वारा जारी सहमति आदेश औद्योगिक इकाई को व्यापारिक अपशिष्टों को किसी जलधारा में बहाने की अनुमति नहीं देता है। समूह को सहमति आदेश में उल्लिखित शर्तों का पालन करना चाहिए और सहमति आदेश में निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर अपशिष्ट जल उपचार संयंत्र स्थापित करना चाहिए।

सार्वजनिक शिकायत के आधार पर, **राज्य पीसीबी ने महावीर सोप और गोदाखू फैक्ट्री बनाम भारत संघ मामले** में आबादी वाले क्षेत्र में फैक्ट्री को जारी रखने की अनुमति देने से इनकार कर दिया। यह निर्णय लिया गया कि अनुमति देने से इनकार करने का एक वैध औचित्य था। न्यायालय के निर्णय ने किसी भी कारण से राज्य पीसीबी के फैसले को प्रतिस्थापित नहीं किया।

टीएन गोडावरमन तिरुमलपाद बनाम भारत संघ के मामले में दिए गए फैसले के अनुसार, एक राज्य पीसीबी धीरे–धीरे कई प्रदूषण स्रोतों को नियंत्रित करता है। न्यायालय के पास सरकार को यह बताने का कोई अधिकार नहीं है कि पहले कौन सी कार्रवाई की जानी चाहिए।

आंध्र प्रदेश प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड बनाम एम.वी. नायडू मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम की धारा 25 के अनुसार नई स्थापित कंपनियों को भी प्रदूषण फैलाने से रोका जाता है, जबकि वे अभी भी स्थापित हो रही हैं। इसलिए, उद्यम शुरू करने से पहले राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड से मंजूरी लेनी चाहिए।

महाबीर सोप और गोदाखू फैक्ट्री बनाम भारत संघ मामले में राज्य पीसीबी ने इस आधार पर उद्योग को जारी रखने की मंजूरी देने से इनकार कर दिया कि फैक्ट्री आबादी वाले इलाके में स्थित है और इस बारे में सार्वजनिक

शिकायत दर्ज की गई है। यह निर्णय लिया गया कि राज्य पीसीबी के औचित्य जल (प्रदूषण की रोकथाम और नियंत्रण) अधिनियम के लक्ष्य के अनुरूप थे। न्यायालय के आगे के फैसले के अनुसार, राज्य पीसीबी मना कर सकता है।

<u>प्रश्न न0 8–</u> वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के अन्तर्गत वन्य जीवों के शिकार पर प्रतिषेध सम्बन्धी प्रावधानों की व्याख्या कीजिए। निर्णीत वादों का भी उल्लेख कीजिए।

<u>उत्तर–</u> शिकार पर प्रतिबन्ध– शिकार दुनिया भर में फैल चुका है और इसे नियंत्रित करने के लिए शिकार पर प्रतिबंध लगाना जरूरी है। सरकार ने शिकार की गतिविधियों को विनियमित करने और जानवरों और उनके अंगों के व्यापार को विनियमित या प्रतिबंधित करने के लिए कानून भी बनाए हैं।

वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की धारा 9 के अनुसार , शिकार पर प्रतिबंध की व्याख्या की गई है। ष्कोई भी व्यक्ति अनुसूची I, II, III और IV में निर्दिष्ट किसी भी जंगली जानवर का शिकार नहीं करेगा, सिवाय धारा 11 और धारा 12 के तहत दिए गए प्रावधान के।ष स्वतंत्रता के बाद सरकार ने वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के तहत शिकार पर प्रतिबंध लगा दिया था, सिवाय कुछ उद्देश्यों के जिन्हें वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की धारा 11 और धारा 12 में परिभाषित किया गया है।

यदि हम शिकार पर प्रतिबन्ध के प्रभाव पर नजर डालें तो एक अध्ययन के अनुसार, यह पाया गया है कि बोत्सवाना सरकार द्वारा वन्यजीवों के शिकार पर प्रतिबन्ध लगाने से ग्रामीण लोगों की आय और आजीविका में कमी आई है, जिसके कारण उन्हें काफी नुकसान उठाना पड़ा है।

जंगली जानवरों का शिकार करना निश्चित रूप से एक अवैध कार्य है और ऐसा करने वाले किसी भी व्यक्ति पर ऊपर बताए गए विभिन्न अधिनियमों के अनुसार कानून के प्रावधानों के तहत मामला दर्ज किया जाएगा। अगर हम वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के प्रावधानों और धाराओं को देखें तो उसी अधिनियम की धारा 11 उन कुछ मामलों से निपटती है जिनमें जंगली जानवरों के शिकार की अनुमति है। वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम की धारा 11 कहती है कि, वर्तमान में लागू किसी अन्य कानून में निहित किसी भी बात के बावजूद और अध्याय प्ट के प्रावधान के अधीन।

यदि मुख्य वन्यजीव संरक्षक को यह विश्वास हो कि अनुसूची (I) में विनिर्दिष्ट कोई जंगली पशु मानव जीवन के लिए खतरनाक है या इतना बीमार है कि उसे बचाया नहीं जा सकता, तो वह लिखित आदेश द्वारा तथा इसके लिए कारण बताते हुए किसी भी व्यक्ति को ऐसे पशु का शिकार करने की अनुमति दे सकता है।

यदि मुख्य वन्यजीव संरक्षक या प्राधिकृत अधिकारी इस बात से संतुष्ट है कि अनुसूची (II) में उल्लिखित वन्य पशु मानव जीवन या किसी संपत्ति के लिए खतरनाक है, तो वह लिखित आदेश द्वारा और इसके कारण बताते हुए, किसी भी व्यक्ति को ऐसे किसी पशु का शिकार करने की अनुमति दे सकता है।

स्वयं की रक्षा या किसी अन्य की रक्षा के लिए किसी भी जंगली जानवर को मारना या नुकसान पहुंचाना वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 के तहत अपराध नहीं माना जाएगा।

ये वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की धारा 11 में दिए गए अपवाद हैं, जिसके तहत किसी भी व्यक्ति को जंगली जानवर का शिकार करने की अनुमति होगी।

किसी पशु को मारने का पूरा कार्य उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार होना चाहिए और यदि यह उल्लिखित प्रावधानों के अनुसार नहीं है तो उस व्यक्ति पर उक्त प्रावधानों के तहत मामला दर्ज किया जाएगा और उसे दंडित किया जाएगा।

विशेष प्रयोजनों के लिए शिकार की अनुमति प्रदान करने का सीधा सा अर्थ है कि कोई भी व्यक्ति कानून के प्रावधानों के अनुसार उत्तरदायी ठहराए बिना शिकार कर सकता है, जो केवल विशेष परिस्थितियों में या विशेष उद्देश्यों के लिए पशुओं के शिकार को नियंत्रित करते हैं।

वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 की धारा 12 के अनुसार , वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972 में अन्यत्र किसी बात के होते हुए भी, वार्डन के लिए किसी व्यक्ति को निर्धारित शुल्क के भुगतान पर, कारण बताते हुए लिखित आदेश द्वारा परमिट देना वैध है, जो ऐसे परमिट धारक को निम्नलिखित प्रयोजनों के लिए, निर्दिष्ट शर्तों के अधीन शिकार करने का अधिकार देगा–

(1) शिक्षा।
(2) वैज्ञानिक अनुसंधान.
(3) वैज्ञानिक प्रबंधन।

वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972 की धारा 12 का विश्लेषण करने पर हमें पता चलता है कि शिकार की अनुमति कुछ विशिष्ट उद्देश्यों के लिए दी जाती है और ये सभी विशिष्ट उद्देश्य किसी भी देश के विकास के लिए बहुत आवश्यक होते हैं और उपरोक्त तीन उद्देश्यों का उल्लेख किया गया है।

शिक्षा जिसे समाज का सबसे महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। शिक्षा सभी के लिए आवश्यक है तथा शोध एवं व्यावहारिक अध्ययन के कार्यों के लिए पशुओं के शरीर के अंगों की आवश्यकता होती है जिसके कारण इस क्षेत्र में शिकार की अनुमति दी जाती है।

वैज्ञानिक अनुसंधान एक ऐसी चीज है जिसे वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने के लिए इस क्षेत्र में विकसित करने की आवश्यकता है और किसी चीज या विशेष चीजों पर वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए कभी भी दूसरे देशों पर निर्भर

नहीं रहना चाहिए। और, आखिरी है वैज्ञानिक प्रबंधन। यह क्यों आवश्यक है, यह समझाने से पहले, पहले यह समझना चाहिए कि वैज्ञानिक प्रबंधन क्या है। श्वैज्ञानिक प्रबंधनश एक ऐसा प्रबंधन है जो किसी भी स्थान या संगठन में वर्कफ्लो का विश्लेषण और उसे सुचारू बनाता है। वैज्ञानिक प्रबंधन को एक तत्व माना जाता है और एक अपवाद के रूप में माना जाता है जिसके लिए शिकार की अनुमति है ताकि यह एक सुचारू वर्कफ्लो सुनिश्चित करे, दक्षता, प्रभावशीलता और उत्पादकता लाए।

बिहार राज्य बनाम मुराद अली खान, 1989 के मामले में , यह माना गया कि वन्यजीव संरक्षण अधिनियम की धारा 51(1) के तहत शिकार करना एक अपराध है और निर्णय दिया कि कुछ मामलों में जंगली जानवरों के शिकार की अनुमति दी जानी चाहिए और आत्मरक्षा का एक उदाहरण दिया कि किसी भी परिस्थिति में जंगली जानवरों से खुद को बचाने के लिए उस जानवर को मारना या कोई नुकसान पहुंचाना वन्यजीव संरक्षण अधिनियम के प्रावधान के अंतर्गत नहीं आएगा।

नवीन चंद्र गोगोई बनाम राज्य, 1958 के मामले में मजिस्ट्रेट ने व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 429 के तहत और वन्य पक्षी एवं पशु संरक्षण अधिनियम, 1912 के प्रावधानों के अनुसार दोषी ठहराया । लेकिन, याचिकाकर्ता ने इस फैसले के खिलाफ अपील दायर की और सत्र न्यायाधीश ने मजिस्ट्रेट के फैसले को बरकरार रखा और तर्क दिया कि आईपीसी की धारा 429 के तहत दोषसिद्धि वैध नहीं थी क्योंकि आईपीसी की धारा 429 कहती है कि घरेलू पशु की हत्या याचिकाकर्ता को प्रावधान के तहत उत्तरदायी बनाएगी और गैंडे की हत्या किसी भी तरह से घरेलू पशु की हत्या नहीं है और इसलिए आईपीसी की धारा 429 के प्रावधान के तहत दोषसिद्धि अमान्य है।

<u>प्रश्न न0 9</u>—संरक्षण वन से आप क्या समझते है? वनों को संरक्षित करने के लिए भारतीय वन अधिनियम, 1927 के द्वारा क्या प्रयास किये गये है? व्याख्या कीजिए।

<u>उत्तर</u>— धारा 29 में उल्लेखित किया गया है कि राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकेगी कि इस अध्याय के उपबन्ध किसी वन भूमि को जो आरक्षित वन में सम्मिलित नहीं है किन्तु जो सरकार की सम्पत्ति है या जिस पर सरकार का साम्पतिक अधिकार सम्पूर्ण वन उपज या उसके किसी भाग को, जिसकी सरकार हकदार है, लागू है।

ऐसी किसी अधिसूचना में समाविष्ट वन भूमि संरक्षित वन कहलाएगी। जब तक कि अधिसूचना में समाविष्ट भूमि में या बंजर भूमि में या उस पर सरकार या प्राइवेट व्यक्तियों के अधिकारों के स्वरूप और विस्तार की जाँच नहीं कर ली जाती और सर्वेक्षण या बन्दोवस्त अभिलेख में या अन्य किसी ऐसी रीति से जैसी राज्य सरकार पर्याप्त समझती है, उन्हें अभिलिखित नहीं कर लिया तब तक ऐसी अधिसूचना नहीं निकाली जायेगी। उपरोक्त अधिलेख के बारे में जब तक कि प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए, तब तक यह उपधारणा की जाएगी कि वह शुद्ध है।

परन्तु यदि किसी वन भूमि या बंजर भूमि को वावत राज्य सरकार यह समझती है कि ऐसी जाँच और अभिलेख आवश्यक है, किन्तु उनमें इतना समय लगेगा कि इस बीच राज्य सरकार के अधिकार खतरे में पड़ जायेगे, तो राज्य सरकार ऐसी जाँच और अभिलेख के लम्बित रहने तक ऐसी को भूमि को संरक्षित वन घोषित कर सकेगी, किन्तु इससे किन्हीं व्यक्तियों या समुदायों के विद्यमान अधिकार कम या प्रभावित नहीं होगे।

भारतीय वन अधिनियम, 1927—ब्रिटिश शासन के दौरान लागू किए गए पिछले भारतीय वन अधिनियमों के आधार पर भारतीय वन अधिनियम का संशोधित कानून बनाया गया था। संविधान की प्रस्तावना की तरह ही जो उद्देश्यों को निर्धारित करती है, हर कानून की अपनी प्रस्तावना होती है जिसमें उस विशेष अधिनियम के उद्देश्य और दिशा—निर्देश सूचीबद्ध होते हैं। भारतीय वन अधिनियम की प्रस्तावना में निम्नलिखित की मांग की गई है—

(1) वनों से संबंधित कानून को मजबूत करना,
(2) वन उपज का विनियमन और पारगमन, और
(3) लकड़ी और अन्य वन उपज पर शुल्क लगाना।

इसमें क्षेत्र को आरक्षित, संरक्षित या ग्राम वन घोषित करने के मामलों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया भी शामिल है। अधिनियम को 13 अध्यायों में विभाजित किया गया है, जिसमें कुल 86 धाराएँ हैं, जो विभिन्न वनों की परिभाषा से लेकर अधिनियम के प्रावधानों के उल्लंघन पर लगाए जाने वाले दंड तक हैं। श्वनश शब्द की परिभाषा के मामले में इसका दायरा व्यापक है क्योंकि इसमें निजी भूमि, चरागाह की भूमि, खेती योग्य भूमि आदि शामिल हैं और इसलिए सर्वोच्च न्यायालय ने अभी तक कोई विशेष व्याख्या नहीं की है और इसलिए अधिनियम वन या वन भूमि की परिभाषा पर चुप है।

अधिनियम की धारा 2 जो व्याख्या खंड है, वनों के क्षेत्र में आवश्यक विभिन्न शब्दों को परिभाषित करती हैय सभी जानवरों सहित मवेशियों से लेकर, वन अधिकारी जिन्हें राज्य सरकार द्वारा प्रभारी बनाया जाता है, वन उपज जिसमें लकड़ी, लकड़ी का कोयला, लकड़ी—तेल आदि शामिल हैं। इसमें नदी की एक अलग व्याख्या भी है जिसमें कोई भी धारा, नहर या अन्य चौनल शामिल हैं। इसके अलावा, अधिनियम को 3 प्रकार के वनों में वर्गीकृत किया गया हैरू आरक्षित वन, संरक्षित वन और ग्राम वन।

आरक्षित वन— अधिनियम के अध्याय II में धारा 3 से 27 तक आरक्षित वनों का वर्णन किया गया है। सरल शब्दों में, कोई भी वन भूमि या बंजर भूमि जिस पर सरकार का स्वामित्व है, आरक्षित वन है। ये वन प्रतिबंधित हैं क्योंकि सरकार के पास भूमि पर मालिकाना अधिकार हैं। आरक्षित वनों का उपयोग स्थानीय लोगों के लिए निषिद्ध है जब

तक कि उनके पास सरकार की अनुमति न हो। भूमि का क्षेत्र आरक्षित वन तब घोषित किया जाता है जब सरकार अधिनियम की धारा 4 के तहत प्रारंभिक अधिसूचना जारी करती है कि ऐसी भूमि को आरक्षित वन के रूप में माना जाना है और वन बंदोबस्त अधिकारी सभी अधिकारों को स्वीकार या अस्वीकार करके निपटाता है।

आईएफए, 1927 की धारा 26 में जंगल में चराई, पेड़ों की कटाई, जलाना, उत्खनन, शिकार आदि सहित कई गतिविधियों पर प्रतिबंध लगाया गया है। धारा 26 के प्रावधानों के उल्लंघन के लिए दंड दो साल तक की कैद या 20,000 रुपये तक का जुर्माना हो सकता है, लेकिन यह 5000 रुपये से कम नहीं होगा।

गांव के जंगल– अधिनियम के तहत धाराओं के क्रम के अनुसार, अधिनियम के अध्याय प्प्प में धारा 28 के तहत ग्राम वनों से निपटा जाता है। जब सरकार किसी आरक्षित वन या किसी अन्य भूमि को ग्राम समुदाय को उनके उपयोग के लिए आवंटित करती है, तो उस भूमि के टुकड़े को ग्राम वन भूमि के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है। अधिनियम के अनुसार, राज्य सरकार इन वनों के प्रबंधन को विनियमित करने के लिए नियम बनाती है।

कुछ मामलों में ग्राम वन और वन ग्राम शब्द का परस्पर उपयोग किया जाता है, लेकिन अंततः उनके अर्थ अलग–अलग होते हैं। जबकि भारतीय वन अधिनियम के तहत ग्राम वन एक कानूनी श्रेणी है, वन ग्राम केवल एक प्रशासनिक श्रेणी है। हालाँकि बाद वाले को वन विभाग द्वारा मान्यता प्राप्त है, लेकिन ऐसे गाँवों को राजस्व लाभ नहीं मिल सकता क्योंकि वे तकनीकी रूप से राजस्व विभागों के अधीन नहीं हैं। आम तौर पर, ग्राम वनों को दी गई भूमि को ग्राम चराई रिजर्व (वीजीआर) में शामिल किया जाता है।

अधिकारों के निपटान की प्रक्रिया– इस अधिनियम को मुख्य रूप से वनों के प्रकारों में अंतर करने, उनके उपयोग की सुरक्षा करने तथा वन उपज को विनियमित करने के लिए शामिल किया गया था। वनों के वर्गीकरण में सरकार के अधिकार शामिल हैं तथा यह निर्धारित करता है कि कोई वन या बंजर भूमि किस प्रकार आरक्षित या संरक्षित वन बनती है।

इस प्रक्रिया के तहत वन बंदोबस्त अधिकारी को स्थानीय निवासियों द्वारा भूमि के उपयोग के संबंध में किए गए दावों पर विचार करना होता है, बाद में अपने विवेक के आधार पर या तो स्वीकार करना होता है या स्थानांतरित करना होता है या इस प्रथा को बंद करना होता है। सरकार को पहले अधिनियम की धारा 4 के अनुसार यह अधिसूचित करना होता है कि भूमि का वह विशेष टुकड़ा आरक्षित या संरक्षित वन के रूप में चिन्हित किया जाएगा।

अधिनियम की धारा 6 के अनुसार, एफएसओ किसी भी ऐसे व्यक्ति की जांच के लिए बुला सकता है, जिसके बारे में उसे लगता है कि उसे तथ्यों की जानकारी है, जिसमें ऐसे किसी भी व्यक्ति के साक्ष्य शामिल हैं, जो उससे परिचित हो सकते हैं। इस तरह की अधिसूचना जारी होने के बाद अधिसूचित भूमि पर कोई नया अधिकार उत्पन्न नहीं हो सकता है, और किसी भी पहले से मौजूद अधिकार का दावा करने वालों के पास ऐसे अधिकार का दावा करने और मुआवजे के लिए मामला बनाने के लिए कम से कम तीन महीने का समय होता है।

प्रश्न न0 10– निम्नलिखित में से किन्हीं चार पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

उत्तर– (1) केन्द्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण– चिड़ियाघर जंगली जानवरों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। धारा 38। से 38श्र भारत में केंद्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण की स्थापना करता है जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय चिड़ियाघर नीतिए 1998 और राष्ट्रीय चिड़ियाघर नियमए 1992 यजैसा कि 2009 में संशोधित किया गया द्ध के अनुसार जैव विविधताए विशेष रूप से जानवरों का संरक्षण करना है।

धारा 38ए के अंतर्गत– धारा 38ए केन्द्र सरकार को एक केन्द्रीय चिड़ियाघर प्राधिकरण स्थापित करने की अनुमति देती है–

(1) जिसके अध्यक्षए सदस्य सचिव तथा दस अन्य व्यक्ति इसके सदस्य होंगे।

(2) इन सदस्यों की नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा की जाएगी।

धारा 38बी के अंतर्गत– (1) अध्यक्ष और अन्य दस सदस्य तीन वर्ष तक पद पर बने रहेंगे और वे धारा 38बी के अंतर्गत अपना त्यागपत्र केन्द्र सरकार को भेज सकते हैं ।

(2) केंद्र सरकार अध्यक्ष और अन्य सदस्यों को पद से हटा सकती हैए यदि वे दिवालिया हो जाते हैंए दोषी ठहराए जाते हैंए विकृत चित्त घोषित हो जाते हैं या कार्य करने से इनकार करते हैं।

चिड़ियाघर प्राधिकरण का कार्य और प्रक्रिया– (1) प्राधिकरण को धारा 38सी के तहत चिड़ियाघर को मान्यता देने और उसकी मान्यता रद्द करने तथा चिड़ियाघरों के कामकाज का मूल्यांकन करने का काम सौंपा गया है ।

(2) किसी चिड़ियाघर को मान्यता धारा 38एच के तहत निर्धारित शर्तों के अनुसार दी जाती है ।

(3) इसे भारत और बाहर चिड़ियाघर कर्मियों के प्रशिक्षण का समन्वय भी सुनिश्चित करना होगा।

(4) प्राधिकरण को चिड़ियाघरों में पशुओं के आवासए रखरखाव और पशु चिकित्सा देखभाल के लिए न्यूनतम मानक निर्धारित करना आवश्यक है।

(5) प्राधिकरण को धारा 38डी के अंतर्गत अपनी प्रक्रिया विनियमित करने का अधिकार है ।

(2) ध्वनि प्रदूषण का विधि नियंत्रण– भारत में ध्वनि प्रदूषण से संबंधित वैधानिक प्रावधान

भारत में ध्वनि प्रदूषण से संबंधित विभिन्न वैधानिक प्रावधान हैं। ऐसे प्रावधान विभिन्न कानूनों और संशोधनों में फैले हुए हैं और विभिन्न वैधानिक प्रावधान इस प्रकार हैं–

1. भारत का संविधान– भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 भारत के नागरिकों को जीवन का अधिकार देता है। सुप्रीम कोर्ट के विभिन्न फैसलों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि जीवन के अधिकार का मतलब केवल किसी व्यक्ति का अस्तित्व या जीवित रहना नहीं है। अनुच्छेद 21 का दायरा बहुत बड़ा है और कहा गया है कि यह किसी व्यक्ति को सम्मान के साथ जीने या बेहतर जीवन जीने का अधिकार सुनिश्चित करता है। अतः यदि किसी व्यक्ति को ध्वनि प्रदूषण के कारण समस्याओं का सामना करना पड़ता है और इससे उसकी शांति और आराम में बाधा उत्पन्न होती है तो इसका अर्थ है कि ध्वनि प्रदूषण उस व्यक्ति के जीवन के अधिकार का उल्लंघन कर रहा है।

2. दंड प्रक्रिया संहिता– दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 133, कार्यकारी मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट या उप–विभागीय मजिस्ट्रेट को किसी उपद्रव का कारण बनने वाली वस्तु को सशर्त हटाने का अधिकार देती है। इसलिए इस प्रावधान का उपयोग शोर के कारण होने वाले उपद्रव के मामले में किया जा सकता है। इसलिए यदि कार्यकारी मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट या उप–विभागीय मजिस्ट्रेट को किसी पुलिस अधिकारी या किसी अन्य स्रोत से रिपोर्ट मिलती है कि तेज आवाजें गैरकानूनी बाधा या उपद्रव पैदा कर रही हैं और ऐसे तेज आवाजों के स्रोत को सार्वजनिक स्थानों से हटाया जाना चाहिए, जिनका उपयोग जनता द्वारा वैध रूप से किया जाता है, तो कार्यकारी मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट या उप–विभागीय मजिस्ट्रेट एक निश्चित समय के भीतर ऐसे उपद्रव को हटाने का आदेश दे सकते हैं। यदि कार्यकारी मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट या उप–विभागीय मजिस्ट्रेट आवश्यक कार्रवाई नहीं करता है, तो उस स्थिति में, इस धारा को सिविल कोर्ट में प्रश्नगत किया जा सकता है।

3. भारतीय दंड संहिता– भारतीय दंड संहिता का अध्याय 14 कुछ अपराधों से संबंधित है। ऐसे अपराध वे कार्य हैं जो सार्वजनिक स्वास्थ्य या सुरक्षा को प्रभावित करते हैं। धारा 268, धारा 287, धारा 288, धारा 290, धारा 291 और धारा 294 ध्वनि प्रदूषण से संबंधित है। धारा 268 सार्वजनिक उपद्रव के बारे में बात करती है और कोई भी व्यक्ति जो किसी भी सार्वजनिक उपद्रव का दोषी है, अगर वह व्यक्ति ऐसा कार्य करता है जिससे किसी व्यक्ति को चोट लग सकती है, जिससे आम जनता परेशान हो सकती है या जिससे कोई सामान्य बाधा उत्पन्न हो सकती है। इसलिए ध्वनि प्रदूषण करना भी धारा 268 के प्रावधानों के अंतर्गत आता है। धारा 287 किसी भी मशीनरी के गैर–जिम्मेदाराना उपयोग के बारे में बात करती है। कोई भी व्यक्ति जो गैर–जिम्मेदाराना तरीके से किसी मशीनरी को संभालता है जिससे बाद में किसी को चोट या नुकसान पहुंचता है। इसलिए अगर कोई मशीन से ध्वनि प्रदूषण कर रहा है तो उस स्थिति में उस व्यक्ति को 6 महीने तक की कैद या 1000 रुपये का जुर्माना हो सकता है। धारा 288 में कहा गया है कि जब कोई इमारत निर्माण या मरम्मत की प्रक्रिया में हो तो उस स्थिति में यदि कोई व्यक्ति लापरवाही से किसी को चोट पहुंचाता है तो उस व्यक्ति को 6 महीने की कैद और 1000 रुपये के जुर्माने की सजा हो सकती है। अब इमारतों के निर्माण या मरम्मत के दौरान, काफी ध्वनि प्रदूषण होता है। इसलिए इस तरह के ध्वनि प्रदूषण से किसी व्यक्ति या आम जनता को आसानी से नुकसान हो सकता है और अगर ऐसा कुछ होता है तो अपराधी को भारतीय दंड संहिता की धारा 288 के तहत दंडित किया जाता है। धारा 290 सार्वजनिक उपद्रव के किसी अन्य रूप के बारे में बात करती है जिसका उल्लेख भारतीय दंड संहिता के तहत नहीं किया गया है। इसलिए मूल रूप से यदि कोई शोर से संबंधित घटना होती है जिसका उल्लेख संहिता के तहत नहीं किया गया है और ऐसी शोर से संबंधित घटना किसी प्रकार का सार्वजनिक उपद्रव पैदा कर रही है, तो उस स्थिति में, अपराधी को 200 रुपये का जुर्माना लगाया जाता है। धारा 291 में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति सार्वजनिक उपद्रव करना जारी रखता है, जबकि उसे न्यायालय द्वारा निषेधाज्ञा दी जा चुकी है तथा ऐसी निषेधाज्ञा में पहले से ही उस व्यक्ति को ऐसे कृत्यों को दोबारा न करने का आदेश दिया गया है, तो उस स्थिति में उस व्यक्ति को 6 महीने के कारावास की सजा दी जा सकती है या उस पर जुर्माना लगाया जा सकता है। धारा 294 में अश्लील गानों के बारे में बताया गया है और इसमें आगे कहा गया है कि अगर कोई व्यक्ति ऐसे अश्लील गाने बजाता है, सुनाता है या गाता है तो वह उपद्रव कर रहा है। ऐसे अपराधी को 3 महीने की जेल या जुर्माना या दोनों का प्रावधान है।

4. टोर्ट का कानून– ध्वनि प्रदूषण को अपकृत्य कानून के तहत उपद्रव के अपराध में शामिल किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जो इस तरह के ध्वनि प्रदूषण के कारण किसी समस्या का सामना कर रहा है, वह हर्जाने का दावा करने के लिए सिविल मुकदमा दायर कर सकता है। जब तक ध्वनि प्रदूषण के कारण व्यक्ति द्वारा भूमि के उपयोग में हस्तक्षेप होता है और व्यक्ति ऐसे नुकसानों को साबित कर सकता है, तब तक वह व्यक्ति ऐसे ध्वनि प्रदूषण से संबंधित मुकदमा दायर कर सकता है।

5. मोटर वाहन अधिनियम– मोटर वाहन अधिनियम में वाहनों में हॉर्न के इस्तेमाल से संबंधित दिशा–निर्देश दिए गए हैं। इस अधिनियम के तहत बहुत तेज आवाज वाले और उपद्रव पैदा करने वाले हॉर्न का इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं है ।

6. पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1996 के अंतर्गत ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण नियम, 2000– ध्वनि प्रदूषण से निपटने और उसे नियंत्रित करने के लिए भारत सरकार द्वारा वर्ष 2000 में ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण नियम में संशोधन किया गया और इसे पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1996 का एक भाग बनाया गया।

इस नियम के तहत सरकार ने औद्योगिक, वाणिज्यिक और आवासीय क्षेत्रों को वर्गीकृत किया और ऐसे वर्गीकृत क्षेत्रों के लिए ध्वनि मानक इस नियम के तहत निर्दिष्ट किए गए। इस नियम में यह भी कहा गया है कि किसी भी अस्पताल, स्कूल, विश्वविद्यालय और न्यायालय परिसर के 100 मीटर के दायरे को शांत क्षेत्र घोषित किया जाना

चाहिए और 100 मीटर की सीमा में न्यूनतम शोर किया जाना चाहिए। औद्योगिक क्षेत्रों में दिन के समय के लिए शोर मानक 75 डीबी, वाणिज्यिक क्षेत्रों में 65 डीबी, आवासीय क्षेत्रों में 55 डीबी और शांत क्षेत्र के लिए 50 डीबी है। औद्योगिक क्षेत्रों में रात के समय के लिए शोर मानक 70 डीबी, वाणिज्यिक क्षेत्रों में 55 डीबी, आवासीय क्षेत्रों में 45 डीबी और शांत क्षेत्र के लिए 40 डीबी है। साथ ही, इस नियम में कहा गया है कि किसी भी लाउडस्पीकर का उपयोग केवल प्राधिकारी द्वारा अनुमति के बाद ही किया जा सकता है और ऐसे लाउडस्पीकर का उपयोग रात 10 बजे से सुबह 6 बजे तक नहीं किया जा सकता है और इन नियमों का उल्लंघन करने वाला कोई भी व्यक्ति अपराधी बन जाता है और ऐसा अपराधी दंड और जुर्माने का पात्र होता है।

यह नियम सम्पूर्ण भारत में लागू है।

(3) स्टाकहोम– स्टॉकहोम घोषणा के सिद्धांत– मानवीय पर्यावरण पर 26 सिद्धांतों या मैग्ना कार्टा को बहुत विस्तार से बताया गया है। बेहतर समझ के लिए, सिद्धांतों को उनकी प्रयोज्यता और प्रवर्तनीयता के आधार पर समूहीकृत किया गया है। वे इस प्रकार हैंरू

मानव–केंद्रित (सिद्धांत 1 और 15)– सिद्धांत 1– पर्यावरण की सुरक्षा के लिए अधिकार और जिम्मेदारियाँ – मनुष्य को प्रकृति का उपयोग करने और उसका आनंद लेने का अधिकार है। प्रकृति का आनंद लेने का अधिकार निरंकुश नहीं है, यह इसकी रक्षा करने के कर्तव्य के साथ–साथ व्यापक है। संविधान का अनुच्छेद 21 भी स्वस्थ पर्यावरण के मौलिक अधिकार की रक्षा करता है। यह सिद्धांत भेदभावपूर्ण कानूनों को भी स्पष्ट रूप से रोकता है।

सिद्धांत 15– मानव बस्ती और शहरीकरण – नियोजित बस्तियाँ और शहरीकरण आवश्यक हैं। वे पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव को कम करते हैं। इसका लक्ष्य नियोजन के माध्यम से सभी के लिए अधिकतम लाभ सुनिश्चित करना है। सभी भेदभावपूर्ण योजनाओं पर भी रोक है।

सतत विकास (सिद्धांत 2, 3, 4, 5, 13 और 14)– सिद्धांत 2– प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना कर्तव्य – प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं। हमें प्राकृतिक संसाधनों का सावधानीपूर्वक उपयोग करना चाहिए। संसाधनों का संरक्षण प्रभावी नियोजन और प्रबंधन पर निर्भर करता है।

सिद्धांत 3– नवीकरणीय संसाधनों को संरक्षित करने का कर्तव्य – यद्यपि नवीकरणीय संसाधन समाप्त नहीं होते, फिर भी उनकी गुणवत्ता के लिए उनका संरक्षण आवश्यक है।

सिद्धांत 4– वन्यजीव संरक्षण – वन्यजीवों को खतरे में डालने के लिए कई कारक जिम्मेदार हैं। वन्यजीवों की सुरक्षा के लिए मनुष्य की विशेष जिम्मेदारी है। आर्थिक नियोजन में वन्यजीवों के संरक्षण को शामिल करने से सतत विकास होता है।

सिद्धांत 5– गैर–नवीकरणीय संसाधनों को संरक्षित करने का कर्तव्य – गैर–नवीकरणीय संसाधन समाप्त होने वाले हैं। वे मूल्यवान संसाधन हैं। उन्हें खत्म होने से बचाने के लिए सावधानी और सतर्कता बरतना जरूरी है

सिद्धांत 13– संसाधनों का तर्कसंगत प्रबंधन – राज्यों को संसाधनों के प्रबंधन और पर्यावरण को बेहतर बनाने के लिए तर्कसंगत तरीके अपनाने चाहिए। एक एकीकृत और समन्वित दृष्टिकोण बेहतर है।

सिद्धांत 14– तर्कसंगत योजना – विकास और संरक्षण के बीच संघर्ष को तर्कसंगत योजना के साथ सुलझाया जा सकता है। विकास और संरक्षण को साथ–साथ चलना चाहिए।

प्रथागत अंतर्राष्ट्रीय कानून की स्थिति पर चिंतन (सिद्धांत 21)– राज्यों को अपनी नीतियों के अनुसार प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने का पूर्ण अधिकार है। हालाँकि, उनकी नीतियों को अंतर्राष्ट्रीय कानून के सिद्धांतों का उल्लंघन नहीं करना चाहिए और अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर अन्य राज्यों को नुकसान नहीं पहुँचाना चाहिए।

निवारक कार्रवाई (सिद्धांत 6,7,8 और 18)– सिद्धांत 6– प्रदूषण का प्रबंधन – प्रदूषण पर्यावरण के लिए हानिकारक है। बड़ी मात्रा में विषाक्त पदार्थों और अन्य पदार्थों का निर्वहन पारिस्थितिकी तंत्र के लिए हानिकारक है। नागरिकों और राज्यों दोनों को हानिकारक पदार्थों के डंपिंग को कम करने में सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए।

सिद्धांत 7– समुद्री प्रदूषण का प्रबंधन – राज्यों को मानव स्वास्थ्य, समुद्री जीवन और समुद्रों के वैध उपयोग के लिए खतरनाक पदार्थों को रोकने के लिए आवश्यक कदम उठाकर समुद्री प्रदूषण को कम करना चाहिए।

सिद्धांत 8– सामाजिक और आर्थिक विकास – बेहतर जीवन और कार्य वातावरण के लिए सामाजिक और आर्थिक स्थितियों में सुधार आवश्यक है। सुधारों से पर्यावरण पर किसी भी तरह का असर नहीं पड़ना चाहिए।

सिद्धांत 18– विज्ञान का अनुप्रयोग – विज्ञान और प्रौद्योगिकी आज के जीवन में अपरिहार्य हैं। इनका उपयोग लगभग हर उद्योग में किया जाता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर्यावरण के संरक्षण के लिए भी उपयोगी हैं। यह पर्यावरणीय जोखिमों की पहचान करने और उन्हें नियंत्रित करने के लिए उपयोगी है। वे पर्यावरणीय मुद्दों के समाधान खोजने के लिए उपयोगी हैं।

पीड़ितों को मुआवजा (सिद्धांत 22)– पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वालों के लिए दायित्व निर्धारित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय कानून के दायरे को आगे बढ़ाने के लिए राज्यों को एक साथ आना चाहिए। राज्यों को पर्यावरण प्रदूषण या क्षति के पीड़ितों को मुआवजा देने के लिए भी एक साथ आना चाहिए।

सहयोग (सिद्धांत 24 और 25)– सिद्धांत 24– राष्ट्रों के साथ सहयोग – यद्यपि प्रत्येक राज्य के पास आंतरिक मामलों पर कानून बनाने का विशेष अधिकार क्षेत्र है, लेकिन पर्यावरण के समग्र सुधार के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग आवश्यक है। राज्यों को यह पहचानना चाहिए कि पर्यावरणीय समस्याएं सभी राज्यों को समान रूप से प्रभावित

करती हैं। बहुपक्षीय और द्विपक्षीय समझौतों के माध्यम से राज्य पर्यावरणीय जोखिमों को नियंत्रित, रोक और कम कर सकते हैं।

सिद्धांत 25– राष्ट्रों के साथ समन्वय – मौजूदा परिस्थितियों को बेहतर बनाने के लिए राज्यों के बीच समन्वय बहुत जरूरी है। राज्य मौजूदा पर्यावरणीय परिस्थितियों को बेहतर बनाने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं और योजनाओं का समन्वय कर सकते हैं।

(4) भूमि प्रदूषण एवं इसके प्रभाव– भूमि प्रदूषण के पर्यावरण, जानवरों और मनुष्यों पर कई नकारात्मक प्रभाव हो सकते हैं। यहाँ कुछ प्रभाव दिए गए हैं–

दूषित पेयजल– मिट्टी में उपस्थित विषाक्त पदार्थ भूजल में पहुंच सकते हैं, जो कई समुदायों के लिए पेयजल का प्राथमिक स्रोत है।

उपजाऊ भूमि की हानि–प्रदूषित मिट्टी के कारण भोजन का उत्पादन कठिन हो सकता है, जिससे भोजन की उपलब्धता में कमी आ सकती है तथा पशुओं और मनुष्यों के जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

जलवायु परिवर्तन– भूमि प्रदूषण जलवायु परिवर्तन में योगदान दे सकता है, जिससे अनियमित वर्षा, अचानक बाढ़ और अन्य समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं।

निवास का विनाश– भूमि प्रदूषण के कारण प्रजातियां विलुप्त हो सकती हैं तथा आवास नष्ट हो सकते हैं, जिससे जानवरों को जीवित रहने के लिए अपने घरों से भागने पर मजबूर होना पड़ सकता है।

जंगली आग में वृद्धि– प्रदूषित क्षेत्र बहुत शुष्क हो सकते हैं, जिससे जंगल में आग लगने का खतरा बढ़ सकता है।

वायु प्रदूषण में वृद्धि– अपशिष्ट जलाने से वायु प्रदूषण बढ़ता है।

स्वास्थ्य समस्याएं– भूमि प्रदूषण से मनुष्यों में कई प्रकार की स्वास्थ्य समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं, जिनमें हैजा, दस्त, कैंसर, हृदय संबंधी रोग, श्वास संबंधी विकार, जन्म दोष, त्वचा संबंधी दोष और दीर्घकालिक किडनी रोग शामिल हैं।

भूमि प्रदूषण मानवीय गतिविधियों जैसे अपशिष्ट निपटान, औद्योगिक गतिविधि, खनन और कृषि के कारण होता है।

(5) रियो घोषणा– वर्ष 1992 में रियो डी जेनेरियो में एक सम्मेलन हुआ था। यह सम्मेलन 3 जून से 14 जून तक चला और सम्मेलन में कुछ सिद्धांत निर्धारित किए गए जिन पर एजेंडा 21, रियो 5, रियो 10, संस्कृति 21, रियो 20, सतत विकास शिखर सम्मेलन और एजेंडा 2030 आधारित हैं और वे सिद्धांत इस प्रकार हैं–

(1) मनुष्य को सतत विकास के बारे में चिंतित होना चाहिए और हर मनुष्य बेहतर जीवन का हकदार है।

राज्यों को अपने संसाधनों का दोहन करने का अधिकार है और यह सुनिश्चित करना राज्यों की जिम्मेदारी है कि उनके दोहन से किसी अन्य राज्य के पर्यावरण को नुकसान न पहुंचे।

(2) पर्यावरण संरक्षण को किसी भी देश की नई नीति में शामिल किया जाएगा।

(3) अल्प विकसित देशों और गरीब देशों को अपेक्षित सहायता दी जाएगी तथा जरूरत के समय उन्हें सहायता प्रदान की जाएगी।

(4) पर्यावरण की सुरक्षा और संसाधनों के सतत विकास के लिए राज्यों के बीच अंतर्राष्ट्रीय सहयोग होगा।

(5) ऐसे सतत विकास को प्राप्त करने के लिए, राज्य को उन सभी अनावश्यक प्रथाओं को हटाना होगा जो हमारे पर्यावरण को नुकसान पहुंचाती हैं।

LL.B.-6th Sem. Paper-III Land Law Including Ceiling and Other Local Law

प्रश्न न0 1– चकबन्दी से आप क्या समझते है? उन भूमियों का वर्णन कीजिए। जिनकी उ0प्र0 जोत चकबन्दी अधिनियम, 1953 के अन्तर्गत चकबन्दी नहीं की जा सकती है।

उत्तर– भूमि सुधार कृषि काश्तकारों की आर्थिक स्थिति सुधारने के उपायों का सबसे महत्वपूर्ण पैकेज है। इसका उद्देश्य कृषि भूमि के स्वामित्व को कृषक वर्ग के पक्ष में पुनर्वितरित करना, किराए का विनियमन और युक्तिकरण, खेतों के आकार में सुधार करना और पारंपरिक कृषि उपज को बढ़ाने के लिए काश्तकारों को सुरक्षा प्रदान करना है। भूमि सुधार के क्षेत्र बहुत व्यापक हैं और तब से इसके निहितार्थ में बहुत सुधार हुआ है। उनमें से कुछ हैं भूमि अधिग्रहण, अधिग्रहण, सीलिंग, जमींदारी और बिचौलियों का उन्मूलन, काश्तकारी और किरायेदारी आदि। चकबंदी भी भूमि सुधार के दायरे का एक प्रमुख पहलू है। भूमि चकबंदी खंडित भूमि खंडों और उनके स्वामित्व का एक योजनाबद्ध पुनर्समायोजन और पुनर्व्यवस्था है। इसका उपयोग आमतौर पर बड़ी और अधिक तर्कसंगत भूमि जोत बनाने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग ग्रामीण बुनियादी ढांचे को बेहतर बनाने और विकासात्मक और पर्यावरणीय नीतियों को लागू करने के लिए किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड राज्य में, उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 भूमि सुधार के इस क्षेत्र पर वैधानिक कानून है। उत्तर प्रदेश वह इन्द्रधनुषी भूमि है, जहाँ बहुरंगी भारतीय संस्कृति अनादि काल से पुष्पित–पल्लवित होती रही है। योजनाबद्ध आर्थिक विकास के प्रयासों के आरम्भ से ही, देश में शोषणकारी और दोषपूर्ण भूमि स्वामित्व प्रणाली द्वारा कृषि के परिवर्तन में उत्पन्न बाधाओं को दूर करने के उद्देश्य से भूमि सुधारों को उच्च प्राथमिकता दी गई थी। हालाँकि, देश में भूमि सुधार व्यक्तिगत स्वामित्व अधिकारों के निर्माण और भूमि के वास्तविक जोतने वाले को स्वामित्व की सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से ही संतुष्ट रहे हैं और समाजवादी तर्ज पर कृषि संबंधों में कोई बुनियादी परिवर्तन करने का प्रयास नहीं किया गया। उत्तर प्रदेश, जिसने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान बड़े पैमाने पर किसानों की राजनीतिक लामबंदी देखी थी, स्वतंत्रता के बाद शुरू किए गए भूमि सुधारों के पहले चरण के दौरान देश के अधिक प्रगतिशील राज्यों में से एक था। दूसरे चरण में, खंडित जोतों के समेकन पर ध्यान केंद्रित किया गया था।

उत्तर प्रदेश चकबंदी अधिनियम, 1953 (यूपी अधिनियम संख्या 5, 1954) को 4 मार्च, 1954 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और इसे 8 मार्च, 1954 को यूपी गजट असाधारण में प्रकाशित किया गया।

प्रस्तावना– चूंकि उत्तर प्रदेश में कृषि के विकास के लिए कृषि जोतों की चकबंदी के लिए प्रावधान करना समीचीन है, इसलिए इसे अधिनियमित किया जाता है।

इसमें 5 अध्याय और 54 धाराएँ हैं।

समेकन का अर्थ

भूमि समेकन भूखंडों का पुनर्वितरण है जिसका उद्देश्य भूमि स्वामियों को उनके पूर्व छोटे और खंडित भूमि भूखंडों के बदले में एक या अधिक स्थानों पर बड़े भूखंड प्राप्त करना है। भूमि समेकन शब्द लैटिन कॉमासाटियो (समूहीकरण) से आया है। भूमि समेकन हमेशा से ही केवल भूखंडों के सरल पुनर्व्यवस्था से कहीं अधिक रहा है ताकि विखंडन के प्रभावों को दूर किया जा सके और उच्च कृषि उत्पादकता और कम लागत की मांग की जा सके।ख्प,

खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के विचार

भूमि समेकन को कभी–कभी गलत तरीके से विखंडन के प्रभावों को दूर करने के लिए पार्सल का केवल सरल पुनर्वितरण माना जाता है। वास्तव में, भूमि समेकन पश्चिमी यूरोप में इसके शुरुआती अनुप्रयोगों के समय से ही व्यापक सामाजिक और आर्थिक सुधारों से जुड़ा हुआ है। 1750 के दशक में डेनमार्क की पहली समेकन पहल निजी स्वामित्व वाले पारिवारिक खेतों की स्थापना करके लोगों को कुलीन जमींदारों के दायित्वों से मुक्त करने के लिए एक गहन सामाजिक सुधार का हिस्सा थी। खंडित जोतों के समेकन से कृषि उत्पादकता में सुधार हुआ, लेकिन यह इन सुधारों का एकमात्र उद्देश्य नहीं था।

भूमि समेकन योजनाओं का दायरा

प्रारंभिक परियोजनाओं का एक समग्र उद्देश्य उत्पादन की शुद्ध आय को बढ़ाना और इसकी लागत को कम करना था। इस फोकस के साथ, इन परियोजनाओं ने पार्सल को समेकित करने का काम किया और सिंचाई, भूमि समतलीकरण आदि जैसे अन्य प्रावधान भी शामिल किए। कृषि के पुनर्निर्माण और संरचना पर ध्यान केन्द्रित करने से हटकर, कृषि, भूदृश्य, प्रकृति संरक्षण, मनोरंजन आदि के हितों में संतुलन स्थापित करके ग्रामीण क्षेत्र के अधिक कुशल बहुल क्षेत्रों को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। पर्यावरण की स्थिति को बढ़ती प्राथमिकता दी जा रही है। भूमि समेकन में अब गांव के नवीनीकरण की गतिविधियां शामिल हैं। परियोजनाओं में नए घरों और कार्यस्थल के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध कराना शामिल है। ग्रामीण विकास की अवधारणा में अन्य परिवर्तनों के अनुरूप, भूमि चकबंदी में अब लिंग समावेशन और वैकल्पिक विवाद समाधान के तरीकों के उपयोग पर अधिक महत्व दिया जा

रहा है। यह चराई, घास बनाना, लकड़ी काटना, मछली पकड़ना आदि जैसे पुराने अधिकारों को समाप्त करके भूमि स्वामित्व व्यवस्था को आधुनिक बनाने का भी काम करता है।
धारा 3(2) में चकबंदी को इस प्रकार परिभाषित किया गया है–
चकबंदी का अर्थ है एक इकाई में कई खातेदारों के बीच जोतों का इस प्रकार पुनःव्यवस्थापन करना कि उनकी संबंधित जोतें अधिक सघन हो जाएं;
स्पष्टीकरण – इस खंड के प्रयोजन के लिए, जोतों में निम्नलिखित शामिल नहीं होंगे–
(1) वह भूमि जो धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के वर्ष से ठीक पहले के कृषि वर्ष में कृषि योग्य थी;
(2) नदी क्रिया एवं गहन मृदा अपरदन के अधीन भूमि;
(3) उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 132 में उल्लिखित भूमि;
(4) ऐसे सघन क्षेत्र जो सामान्यतः लम्बे समय तक जल–जमाव के अधीन रहते हैं;
(5) ऊसर, कल्लर और रिहाला भूखंड जो एक सघन क्षेत्र बनाते हैं, जिसमें ऐसे क्षेत्र के भीतर खेती की भूमि भी शामिल है;
(6) पान, गुलाब, बेला, चमेली और केवड़ा उगाने के लिए उपयोग में आने वाली भूमिय तथा
(7) ऐसे अन्य क्षेत्र जिन्हें चकबंदी निदेशक चकबंदी के प्रयोजन के लिए अनुपयुक्त घोषित करे।
धारा 3 (2ए) में कहा गया है कि श्चकबंदी क्षेत्रश का तात्पर्य उस क्षेत्र से है, जिसके संबंध में धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी कर दी गई है, उसके ऐसे भागों को छोड़कर, जिन पर उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 या किसी अन्य कानून, जिसके द्वारा जमींदारी प्रथा को समाप्त किया गया है, के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।
धारा 3 (4सी) जोत को परिभाषित करती है। जोत का तात्पर्य भूमि का एक टुकड़ा या टुकड़ों से है, जो एक खातेदार द्वारा अकेले या अन्य खातेदारों के साथ संयुक्त रूप से एक काश्त के तहत धारित है, धारा 3 (5) के अनुसार भूमि का तात्पर्य कृषि, बागवानी और पशुपालन (मत्स्यपालन और मुर्गीपालन सहित) से संबंधित प्रयोजनों के लिए धारित या अधिभोग की गई भूमि से है और इसमें शामिल हैं–
(1) वह स्थल, जो किसी होल्डिंग, मकान या अन्य समान संरचना का हिस्सा हो; तथा
(2) भूमि के भूखंडों पर मौजूद पेड़, कुएं और अन्य सुधार।
धारा 3(11) के तहत, काश्तकार का तात्पर्य हस्तांतरणीय अधिकार वाले भूमिधर या गैर–हस्तांतरणीय अधिकार वाले भूमिधर से है और इसमें शामिल हैं–
(1) एक असामी,
(2)सरकारी पट्टेदार या सरकारी अनुदानकर्ता, या
(3) एक सहकारी कृषि समिति जो निर्धारित शर्तों को पूरा करती हो।
<u>प्रश्न न0 2–</u> सिद्धान्तों का विवरण किस प्रकार बनाया जाता है? सिद्धान्तों के विवरण पर की गयी आपत्तियों का निपटारा किस प्रकार किया जाता है।
<u>उत्तर–</u> प्रकाशन एवं आपत्तियाँ (धारा–20)– सहायक चकबंदी अधिकारी अनंतिम चकबंदी योजना तैयार होने पर, संबंधित खातेदारों और हितबद्ध व्यक्तियों को संबंधित उद्धरणों सहित सूचनाएं भेजेगा या भिजवाएगा। उसके बाद इसे इकाई में प्रकाशित किया जाएगा। धारा 11–ए में निहित प्रावधानों के अधीन।
आपत्तियां दर्ज करना–
(1) कोई भी व्यक्ति जिसे उपधारा 20(1) के अंतर्गत नोटिस भेजा गया है और
(2) अनंतिम समेकन योजना से प्रभावित कोई अन्य व्यक्ति,
अनंतिम समेकन योजना में या प्रस्तुत किए गए उद्धरणों में प्रविष्टियों की औचित्य या शुद्धता पर विवाद होने पर आपत्ति दर्ज की जा सकती है।
(1) प्रभावित, या
(2) किसी सार्वजनिक भूमि पर या उस पर सार्वजनिक राजमार्ग के अधिकार के अतिरिक्त कोई हित या अधिकार रखना, या
(3) अन्य हित या अधिकार रखना जो धारा 19–ए की उपधारा (2) के तहत की गई घोषणा से काफी हद तक प्रभावित होता है
(4) अनंतिम चकबंदी योजना के प्रकाशन के पंद्रह दिन के भीतर सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबंदी अधिकारी के समक्ष आपत्ति दर्ज करा सकते हैं, जिसमें ऐसे हित या अधिकार की प्रकृति बताई गई हो।
किसके समक्ष?
(1) आपत्ति सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबंदी अधिकारी के समक्ष दर्ज कराई जा सकती है।
(2) आपत्ति दर्ज कराने की समय सीमा
आपत्ति दर्ज कराने के पंद्रह दिन के भीतर की जा सकती है–
(1) नोटिस की प्राप्ति
(2) अनंतिम समेकन योजना के प्रकाशन की तिथि, जैसा भी मामला हो,
कथन पर आपत्ति का निपटारा(धारा–21)

सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा प्राप्त सभी आपत्तियाँ, निर्धारित सीमा अवधि की समाप्ति के पश्चात यथाशीघ्र, चकबंदी अधिकारी को प्रस्तुत की जाएँगी, जो संबंधित पक्षों और चकबंदी समिति को नोटिस देने के पश्चात, उनका तथा उनके द्वारा प्राप्त आपत्तियों का, इसमें आगे दी गई रीति से निपटारा करेगा।

उपधारा (1) के अधीन चकबंदी अधिकारी के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, आदेश की तारीख से 15, दिन के भीतर, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के समक्ष अपील दायर कर सकेगा, जिसका निर्णय, इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन अन्यथा उपबंधित के सिवाय, अंतिम होगा।

अनंतिम चकबंदी योजना पर आपत्तियों के निपटारे से पूर्व स्थानीय निरीक्षण–

(1) संबंधित पक्षों और चकबंदी समिति को नोटिस देने के बाद, विवादित भूखंडों का स्थानीय निरीक्षण निम्नलिखित द्वारा किया जाता है;

(2) आपत्तियों पर निर्णय लेने से पूर्व चकबंदी अधिकारी, तथा

(3) अपील पर निर्णय लेने से पूर्व निपटान अधिकारी, चकबंदी।

यदि किसी आपत्ति के निस्तारण या अपील की सुनवाई के दौरान चकबंदी अधिकारी या बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी–

(1) उनका मानना है कि भौतिक अन्याय होने की संभावना है। अनंतिम चकबंदी योजना को प्रभावी करने के लिए कई खातेदारों को। भूमि का उचित और उचित आवंटन करने में कठिनाई हो रही है और अनंतिम चकबंदी योजना को संशोधित किए बिना या एक नई योजना तैयार किए बिना इकाइयों के खातेदारों को भूमि का उचित और उचित आवंटन संभव नहीं है, इसलिए लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए यह वैध होगा–

चकबंदी अधिकारी द्वारा संबंधित खातेदारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् अनंतिम चकबंदी योजना को पुनरीक्षित करना, अथवा उसे सहायक चकबंदी अधिकारी को ऐसे निदेशों के साथ पुनः भेजना, जिन्हें चकबंदी अधिकारी आवश्यक समझेंय तथा बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी को, संबंधित खातेदारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात, अनंतिम चकबंदी योजना को पुनरीक्षित करने अथवा उसे सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबंदी अधिकारी को, जैसा बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी ठीक समझे, ऐसे निदेशों के साथ, जिन्हें वह आवश्यक समझे, प्रतिप्रेषित करने का अधिकार है।

अनंतिम समेकन योजना की पुष्टि और आवंटन आदेश जारी करना (धारा 23)– इस प्रकार पुष्टि की गई अनंतिम चकबंदी योजना इकाई में प्रकाशित की जाएगी और इस अधिनियम के तहत या इसके द्वारा अन्यथा प्रदान की गई स्थिति को छोड़कर, अंतिम होगी। जहां धारा 19–ए के तहत किए गए आवंटन धारा 21 के तहत संशोधित नहीं किए जाते हैं और उप–धारा (1) के तहत पुष्टि की जाती हैं, धारा 20 के तहत जारी नोटिस में निहित अर्क, ख्अधिनियम के तहत या इसके द्वारा प्रदान की गई स्थिति को छोड़कर, संबंधित खातेदारों के लिए अंतिम आवंटन आदेश के रूप में माना जाएगा।

<u>प्रश्न न0 3–</u> उ0प्र0 पंचायतराज अधिनियम, 1947 के अधीन ग्राम पंचायत के अधिकारों एवं शक्तियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

<u>उत्तर–</u> धारा 5(क) सदस्यता के लिए अयोग्यता– कोई व्यक्ति किसी ग्राम पंचायत का प्रधान या सदस्य चुने जाने और होने के लिए निरर्हित होगा, यदि वह–

(1) राज्य विधानमंडल के निर्वाचनों के प्रयोजनों के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस प्रकार निरर्हित कर दिया जाता है– परन्तु कोई व्यक्ति इस आधार पर अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा कि उसकी आयु पच्चीस वर्ष से कम है, यदि उसने इक्कीस वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है;

(2) ग्राम पंचायत का वेतनभोगी सेवक है ख्''', ख्यूपी अधिनियम संख्या 6, 2017 द्वारा श्या न्याय पंचायतश हटा दिया गया । ,

(3)किसी राज्य सरकार या केन्द्र सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी (ग्राम पंचायत को छोड़कर) या किसी राज्य सरकार या केन्द्र सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले किसी बोर्ड, निकाय या निगम के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है।

(4)राज्य सरकार, केन्द्र सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 6, 2017 द्वारा श्या न्याय पंचायतश शब्द को हटा दिया गया है।, की सेवा से कदाचार के कारण बर्खास्त कर दिया गया है;

(5) ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत या जिला पंचायत को उसके द्वारा देय किसी कर, फीस, दर या किसी अन्य बकाया का ऐसी अवधि तक बकाया है, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है, या ग्राम पंचायत, न्याय पंचायत, क्षेत्र पंचायत या जिला पंचायत द्वारा ऐसा करने की अपेक्षा किए जाने के बावजूद, अपने स्वामित्व का कोई अभिलेख या संपत्ति उसे सौंपने में विफल रहा है, जो उसके अधीन कोई पद धारण करने के कारण उसके कब्जे में आई थीय

(6) अनुन्मोचित दिवालिया है;

(7)नैतिक अधमता से जुड़े किसी अपराध का दोषी ठहराया गया हो;

(8) आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के तहत किए गए किसी भी आदेश के उल्लंघन के लिए तीन महीने से अधिक की अवधि के कारावास की सजा सुनाई गई है;

(9) आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम, 1946 या उत्तर प्रदेश आपूर्ति नियंत्रण (अस्थायी शक्तियां) अधिनियम, 1947 के तहत किए गए किसी भी आदेश के उल्लंघन के लिए छह महीने से अधिक अवधि के कारावास या निर्वासन की सजा सुनाई गई है;

(10) उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 के अंतर्गत तीन माह से अधिक अवधि के कारावास की सजा सुनाई गई हो;

(11) स्वापक औषधि और मनरूप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 के अंतर्गत किसी अपराध का दोषी ठहराया गया हो;

(12) किसी चुनावी अपराध का दोषी ठहराया गया हो;

(13) उत्तर प्रदेश सामाजिक निर्योग्यता निवारण अधिनियम, 1947 या सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के अंतर्गत किसी अपराध का दोषी ठहराया गया हो; या

(14) धारा 95 की उपधारा (1) के खंड (छ) के उपखंड (iii) या (iv) के अधीन पद से तब तक नहीं हटाया गया है जब तक उक्त धारा में उस निमित्त उपबंधित अवधि या राज्य सरकार द्वारा किसी विशिष्ट मामले में आदेशित लघुतर अवधि व्यतीत नहीं हो गई हो– बशर्ते कि खंड (घ), (च), (छ), (ज), (झ), (ञ), (ट), (ठ) या (ड) के अधीन निरर्हता की अवधि ऐसी तारीख से पांच वर्ष होगी, जो निर्धारित की जाए– बशर्ते कि खंड (ई) के तहत अयोग्यता बकाया राशि के भुगतान या रिकॉर्ड या संपत्ति की डिलीवरी पर समाप्त हो जाएगी, जैसा भी मामला हो–

परन्तु यह भी कि प्रथम परन्तुक में निर्दिष्ट किसी खंड के अधीन निरर्हता को राज्य सरकार द्वारा विहित रीति से हटाया जा सकेगा।

धारा 6 सदस्यता समाप्त करना– (1) किसी ग्राम पंचायत का सदस्य उस स्थिति में सदस्य नहीं रह जाएगा यदि उससे संबंधित प्रविष्टि ग्राम पंचायत के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र की निर्वाचक नामावली से हटा दी जाए ।

(2)जहां कोई व्यक्ति उपधारा (1) के अधीन किसी ग्राम पंचायत का सदस्य नहीं रह जाता है, वहां वह उस पद पर भी नहीं रह जाएगा, जिसके लिए वह उसका सदस्य होने के कारण निर्वाचित, नामनिर्देशित या नियुक्त किया गया हो।

6(क) निरर्हता संबंधी प्रश्न पर विनिश्चय–यदि कोई प्रश्न उठता है कि क्या कोई व्यक्ति धारा 5–क या धारा 6 की उपधारा (1) में वर्णित किसी निरर्हता से ग्रस्त हो गया है, तो वह प्रश्न विहित प्राधिकारी को उसके विनिश्चय के लिए निर्देशित किया जाएगा और उसका विनिश्चय, किसी अपील के परिणाम के अधीन रहते हुए, जैसा कि विहित किया जाए, अंतिम होगा।, उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 6, 1969 द्वारा प्रतिस्थापित।,

<u>प्रश्न न0 4–</u> जोत के सीमा निर्धारण की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए। ऐसे निर्धारण की अपील कहाँ और कैसी होती है? क्या अधिकतम जोत सीमा से छूट भी है?

<u>उत्तर–</u> अधिकतम सीमा और छूट के प्रयोजनों के लिए क्षेत्र का निर्धारण.– धारा 5 के अंतर्गत अधिकतम सीमा क्षेत्र या धारा 6 के अंतर्गत किसी छूट के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए –

(i) खंड (पप) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, डेढ़ हेक्टेयर असिंचित भूमि या ढाई हेक्टेयर उपवन भूमि या ढाई हेक्टेयर ऊसर भूमि को एक हेक्टेयर सिंचित भूमि के रूप में गिना जाएगा;

(ii) निम्नलिखित क्षेत्र में ख्एकल फसल भूमि का डेढ़ हेक्टेयर या किसी अन्य असिंचित भूमि का ढाई हेक्टेयर,, अर्थात् –

(क) बुंदेलखंड;

(ख) इलाहाबाद, इटावा, मथुरा और आगरा जिलों के यमुना पार के हिस्से;

(ग) इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर, इटावा, मथुरा और आगरा जिलों के यमुना पार वाले हिस्से, यमुना की गहरी धारा से 16 किलोमीटर की दूरी तक;

(घ) कैमूर पर्वतमाला के दक्षिण में मिर्जापुर जिले का भाग;

(ई) मिर्जापुर जिले की तहसील सदर के टप्पा उपरौध और टप्पा चौरासी (बलाई पहाड़);

(च) मिर्जापुर जिले में तहसील रॉबर्ट्सगंज का वह भाग जो कैमूर पर्वतमाला के उत्तर में स्थित है;

(छ) परगना सोक्तेशगढ़ तथा मिर्जापुर जिले की तहसील चुआर के परगना अहरौरा और भगत के पहाड़ी भागों में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की अनुसूची VI की सूची 'ए' और 'बी' में उल्लिखित गांव; तथा

(ज) वाराणसी जिले के पूर्व तालुका नौगढ़ या तहसील चकिया में समाविष्ट क्षेत्र;

(i) कुमायूं और गढ़वाल मंडलों के पर्वतीय और भाबर क्षेत्र तथा देहरादून जिले के जौनसार–बावर परगना को एक हेक्टेयर सिंचित भूमि के रूप में गिना जाएगा।

स्पष्टीकरण.– खंड (ii) के प्रयोजनों के लिए, श्एकल फसल भूमिश से कोई असिंचित भूमि अभिप्रेत है, जो किसी राज्य सिंचाई कार्य या निजी सिंचाई कार्य से सुनिश्चित सिंचाई के परिणामस्वरूप कृषि वर्ष में केवल एक फसल उत्पन्न करने में सक्षम हो।,

४ए. सिंचित भूमि का निर्धारण.– विहित प्राधिकारी वर्ष १३७८ फसली , १९७९ फसली और १३८० फसली के सुसंगत खसरों , नवीनतम ग्राम मानचित्र और ऐसे अन्य अभिलेखों की जांच करेगा, जिन्हें वह आवश्यक समझे, और जहां वह आवश्यक समझे, वहां स्थानीय निरीक्षण भी कर सकता है और तत्पश्चात् यदि विहित प्राधिकारी की राय हो कि:–

प्रथमतः , (क) कि, पूर्वोक्त वर्षों में से किसी एक वर्ष में किसी भी फसल के संबंध में किसी भूमि के लिए सिंचाई सुविधा उपलब्ध थी;

(i) अधिसूचना संख्या 1579–MCyw/XXIII 62–MCy–1946, दिनांक 31 मार्च, 1953, जिसे समय–समय पर संशोधित किया गया, में अधिसूचित सिंचाई दरों की अनुसूची संख्या 1 में सम्मिलित कोई नहर; या

(ii) कोई लिफ्ट सिंचाई नहर; या

(iii) कोई राजकीय नलकूप या निजी सिंचाई कार्य; और

(ख) उक्त वर्षों में से किसी एक वर्ष में ऐसी भूमि पर कम से कम दो फसलें उगाई गई हों; या

दूसरे , उत्तर प्रदेश भूमि जोत सीमा अधिरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1972 के लागू होने के पश्चात् चालू हुए किसी राज्य सिंचाई कार्य द्वारा किसी भूमि को सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो गई हो, और ऐसे कार्य के चालू होने की तारीख और धारा 10 के अधीन नोटिस जारी करने की तारीख के बीच किसी कृषि वर्ष में ऐसी भूमि पर कम से कम दो फसलें उगाई गई हों; या

तीसरा , (क) कोई भूमि लिफ्ट सिंचाई नहर या राजकीय नलकूप या निजी सिंचाई कार्य के प्रभावी कमांड क्षेत्र में स्थित है; और

(ख) उसकी मिट्टी का वर्ग और संरचना ऐसी है कि वह एक कृषि वर्ष में कम से कम दो फसलें उगाने में सक्षम है; तो विहित प्राधिकारी ऐसी भूमि को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए सिंचित भूमि के रूप में अवधारित करेगा।

स्पष्टीकरण 1. – इस धारा के प्रयोजनों के लिए श्प्रभावी कमान क्षेत्रश से ऐसा क्षेत्र अभिप्रेत है, जिसका किसी भी दिशा में सबसे दूर का खेत सिंचित था –

(क) 1378 फसली , 1379 फसली तथा 1380 फसली वर्षों में से किसी में ; या

(ख) खंड 'द्वितीयक' में निर्दिष्ट किसी कृषि वर्ष में।

स्पष्टीकरण 2.– निजी सिंचाई कार्य का स्वामित्व और स्थान इस धारा के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं होगा।

स्पष्टीकरण 3.– जहां किसी भूमि पर 1378 फसली , 1379 फसली और 1380 फसली वर्षों में से किसी में गन्ने की फसल उगाई गई हो , वहां यह समझा जाएगा कि इनमें से किसी वर्ष में उस भूमि पर दो फसलें उगाई गई थीं और वह भूमि एक कृषि वर्ष में दो फसलें उगाने में सक्षम है।

भूमि जोत की अधिकतम सीमा लागू करना, छूट और अधिशेष भूमि का अधिग्रहण

अधिकतम सीमा का अधिरोपण– (1) ख्उत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा अधिरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1972 के प्रारम्भ से ही, कोई भी खातेदार सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में उसको लागू अधिकतम सीमा से अधिक भूमि धारण करने का हकदार नहीं होगा।

स्पष्टीकरण 1.– किसी खातेदार को लागू अधिकतम सीमा क्षेत्र का निर्धारण करते समय, उसके द्वारा अपने अधिकार में धारित समस्त भूमि, चाहे वह उसके अपने नाम पर हो या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर हो, को ध्यान में रखा जाएगा।,

स्पष्टीकरण 2.– यदि 24 जनवरी, 1971 को या उसके पूर्व कोई भूमि किसी ऐसे व्यक्ति के पास थी, जो उस पर वास्तविक कृषिगत कब्जा जारी रखे हुए है और उक्त तारीख के पश्चात वार्षिक रजिस्टर में किसी अन्य व्यक्ति का नाम दर्ज किया जाता है, चाहे वह पूर्व के अतिरिक्त हो या उसके अपवर्जन के आधार पर और चाहे वह अंतरण विलेख या लाइसेंस के आधार पर हो या किसी डिक्री के आधार पर हो, तो यह उपधारणा की जाएगी, जब तक कि विहित प्राधिकारी के समाधानप्रद रूप में विपरीत साबित न कर दिया जाए, कि प्रथम वर्णित व्यक्ति भूमि पर कब्जा जारी रखे हुए है और यह उसके द्वारा प्रत्यक्षतः द्वितीय वर्णित व्यक्ति के नाम पर धारण की गई है।

(2) उपधारा (1) की कोई बात निम्नलिखित वर्ग के व्यक्तियों द्वारा धारित भूमि पर लागू नहीं होगी, अर्थात् –

(क) केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार या कोई स्थानीय प्राधिकरण या कोई सरकारी कंपनी या निगम;

(ख) कोई विश्वविद्यालय;

(ग) ख्कृषि में शिक्षा प्रदान करने वाला इंटरमीडिएट या डिग्री कॉलेज या स्नातकोत्तर कॉलेज;,

(घ) कोई बैंकिंग कंपनी या सहकारी बैंक या सहकारी भूमि विकास बैंक;

(ड़) उत्तर प्रदेश भूदान यज्ञ अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत गठित भूदान यज्ञ समिति।

(3) उपधारा (4), (5), (6) और (7) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए अधिकतम सीमा क्षेत्र निम्नलिखित होगा –

(क) ऐसे खातेदार के मामले में जिसके परिवार में पांच से अधिक सदस्य नहीं हैं, 7.30 हेक्टेयर सिंचित भूमि (जिसमें उसके परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा धारित भूमि भी शामिल है) तथा दो अतिरिक्त हेक्टेयर सिंचित भूमि या ऐसी अतिरिक्त भूमि जो उसके द्वारा धारित भूमि के साथ मिलकर दो हेक्टेयर हो जाती है, उसके प्रत्येक वयस्क पुत्र के लिए, जो या तो स्वयं खातेदार नहीं हैं या जो दो हेक्टेयर से कम सिंचित भूमि रखते हैं, ऐसी अतिरिक्त भूमि की अधिकतम सीमा छह हेक्टेयर के अधीन रहते हुए होगी;

(ख) ऐसे खातेदार के मामले में जिसके परिवार में पांच से अधिक सदस्य हैं, 7.30 हेक्टेयर सिंचित भूमि (जिसके अंतर्गत उसके परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा धारित भूमि भी है), इसके अतिरिक्त पांच से अधिक सदस्यों में से प्रत्येक के लिए तथा उसके प्रत्येक वयस्क पुत्र के लिए, जो स्वयं खातेदार नहीं है या जो दो हेक्टेयर से कम

सिंचित भूमि रखता है, दो अतिरिक्त हेक्टेयर सिंचित भूमि या ऐसी अतिरिक्त भूमि जो ऐसे वयस्क पुत्र द्वारा धारित भूमि के साथ मिलकर दो हेक्टेयर हो जाती है, ऐसी अतिरिक्त भूमि की अधिकतम सीमा छह हेक्टेयर होगी;

स्पष्टीकरण.– खंड (क) और (ख) में श्वयस्क पुत्रश पद के अंतर्गत ऐसा वयस्क पुत्र भी शामिल है, जो मर चुका है और अपने पीछे अवयस्क पुत्र या अवयस्क पुत्रियां (विवाहित पुत्रियों को छोड़कर) छोड़ गया है, जो स्वयं खातेदार नहीं हैं या जिनके पास दो हेक्टेयर से कम सिंचित भूमि है;

(ग) किसी अन्य खातेदार के मामले में, 7.30 हेक्टेयर सिंचित भूमि;

स्पष्टीकरण.– भूमि का कोई भी हस्तांतरण या विभाजन जो उपधारा (6) और (7) के अधीन नजरअंदाज किए जाने योग्य है, उसे भी नजरअंदाज किया जाएगा –

(घ़) यह निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए कि क्या किसी भू–स्वामी का वयस्क पुत्र स्वयं ख्खंड (क) या खंड (ड़), के अर्थ में भू–स्वामी है;

(छ) धारा 9 के अधीन नोटिस की तामील के प्रयोजनार्थ।

(4) जहां कोई होल्डिंग किसी फर्म या सहकारी समिति या व्यक्तियों के संघ (चाहे निगमित हो या नहीं, किन्तु इसके अंतर्गत कोई सार्वजनिक कंपनी नहीं है) द्वारा धारण की जाती है, वहां उसके सदस्यों (चाहे उन्हें भागीदार, शेयरधारक या किसी अन्य नाम से पुकारा जाता हो) के बारे में यह समझा जाएगा कि वे इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उस फर्म, सहकारी समिति या अन्य समिति या व्यक्तियों के संघ में अपने–अपने शेयरों के अनुपात में वह होल्डिंग धारण करते हैं।

परन्तु जहां कोई व्यक्ति फर्म, सहकारी समिति या अन्य समिति या व्यक्तियों के संगम में प्रवेश के ठीक पूर्व कोई भूमि या अपने पूर्वोक्त अंश के आनुपातिक क्षेत्रफल से कम भूमि का क्षेत्रफल नहीं रखता था, वहां यह समझा जाएगा कि वह उस धारिता में कोई अंश नहीं रखता है या, यथास्थिति, केवल कम क्षेत्रफल रखता है और, यथास्थिति, धारिता का सम्पूर्ण या शेष क्षेत्रफल, शेष सदस्यों द्वारा फर्म, सहकारी समिति या अन्य समिति या व्यक्तियों के संगम में उनके अपने–अपने अंशों के अनुपात में धारण किया हुआ समझा जाएगा।,

(5) किसी निजी ट्रस्ट द्वारा धारित किसी होल्डिंग के संबंध में, –

(क) जहां ऐसे ट्रस्ट से आय में उसके लाभार्थियों के शेयर ज्ञात या निर्धारण योग्य हैं, वहां इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, लाभार्थियों के बारे में यह समझा जाएगा कि उस होल्डिंग में उनके शेयर उसी अनुपात में हैं, जैसे ऐसे ट्रस्ट से आय में उनके संबंधित शेयर हैं,

(ख) किसी अन्य मामले में, यह उपधारा (3) के खंड (ई) द्वारा शासित होगा।

(6) किसी खातेदार पर लागू अधिकतम क्षेत्रफल का निर्धारण करते समय, चौबीस जनवरी, 1971 के पश्चात किए गए भूमि के किसी हस्तांतरण को, जो हस्तांतरण के अभाव में इस अधिनियम के अधीन अधिशेष भूमि घोषित कर दी गई होती, नजरअंदाज कर दिया जाएगा और उस पर विचार नहीं किया जाएगाय

बशर्ते कि इस उपधारा की कोई बात निम्नलिखित पर लागू नहीं होगी–

(क) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति (सरकार सहित) के पक्ष में स्थानांतरणय

(ख) ऐसा अंतरण जो विहित प्राधिकारी के समाधानप्रद रूप में सद्भावनापूर्वक तथा पर्याप्त प्रतिफल के लिए तथा अपरिवर्तनीय लिखत के अधीन सिद्ध हो, जो बेनामी लेन–देन न हो, या भू–धारक या उसके परिवार के अन्य सदस्यों के तत्काल या आस्थगित लाभ के लिए हो।

स्पष्टीकरण 1.– इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, चौबीस जनवरी, 1971 के पश्चात किए गए भूमि अंतरण के अंतर्गत निम्नलिखित सम्मिलित हैं –,

(क) किसी व्यक्ति द्वारा किसी वाद या कार्यवाही में सह–खातेदार के रूप में चौबीस जनवरी, 1971 के पश्चात की गई घोषणा, चाहे ऐसा वाद या कार्यवाही चौबीस जनवरी, 1971 को लंबित थी या उसके पश्चात संस्थित की गई थी,;

(ख) किसी व्यक्ति के पक्ष में किसी अन्य विलेख या लिखत में या किसी अन्य तरीके से की गई समान प्रभाव की कोई स्वीकृति, स्वीकृति, त्याग या घोषणा।

स्पष्टीकरण 2.– यह साबित करने का भार कि कोई मामला परंतुक के खंड (ख) के अंतर्गत आता है, उस पक्षकार पर होगा जो इसका लाभ मांग रहा है।

(7) भू–स्वामित्व धारक पर लागू अधिकतम क्षेत्रफल का निर्धारण करते समय, चौबीस जनवरी, 1971 के पश्चात् किया गया भूमि का कोई विभाजन, जो विभाजन के अभाव में इस अधिनियम के अधीन अधिशेष भूमि घोषित कर दिया गया होता, को नजरअंदाज कर दिया जाएगा और उस पर विचार नहीं किया जाएगाय

बशर्ते कि इस उपधारा की कोई बात निम्नलिखित पर लागू नहीं होगी–

उक्त तारीख को लंबित किसी वाद या कार्यवाही में किया गया विभाजन –

परन्तु यह और कि पूर्ववर्ती परन्तुक में किसी बात के होते हुए भी, यदि विहित प्राधिकारी की यह राय है कि भू–स्वामित्व धारक और विभाजन के किसी अन्य पक्षकार के बीच मिलीभगत से ऐसे अन्य पक्षकार को ऐसा हिस्सा दे दिया गया है जिसका वह हकदार नहीं था, या उससे बड़ा हिस्सा दे दिया गया है जिसका वह हकदार था, तो वह ऐसे विभाजन की उपेक्षा कर सकेगा।

स्पष्टीकरण 1.– यदि उक्त तारीख के पश्चात् यह घोषणा करने के लिए वाद संस्थित किया जाता है कि भूमि का विभाजन उक्त तारीख को या उसके पूर्व हो चुका है, तो ऐसी घोषणा को नजरअंदाज कर दिया जाएगा और उस पर विचार नहीं किया जाएगा, तथा यह समझा जाएगा कि उक्त तारीख को या उसके पूर्व कोई विभाजन नहीं हुआ है।,

स्पष्टीकरण 2.– यह साबित करने का भार कि कोई मामला प्रथम परन्तुक के अंतर्गत आता है, उस पक्षकार पर होगा जो इसका लाभ मांग रहा है।

(8) उपधारा (6) और (7) में किसी बात के होते हुए भी, कोई भी खातेदार अपने द्वारा धारित किसी भूमि को ऐसे खातेदार के संबंध में अधिशेष भूमि के अवधारण के लिए कार्यवाही जारी रहने के दौरान अंतरित नहीं करेगा और इस उपधारा के उल्लंघन में किया गया प्रत्येक अंतरण शून्य होगा।

स्पष्टीकरण.– इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, अधिशेष भूमि के अवधारण के लिए कार्यवाही धारा 9 की उपधारा (2) के अधीन सूचना के प्रकाशन की तारीख को प्रारंभ हुई समझी जाएगी और उस तारीख को समाप्त हुई समझी जाएगी, जब ऐसे खातेदार के संबंध में धारा 11 की उपधारा (1) या धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन, या यथास्थिति, धारा 13 के अधीन आदेश पारित किया जाता है।,

6. अधिकतम सीमा के अधिरोपण से कुछ भूमि को छूट.–, (1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, नीचे वर्णित किसी भी श्रेणी में आने वाली भूमि को, किसी भू–स्वामी पर लागू अधिकतम सीमा क्षेत्र और उसकी अधिशेष भूमि के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए विचार में नहीं लिया जाएगा, अर्थात् –,

(क) औद्योगिक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त भूमि (अर्थात् माल के विनिर्माण, परिरक्षण, भंडारण या प्रसंस्करण के प्रयोजनों के लिए) और जिसके संबंध में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के अधीन घोषणा विद्यमान है;

(ख) आवासीय मकान द्वारा अधिगृहित भूमि;

(ग) श्मशान भूमि या कब्रिस्तान के रूप में उपयोग की जाने वाली भूमि, परंतु कृषि योग्य भूमि को छोड़कर;

(घ) चाय, कॉफी या रबर के बागानों के लिए प्रयुक्त भूमि, और निर्धारित सीमा तक, उससे संबंधित प्रयोजनों के लिए तथा ऐसे बागानों के विकास के लिए अपेक्षित भूमि;

(ड़) स्टड फार्म के प्रयोजनों के लिए 24 जनवरी, 1971 से पहले से धारित भूमि, निर्धारित सीमा तक;

(च) किसी सार्वजनिक धार्मिक या धर्मार्थ वक्फ , ट्रस्ट, बंदोबस्ती या संस्था द्वारा या उसके अधीन पहली मई, 1959 से पूर्व धारित भूमि, जिसकी आय का उपयोग पूर्णतः धार्मिक या धर्मार्थ प्रयोजनों के लिए किया जाता है, और वह वक्फ , ट्रस्ट या बंदोबस्ती न हो जिसके लाभार्थी पूर्णतः या आंशिक रूप से बसने वाले या उसके परिवार के सदस्य या उसके वंशज हों;

(छ) उत्तर प्रदेश गोशाला अधिनियम, 1964 के अधीन पंजीकृत सार्वजनिक प्रकृति की गोशाला द्वारा 8 जून, 1973 के पूर्व से धारित भूमि, विहित सीमा तक,

स्पष्टीकरण.– उपधारा (1) के खण्ड (आई) की कोई बात उस उपधारा के खण्ड (जी) में निर्दिष्ट गोशाला के संबंध में लागू नहीं होगी,

(2) कोई भी व्यक्ति उपधारा (1) के खंड (घ) या खंड (ग), (च) या खंड (छ) में निर्दिष्ट किसी भूमि को राज्य सरकार की पूर्व अनुज्ञा के बिना अंतरित नहीं करेगा और ऐसी अनुज्ञा के बिना किया गया प्रत्येक अंतरण, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, शून्य होगा–

परन्तु इस उपधारा की कोई बात धारा 5 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति के पक्ष में किए गए किसी अंतरण को लागू नहीं होगी।

(3) कोई भूमि, जो किसी ऐसे अंतरण का विषय है जो उपधारा (2) के आधार पर शून्य है, अधिशेष भूमि समझी जाएगी और 10 अक्टूबर, 1975 या ऐसे प्रकल्पित अंतरण की तारीख से, जो भी बाद में हो, सभी भारग्रस्तताओं से मुक्त होकर राज्य सरकार को अंतरित और उसमें निहित हो जाएगी और ऐसी भूमि में सभी व्यक्तियों के सभी अधिकार, हक और हित समाप्त हो जाएंगे।

बशर्ते कि यदि कोई भार हो तो उसे अधिशेष भूमि के स्थान पर धारा 17 के अधीन देय राशि में जोड़ दिया जाएगा।

(4) जहां कोई भूमि उपधारा (3) के अधीन अधिशेष भूमि समझी जाती है, –

(i) धारा 14 के उपबंध ऐसी भूमि के संबंध में यथावश्यक परिवर्तनों सहित लागू होंगे, जिसमें उस धारा की उपधारा (1) में उल्लिखित तारीखों के प्रति निर्देशों के स्थान पर इस धारा की उपधारा (1) में उल्लिखित तारीखों के प्रति निर्देश प्रतिस्थापित किए जाएंगे, और

(ii) धारा 17 के अधीन उसके लिए देय रकम उस व्यक्ति को दी जाएगी जिसके पक्ष में ऐसा अंतरण किया जाना प्रकल्पित था।

<u>प्रश्न न0 5–</u> उ0प्र0 शहरी भवन (किराये पर देने, किराये तथा बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 के अधीन भवन को परिभाषित कीजिए। उन परिस्थितियों को बताइए। जिनमें किसी भवन के मालिक या किरायेदार का भवन से अध्यासन समाप्त समझा जायेगा।

<u>उत्तर–</u> संक्षिप्त नाम, विस्तार, लागू होना और प्रारम्भ– (1) यह अधिनियम उत्तर प्रदेश नगरीय भवन (किराये पर देने, किराया और बेदखली विनियमन) अधिनियम, 1972 कहा जायेगा।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश तक है।
(3) यह निम्नलिखित पर लागू होगा–
(क) उत्तर प्रदेश नगर महापालिका अधिनियम, 1959 में परिभाषित प्रत्येक शहर;
(ख) संयुक्त प्रांत नगर पालिका अधिनियम, 1916 में परिभाषित प्रत्येक नगर पालिका;
(ग) संयुक्त प्रांत नगर पालिका अधिनियम, 1916 के अधीन गठित प्रत्येक अधिसूचित क्षेत्र; तथा
(घ) संयुक्त प्रांत नगर क्षेत्र अधिनियम, 1914 के अधीन गठित प्रत्येक नगर क्षेत्र–
परन्तु यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाए कि किसी अन्य स्थानीय क्षेत्र में निवास करने वाली आम जनता के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकेगी कि यह अधिनियम या इसका कोई भाग ऐसे क्षेत्र पर लागू होगा और तब यह अधिनियम या इसका कोई भाग ऐसे क्षेत्र पर लागू होगा–
परन्तु यह और कि यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाए कि जनसाधारण के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा–
(i) पूर्ववर्ती परंतुक के अंतर्गत जारी किसी अधिसूचना को रद्द या संशोधित कर सकेगा; या
(ii) घोषित करें कि अधिनियम या उसका कोई भाग, जैसा भी मामला हो, किसी ऐसे शहर, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र, नगर क्षेत्र या अन्य पर लागू नहीं होगा
(4) यह उस तारीख को लागू होगा जिसे राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे।
अधिनियम के प्रवर्तन से छूट.– (1) इस अधिनियम की कोई बात निम्नलिखित पर लागू नहीं होगी–
(क) भारत सरकार या किसी राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकरण का कोई भवन या उसमें निहित कोई भवन; या
(ख) राज्य सरकार या भारत सरकार द्वारा पट्टे पर लिए गए या अधिगृहीत किसी भवन के संबंध में उससे अनुदान द्वारा सृजित कोई किरायेदारी, या
(ग) कारखाना अधिनियम, 1948 के अर्थ में कारखाना के रूप में प्रयुक्त या प्रयुक्त किये जाने के लिए आशयित कोई भवन; या
(घ) कोई भवन जो किसी अन्य औद्योगिक प्रयोजन के लिए (अर्थात किसी माल के विनिर्माण, परिरक्षण या प्रसंस्करण के प्रयोजन के लिए) या सिनेमा या थियेटर के रूप में प्रयुक्त हो या प्रयुक्त होने के लिए आशयित हो, जहां भवन में ऐसे प्रयोजन के लिए स्थापित संयंत्र और उपकरण भवन के साथ पट्टे पर दिया गया हो–
परंतु इस खंड की कोई बात सिनेमा या थियेटर के परिसर में स्थित किसी दुकान या अन्य भवन के संबंध में लागू नहीं होगी, जिसके संबंध में किरायेदारी सिनेमा या थियेटर के संबंध में किरायेदारी से अलग से सृजित की गई है;या
(ड़) कोई भवन जो सार्वजनिक मनोरंजन या आमोद–प्रमोद के स्थान के रूप में उपयोग किया जाता है या उपयोग किए जाने का इरादा है (जिसमें कोई खेल स्टेडियम शामिल है, लेकिन सिनेमा या थिएटर शामिल नहीं है), या उससे अनुलग्न कोई भवन; या
(च) कोई भवन जो विश्वविद्यालय या किसी अन्य वैधानिक निगम या सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत पंजीकृत सोसायटी या सहकारी सोसायटी, कंपनी या फर्म द्वारा निर्मित और धारित है, और जो केवल उसके स्वयं के अधिभोग के लिए या उसके किसी अधिकारी या कर्मचारी के अधिभोग के लिए, चाहे किराये पर हो या निःशुल्क हो, या अतिथि गृह के रूप में, चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हो, सामान्य कारोबार के क्रम में उससे संबंध रखने वाले व्यक्तियों के अधिभोग के लिए अभिप्रेत है।
(2) धारा 24 की उपधारा (2) या धारा 29 की उपधारा (3) में यथा उपबंधित के सिवाय, इस अधिनियम की कोई बात किसी भवन पर उसके निर्माण पूरा होने की तारीख से दस वर्ष की अवधि के दौरान लागू नहीं होगी।
स्पष्टीकरण– इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए,–
(क) किसी भवन का निर्माण उस तारीख को पूरा हुआ माना जाएगा जिस तारीख को उसके पूरा होने की रिपोर्ट अधिकारिता रखने वाले स्थानीय प्राधिकारी को दी जाती है या उसके द्वारा अन्यथा अभिलिखित की जाती है, और कर निर्धारण के अधीन भवन की दशा में वह तारीख जिस तारीख को उसका प्रथम कर निर्धारण प्रभाव में आता है, और जहां उक्त तारीखें भिन्न हैं वहां उक्त तारीखों में से सबसे पहले वाली तारीख, और ऐसी किसी रिपोर्ट, अभिलेख या कर निर्धारण के अभाव में वह तारीख जिस तारीख को उसमें पहली बार वास्तव में अधिभोग किया जाता है (केवल निर्माण के पर्यवेक्षण या निर्माणाधीन भवन की रखवाली के प्रयोजनों के लिए अधिभोग सम्मिलित नहीं है)–
बशर्ते कि किसी भवन के विभिन्न भागों के संबंध में निर्माण पूरा होने की अलग–अलग तारीखें हो सकती हैं, जो या तो अलग–अलग इकाइयों के रूप में डिजाइन किए गए हैं या मकान मालिक और एक या अधिक किरायेदारों द्वारा या विभिन्न किरायेदारों द्वारा अलग–अलग अधिभोग में हैं;
(ख) 'निर्माण' में किसी विद्यमान भवन के स्थान पर किया गया कोई नया निर्माण शामिल है, जिसे पूर्णतः या अधिकांशतः ध्वस्त कर दिया गया है;

(ग) जहां किसी विद्यमान भवन में इतना अधिक विस्तार किया जाता है कि विद्यमान भवन उसका केवल एक छोटा सा भाग रह जाता है, वहां विद्यमान भवन सहित सम्पूर्ण भवन, उक्त विस्तार के पूरा होने की तारीख को निर्मित हुआ माना जाएगा।

(3) यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि जनसाधारण के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किसी ऐसे भवन को, जो किसी शैक्षिक या पूर्त संस्था के स्वामित्व में है और जिससे प्राप्त समस्त आय उस संस्था के प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाती है, इस अधिनियम के सभी या किसी उपबंध से छूट दे सकेगी और उसी प्रकार ऐसी अधिसूचना को रद्द या संशोधित कर सकेगी।

परिभाषा.– इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो–

(क) किसी भवन के संबंध में षकिराएदारष से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जिसके द्वारा उसका किराया देय है, और किरायेदार की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी;

(ख) 'गृह कर' का तात्पर्य संयुक्त राज्य नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 128 (1) (i) या उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1959 की धारा 173 (1) या, जैसा भी मामला हो, संयुक्त प्रांत नगर क्षेत्र अधिनियम, 1914 की धारा 14 (प) (म) में उल्लिखित कर से है;

(ग) 'जिला मजिस्ट्रेट' में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस अधिनियम के अधीन उसकी सभी या किन्हीं शक्तियों, कृत्यों और कर्तव्यों का प्रयोग, पालन और निर्वहन करने के लिए प्राधिकृत कोई अधिकारी सम्मिलित है और विभिन्न क्षेत्रों या मामलों या मामलों के वर्गों के संबंध में विभिन्न अधिकारियों को इस प्रकार प्राधिकृत किया जा सकेगा और जिला मजिस्ट्रेट किसी मामले को ऐसे किसी अधिकारी से वापस ले सकेगा और या तो उसका स्वयं निपटारा कर सकेगा या उसे निपटारे के लिए किसी अन्य ऐसे अधिकारी को अंतरित कर सकेगा–

परंतु इस खंड की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह जिला मजिस्ट्रेट को खंड (ङ) के अधीन विहित प्राधिकारी के कृत्यों का पालन करने के लिए किसी अधिकारी को प्राधिकृत करने की अपनी शक्ति अथवा धारा 33 के अधीन शिकायत करने या शिकायत किए जाने को प्राधिकृत करने की शक्ति प्रत्यायोजित करने के लिए सशक्त बनाती है;

(घ) खंड (ई) के सिवाय, षविहितष से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है;

(ङ) 'विहित प्राधिकारी' का अर्थ प्रथम वर्ग का ऐसा मजिस्ट्रेट है, जिसके पास इस रूप में कम से कम तीन वर्ष का अनुभव है, जिसे इस अधिनियम के अधीन विहित प्राधिकारी की सभी या किन्हीं शक्तियों, कृत्यों और कर्तव्यों का प्रयोग, पालन और निर्वहन करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्राधिकृत किया गया है और विभिन्न मजिस्ट्रेटों को विभिन्न क्षेत्रों या मामलों या मामलों के वर्गों के संबंध में इस प्रकार प्राधिकृत किया जा सकता है और जिला मजिस्ट्रेट किसी भी ऐसे मजिस्ट्रेट से कोई मामला वापस ले सकता है और या तो उसे स्वयं निपटा सकता है या किसी अन्य ऐसे मजिस्ट्रेट को निपटान के लिए अंतरित कर सकता है;

(च) किसी भवन के संबंध में 'मूल्यांकन' से , क्षेत्राधिकार रखने वाले स्थानीय प्राधिकारी द्वारा उसके किराये के मूल्य का, यथास्थिति, मूल्यांकन या आनुपातिक मूल्यांकन अभिप्रेत है, और 'मूल्यांकित' का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा;

(छ) किसी भवन के मकान मालिक या किरायेदार के संबंध में 'परिवार' से तात्पर्य उसके निम्नलिखित से है–

(i) पति/पत्नी,

(ii) पुरुष वंशज,

(iii) ऐसे माता–पिता, दादा–दादी और कोई अविवाहित या विधवा या तलाकशुदा या न्यायिक रूप से अलग हुई पुत्री या किसी वास्तविक वंशज की पुत्री, जो सामान्य रूप से उसके साथ रहती रही हो, और इसमें मकान मालिक के संबंध में, उस भवन में निवास का कानूनी अधिकार रखने वाली कोई भी महिला शामिल है;

(ज) 'पुराना अधिनियम' से संयुक्त प्रांत (अस्थायी) किराया एवं बेदखली नियंत्रण अधिनियम, 1947 अभिप्रेत है;

(i) 'भवन' से आवासीय या गैर–आवासीय छतयुक्त संरचना अभिप्रेत है और इसमें निम्नलिखित शामिल हैं–

(i) ऐसी इमारत से अनुलग्न कोई भूमि (जिसके अंतर्गत कोई उद्यान भी है), गैरेज और उपगृह;

(ii) ऐसे भवन में उपयोग के लिए मकान मालिक द्वारा आपूर्ति किया गया कोई फर्नीचर;

(iii) ऐसी इमारत में उसके अधिक लाभकारी उपयोग के लिए लगाई गई कोई फिटिंग और फिक्सचर;

(जे) किसी भवन के संबंध में 'मकान मालिक' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे उसका किराया देय है या यदि भवन किराये पर दिया जाता तो देय होता और इसमें, खंड (जी) को छोड़कर, ऐसे व्यक्ति का एजेंट या अटॉर्नी शामिल है;

(ट) धारा 6, 8 और 10 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, 'मानक किराया' से तात्पर्य है–

(i) पुराने अधिनियम द्वारा शासित और इस अधिनियम के प्रारंभ के समय किराये पर दिए गए भवन के मामले में–

(क) जहां ऐसे प्रारंभ पर उसके लिए सहमत किराया देय है और साथ ही उचित वार्षिक किराया भी है खजिसका इस अधिनियम में वही अर्थ है जो पुराने अधिनियम की धारा 2(च) में है, जिसे अनुसूची में पुनरू प्रस्तुत किया गया है,, वहां सहमत किराया या उचित वार्षिक किराया और उस पर 25 प्रतिशत, जो भी अधिक हो;

(ख) जहां कोई सहमत किराया नहीं है, लेकिन एक उचित वार्षिक किराया है, उचित किराया. उस पर 25 प्रतिशत;

(ग) जहां न तो सहमति वाला किराया है और न ही उचित वार्षिक किराया है, वहां धारा 9 के तहत निर्धारित किराया;

(ii) किसी अन्य मामले में, तत्समय प्रवृत्त निर्धारित किराया मूल्य, तथा निर्धारण के अभाव में, धारा 9 के अधीन निर्धारित किराया;

(घ) 'राज्य सरकार' का तात्पर्य उत्तर प्रदेश सरकार से है;

(ड़) 'स्थानीय प्राधिकरण' से नगर महापालिका, नगरपालिका बोर्ड, अधिसूचित क्षेत्र समिति या नगर क्षेत्र समिति अभिप्रेत है;

(च) किसी भवन के संबंध में 'सुधार' का अर्थ उसमें कोई परिवर्धन या परिवर्तन या किरायेदार के लिए किसी नई सुविधा का प्रावधान है, और इसमें किसी वर्ष में की गई सभी मरम्मत शामिल हैं, जिनकी लागत उसके एक महीने के किराए की राशि से अधिक है या धारा 28 की उपधारा (2) के परंतुक में उल्लिखित मामले में, उसके दो महीने के किराए से अधिक है।

किराये का विनियमन

प्रीमियम और सामान्यतः देय किराए का प्रतिषेध.– (1) कोई भी मकान मालिक किसी भवन में किरायेदार को प्रवेश देने के लिए उसके लिए देय किराए के अतिरिक्त कोई प्रीमियम या अतिरिक्त भुगतान नहीं लेगा या प्राप्त नहीं करेगा, न ही कोई किरायेदार किसी उप–किरायेदार या किसी अन्य व्यक्ति को प्रवेश देने के लिए कोई प्रीमियम लेगा या प्राप्त करेगा।

(2) धारा 5, 6, 7, 8 और 10 में दिए गए प्रावधानों के सिवाय, किसी भी भवन के लिए देय किराया ऐसा होगा जैसा मकान मालिक और किरायेदार के बीच सहमति से तय होगा और किसी समझौते के अभाव में मानक किराया होगा।

पुराने भवनों की दशा में देय किराया.– किसी ऐसे भवन के संबंध में, जिस पर पुराना अधिनियम लागू था, इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व से जारी किरायेदारी की दशा में, मकान मालिक, इस अधिनियम के प्रारंभ से तीन मास के भीतर लिखित सूचना देकर, उसके लिए देय किराए को मानक किराए से अधिक नहीं बढ़ा सकेगा और इस प्रकार बढ़ाया गया किराया इस अधिनियम के प्रारंभ से देय होगा।

सुधारों का किराये पर प्रभाव.– धारा 4 या धारा 5 में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु धारा 8 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जहां मकान मालिक ने इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात या तो किरायेदार की सहमति से या किसी विधि की अपेक्षा के अनुसरण में किसी भवन में कोई सुधार किया है, वहां वह सुधार के पूरा होने की तारीख से तीन मास के भीतर किरायेदार को लिखित सूचना देकर, भवन के मासिक किराये में उक्त तारीख से ऐसे सुधार की वास्तविक लागत के एक प्रतिशत से अनधिक राशि की वृद्धि कर सकेगा और तदुपरांत उस भवन का मानक किराया तदनुसार बढ़ा दिया जाएगा।

करों का भुगतान करने का दायित्व.– इसके विपरीत लिखित में किसी संविदा के अधीन रहते हुए, किन्तु उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1959 की धारा 179 या धारा 149 या संयुक्त प्रांत नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 338 के अधीन बनाए गए किसी नियम या जारी की गई अधिसूचना या संयुक्त प्रांत नगर क्षेत्र अधिनियम, 1914 की धारा 14 (1) (ई) में किसी बात के होते हुए भी, किरायेदार, किराए के अतिरिक्त और उसके भाग के रूप में, भवन या उसकी किरायेदारी के अधीन भाग के संबंध में देय निम्नलिखित करों या उनके आनुपातिक भाग, यदि कोई हो, का भुगतान मकान मालिक को करने के लिए उत्तरदायी होगा, अर्थात–

(क) जल कर;

(ख) इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात गृह कर में की गई प्रत्येक वृद्धि का पच्चीस प्रतिशत, या उसका ऐसा भाग, जो धारा 5 के उपबंधों के अधीन किराए में वृद्धि के परिणामस्वरूप भवन के मूल्यांकन में हुई वृद्धि के कारण नहीं हुआ है;

परन्तु इस धारा की कोई बात ऐसे किरायेदार के संबंध में लागू नहीं होगी जिसके द्वारा देय किराये की दर (धारा 5 के उपबंधों के अधीन किसी वृद्धि या किराये को छोड़कर) तत्समय पच्चीस रुपए प्रतिमास से अधिक नहीं है।

मानक किराये का निर्धारण.– (1) किसी ऐसे भवन की दशा में, जिस पर पुराना अधिनियम लागू था और जो इस अधिनियम के प्रारंभ के समय किराये पर दिया गया था, जिसके संबंध में न तो कोई युक्तियुक्त वार्षिक किराया है, न ही कोई सहमत किराया है या किसी अन्य दशा में, जहां न तो कोई सहमत किराया है और न ही कोई निर्धारण लागू है, जिला मजिस्ट्रेट, उस निमित्त आवेदन किए जाने पर, मानक किराये का निर्धारण करेगा।

(2) मानक किराया निर्धारित करते समय जिला मजिस्ट्रेट निम्नलिखित बातों पर विचार कर सकेगा–

(क) इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख या किराये पर देने की तारीख, जो भी बाद में हो (जिसे इस धारा में इसके पश्चात उक्त तारीख कहा गया है) के ठीक पूर्व भवन और उसके स्थल का संबंधित बाजार मूल्य;

(ख) भवनों के निर्माण, रखरखाव और मरम्मत की लागत;

(ग) उक्त तारीख से ठीक पहले उस क्षेत्र में स्थित समान भवनों के लिए प्रचलित किराया;

(घ) भवन में उपलब्ध कराई गई सुविधाएं;

(ड़) भवन का नवीनतम मूल्यांकन, यदि कोई हो;

(च) कोई अन्य सुसंगत तथ्य जो मामले की परिस्थितियों में महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।

(3) उपधारा (1) के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, धारा 10 के अधीन की गई किसी अपील के परिणाम के अधीन रहते हुए, अंतिम होगा।

दण्ड लेने या देने पर प्रतिषेध करने के लिए अधिनियम।

भारत गणराज्य के बारहवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियम बनाया गया–

प्रश्न न0 6–मानक किराया से आप समझते है? मानक किराया के निर्धारण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

उत्तर– अधिनियम की धारा 3(के) के अनुसार ''मानक किराया'' धारा 6,8 और 10 के प्रावधनों के अधीन है–

(1) पुराने अधिनियम द्वारा शासित एक इमारत के मामले में और इस अधिनियम के शुरू होने के समय बाहर जाने दें–

(क) जहां ऐसे प्रारंभ पर उसके लिए सहमत किराया देय है और साथ ही उचित वार्षिक किराया भी है खजिसका इस अधिनियम में वही अर्थ है जो पुराने अधिनियम की धारा 2(च) में है, जिसे अनुसूची में पुनरू प्रस्तुत किया गया है,, वहां सहमत किराया या उचित वार्षिक किराया और उस पर 25 प्रतिशत, जो भी अधिक हो;

(ख) जहां कोई सहमत किराया नहीं है, लेकिन एक उचित वार्षिक किराया है, उचित किराया. उस पर 25 प्रतिशत;

(ग) जहां न तो सहमति वाला किराया है और न ही उचित वार्षिक किराया है, वहां धारा 9 के तहत निर्धारित किराया।

धारा 6 के अनुसार, किराए में सुधार का प्रभाव– इसके बावजूद, धारा 4 या धारा 5 में कुछ भी शामिल नहीं है, लेकिन धारा 8 के प्रावधनों के अधीन है, जहाँ मकान मालिक के पास, इस अधिनियम के शुरू होने के बाद, या तो किरायेदार की सहमति से का कानून के किसी आवश्यकता के अनुसरण में बनाया गया है। किसी भवन में कोई सुधार, वह किरायेदार को लिखित रूप से नोटिस देकर, सुधार के पूरा होने की तारीख से तीन महीने के भीतर दिया जा सकता है, भवन का मासिक किराया राशि को बढ़कार, वास्तविक लागत का एक प्रतिशत से अधिक नही उक्त विधि से प्रभाव में सुधार, और उसके अनुसार उस भवन घोंघा स्टैंड के मानक किराए में वृद्धि हुई।

धारा 8 के अनुसार, मानक किराए की राशि, आदि के सम्बन्ध में विवाद– (1) जहां मानक किराये की रकम के संबंध में या धारा 5 या धारा 6 के अधीन अनुमेय किराये में वृद्धि की रकम के संबंध में या उस तारीख के संबंध में जिससे ऐसी वृद्धि प्रभावी होगी, या धारा 7 के अधीन किराएदार द्वारा देय करों की रकम के संबंध में, या धारा 16 या धारा 21 के अधीन भवन के किसी भाग या उससे अनुलग्न किसी भूमि के निर्मुक्त किए जाने के पश्चात किराएदार द्वारा देय आनुपातिक किराये की रकम के संबंध में, या धारा 24 की उपधारा (2) के अधीन उसे आबंटित नए भवन के लिए मूल किराएदार द्वारा देय किराये की रकम के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न होता है, वहां जिला मजिस्ट्रेट उस निमित्त आवेदन किए जाने पर आदेश द्वारा ऐसी रकम अवधारित करेगा।

(2) जहां किसी किरायेदार द्वारा अधिभोगित भवन का मूल्यांकन उसके लिए देय करारबद्ध किराये से कम है, वहां जिला मजिस्ट्रेट किरायेदार के आवेदन पर या स्वयं की प्रेरणा से, मकान मालिक को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात, संबंधित स्थानीय प्राधिकारी को निर्देश दे सकेगा कि वह करारबद्ध किराये के अनुसार मूल्यांकन बढ़ा दे, जो उस तारीख से प्रभावी होगा, जिससे करारबद्ध किराया देय है या इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से, जो भी बाद में हो, और तब उस स्थानीय प्राधिकारी से संबंधित विधि में किसी बात के होते हुए भी, मूल्यांकन तदनुसार ठीक किया जाएगा।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन प्रत्येक आदेश, धारा 10 के अधीन की गई किसी अपील के परिणाम के अधीन रहते हुए, अंतिम होगा।

धारा 8 और 9 के अधीन आदेश के विरुद्ध अपील– (1) धारा 8 या धारा 9 के अधीन जिला मजिस्ट्रेट के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर, उसके विरुद्ध जिला न्यायाधीश को अपील कर सकेगा और जिला न्यायाधीश या तो उसका स्वयं निपटारा कर सकेगा या अपने प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन किसी अपर जिला न्यायाधीश को निपटारे के लिए सौंप सकेगा और उसे किसी ऐसे अधिकारी से वापस ले सकेगा या किसी अन्य ऐसे अधिकारी को अंतरित कर सकेगा।

(2) अपील प्राधिकारी आदेश की पुष्टि कर सकता है, उसमें परिवर्तन कर सकता है या उसे विखण्डित कर सकता है, या मामले को पुनः सुनवाई के लिए जिला मजिस्ट्रेट के पास वापस भेज सकता है, तथा कोई अतिरिक्त साक्ष्य भी ले सकता है, तथा अपना निर्णय लंबित रहने तक अपील के अधीन आदेश के प्रवर्तन को ऐसे निबंधनों पर, यदि कोई हों, रोक सकता है, जिन्हें वह ठीक समझे।

(3) इस धारा के अधीन अपील प्राधिकारी द्वारा पारित किसी आदेश के विरुद्ध कोई और अपील या पुनरीक्षण नहीं किया जा सकेगा तथा उसका आदेश अंतिम होगा।

प्रश्न न0 7– क्षेत्रीय विकास योजना क्या है? इस योजना में संशोधन कैसे किया जा सकता है? क्षेत्रीय विकास योजना एवं महायोजना में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर– क्षेत्रीय विकास योजनाएँ–

विकास क्षेत्र का सिविल सर्वेक्षण और मास्टर प्लान–

(1) प्राधिकरण यथाशीघ्र विकास क्षेत्र के लिए मास्टर प्लान तैयार करेगा।

(2) मास्टर प्लान में विकास के प्रयोजनों के लिए विकास क्षेत्र को विभाजित करने वाले विभिन्न क्षेत्रों को परिभाषित किया जाएगा और प्रत्येक क्षेत्र में भूमि का उपयोग किस प्रकार प्रस्तावित है (चाहे उस पर विकास कार्य करके या

अन्यथा) तथा विकास के चरण बताए जाएंगेय और यह उस ढांचे के मूल प्रतिरूप के रूप में कार्य करेगा जिसके अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों की क्षेत्रीय विकास योजनाएं तैयार की जा सकेंगी।

(3) मास्टर प्लान में किसी अन्य विषय के लिए प्रावधान किया जा सकेगा जो विकास क्षेत्र के समुचित विकास के लिए आवश्यक हो। 9. क्षेत्रीय विकास योजनाएँ.–

(1) मास्टर प्लान की तैयारी के साथ ही या उसके तुरंत बाद, प्राधिकरण उन प्रत्येक क्षेत्रों के लिए क्षेत्रीय विकास योजना तैयार करने की कार्यवाही करेगा, जिनमें विकास क्षेत्र को विभाजित किया जा सकता है।

(2) क्षेत्रीय विकास योजना में क्षेत्र के विकास के लिए स्थल–योजना और उपयोग–योजना हो सकती है और सार्वजनिक भवनों और अन्य सार्वजनिक कार्यों और उपयोगिताओं, सड़कों, आवास, मनोरंजन, उद्योग, व्यवसाय, बाजारों, स्कूलों, अस्पतालों और सार्वजनिक और निजी खुले स्थानों और सार्वजनिक और निजी उपयोगों की अन्य श्रेणियों के लिए क्षेत्र में प्रस्तावित भूमि उपयोग के अनुमानित स्थान और विस्तार को दर्शाया जा सकता हैय जनसंख्या घनत्व और भवन घनत्व के मानकों को निर्दिष्ट किया जा सकता हैय क्षेत्र में प्रत्येक क्षेत्र को दर्शाया जा सकता है, जिसे प्राधिकरण की राय में विकास या पुनर्विकास के लिए आवश्यक या घोषित किया जा सकता हैय और

विशेष रूप से, निम्नलिखित सभी या किसी भी मामले के संबंध में प्रावधान शामिल होंगे, अर्थात्

(i) भवनों के निर्माण के लिए किसी भी साइट को भूखंडों में विभाजित करना;

(ii) सड़कों, खुले स्थानों, उद्यानों, मनोरंजन के मैदानों, विद्यालयों, बाजारों और अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए भूमि का आबंटन या आरक्षण–

(iii) किसी क्षेत्र का टाउनशिप या कॉलोनी में विकास और ऐसे विकास के लिए प्रतिबंध और शर्तें,

(iv) किसी भी साइट पर इमारतों का निर्माण और इमारतों में या उसके आसपास बनाए जाने वाले खुले स्थानों और इमारतों की ऊंचाई और चरित्र के संबंध में प्रतिबंध और शर्तें:

(v) किसी भी साइट की इमारतों का संरेखण;

(vi) किसी भी साइट पर बनाए जाने वाले किसी भी भवन की ऊंचाई या अग्रभाग की स्थापत्य संबंधी विशेषताएं,

(vii) आवासीय भवनों की संख्या जो भूखंड या साइट पर बनाए जा सकते हैं;

(viii) वन निर्माण से पहले या बाद में तथा वह व्यक्ति या प्राधिकरण जिसके द्वारा या जिसके खर्च पर ऐसी सुविधाएं प्रदान की जानी हैं–

(ix) दुकानों, कार्यशालाओं, कारखानों के गोदामों या निर्दिष्ट वास्तुशिल्प विशेषताओं वाले भवनों या इलाके में विशेष उद्देश्यों के लिए डिजाइन किए गए भवनों के निर्माण के संबंध में निषेध या प्रतिबंध, दीवारों, बाड़ों, हेजेज या किसी अन्य संरचनात्मक या वास्तुशिल्प निर्माण का रखरखाव और जिस ऊंचाई पर उन्हें बनाए रखा जाएगारू भवनों के निर्माण के अलावा अन्य उद्देश्यों के लिए किसी भी साइट के उपयोग के संबंध में प्रतिबंधय कोई अन्य मामला जो योजना के अनुसार क्षेत्र या उसके किसी क्षेत्र के समुचित विकास के लिए आवश्यक है और ऐसे क्षेत्र या इलाके में अव्यवस्थित रूप से बनाए जा रहे भवनों को प्रस्तुत करने के लिए।

राज्य सरकार को अनुमोदन के लिए योजनाओं का प्रस्तुत करना–

(1) इस धारा में तथा धारा 11, 12, 14 तथा 16 में योजना शब्द का अर्थ है मास्टर प्लान तथा किसी क्षेत्र के लिए क्षेत्रीय विकास योजना।

(2) प्रत्येक योजना, अपनी तैयारी के पश्चात प्राधिकरण द्वारा अनुमोदन के लिए राज्य सरकार को प्रस्तुत की जाएगी तथा वह सरकार या तो योजना को बिना किसी संशोधन के या बिना किसी संशोधन के, जैसा वह आवश्यक समझे, अनुमोदित कर सकती है या प्राधिकरण को ऐसे निर्देशों के अनुसार नई योजना तैयार करने के निर्देश के साथ योजना को अस्वीकार कर सकती है।

योजना तैयार करने तथा अनुमोदन में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया– (1) किसी योजना को अंतिम रूप से तैयार करने तथा उसे अनुमोदन के लिए राज्य सरकार को प्रस्तुत करने से पूर्व प्राधिकरण एक योजना तैयार करेगा तथा उसकी एक प्रति निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराते हुए ऐसे प्रारूप तथा तरीके से एक नोटिस प्रकाशित करेगा, जैसा कि उस संबंध में बनाए गए विनियमों द्वारा निर्धारित किया जा सकता है, जिसमें किसी भी व्यक्ति से प्रारूप योजना के संबंध में ऐसी तिथि से पूर्व आपत्तियां तथा सुझाव आमंत्रित किए जाएंगे, जो नोटिस में निर्दिष्ट की जा सकती है।

(2) प्राधिकरण प्रत्येक स्थानीय प्राधिकरण को, जिसकी स्थानीय सीमा के भीतर योजना से प्रभावित भूमि स्थित है, योजना के संबंध में कोई अभ्यावेदन करने का युक्तियुक्त अवसर भी देगा।

(3) प्राधिकरण को प्राप्त सभी आपत्तियों, सुझावों और अभ्यावेदनों पर विचार करने के पश्चात प्राधिकरण अंततः योजना तैयार करेगा और उसे राज्य सरकार के अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करेगा।

(4) इस धारा के पूर्वगामी उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य सरकार प्राधिकरण को ऐसी सूचना प्रस्तुत करने का निर्देश दे सकती है, जिसकी सरकार इस धारा के अधीन उसे प्रस्तुत किसी योजना को अनुमोदित करने के प्रयोजन के लिए अपेक्षा कर सकती है।

योजना के प्रारंभ होने की तिथि.– राज्य सरकार द्वारा योजना अनुमोदित किए जाने के तुरंत पश्चात प्राधिकरण राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट तरीके से एक सूचना प्रकाशित करेगा, जिसमें यह कहा जाएगा कि योजना अनुमोदित कर दी गई है और उस स्थान का नाम दिया जाएगा, जहां योजना की एक प्रति का निरीक्षण सभी युक्तिसंगत समय पर किया जा सकता है और पूर्वोक्त सूचना के प्रथम प्रकाशन की तिथि को योजना लागू हो जाएगी।

मुख्य सड़कों से लगे कुछ भवनों के अग्रभाग का रखरखाव और सुधार.–

(1) जहां किसी विकास क्षेत्र में, कोई भवन जो पूर्णतः गैर–आवासीय प्रयोजनों के लिए या आंशिक रूप से आवासीय और आंशिक रूप से गैर–आवासीय प्रयोजनों के लिए अधिभोग में है, मुख्य सड़क से लगा हुआ है, ऐसे भवन का अधिभोगी, उस संबंध में बनाए गए किसी उप–नियम के अनुसार, अपने स्वयं के खर्च पर ऐसे भवन के अग्रभाग की मरम्मत, रंग–रोगन या पेंटिंग करने के लिए बाध्य होगा।

(2) जहां प्राधिकरण, उस संबंध में बनाए गए किसी रंग–योजना या अन्य विनिर्देश के साथ समरूपता सुनिश्चित करने की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझता है, या जहां कोई अधिभोगी उप–धारा (1) के अनुसार किसी भवन के अग्रभाग की मरम्मत, रंग–रोगन, रंग–रोगन या पेंटिंग करने में विफल रहता है, वहां वह आदेश द्वारा यह अपेक्षा कर सकता है कि उक्त कार्य प्राधिकरण द्वारा स्वयं या उसके निर्देश के अधीन किया जाएगा, और तदनुसार, अधिभोगी से यह अपेक्षा भी कर सकता है कि वह ऐसे कार्य की लागत प्राधिकरण को अदा करे।

(3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी कार्य की लागत की गणना 'न लाभ न हानि' के आधार पर की जाएगी तथा जमा की जाने वाली राशि की युक्तिसंगतता के बारे में किसी विवाद की स्थिति में, उसका निर्णय राज्य सरकार द्वारा किया जाएगा तथा उसके अधीन रहते हुए प्राधिकरण का आदेश अंतिम होगा तथा किसी न्यायालय में उस पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा।

(4) किसी अधिभोगी द्वारा उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी कार्य की लागत का सम्पूर्ण या आंशिक भुगतान न किए जाने की स्थिति में, वह उपसभापति के प्रमाण–पत्र पर अधिभोगी से भू–राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जा सकेगी।

स्पष्टीकरण – इस धारा में 'मुख्य सड़क' का अर्थ उपविधि में निर्दिष्ट अर्थ होगा, भवन के संबंध में 'अधिभोगी' का अर्थ भवन पर वास्तविक कब्जा या उपयोग करने वाला व्यक्ति है, तथा इसमें भवन का स्वामी (जिस अभिव्यक्ति में न्यायालय द्वारा नियुक्त अभिकर्ता या ट्रस्टी या रिसीवर, जब्तकर्ता या प्रबंधक या भवन पर कब्जा रखने वाला बंधककर्ता शामिल होगा) शामिल है, जो निम्नलिखित के कब्जे में है–

(ii) किरायेदार जो फिलहाल मालिक को इसके संबंध में किराया दे रहा है या देने के लिए उत्तरदायी है;

(iii) इसका किराया–मुक्त अनुदानकर्ता या लाइसेंसधारी–

(iv) वह व्यक्ति जो इसके अनधिकृत उपयोग और कब्जे के लिए मालिक को क्षतिपूर्ति देने के लिए उत्तरदायी है।,

प्रश्न न0 8– उ0प्र0 नगरपालिका, 1916 के अन्तर्गत नगरपालिका परिषद के करों को अधिरोपित करने से सम्बन्धित प्रावधानों की विवेचना कीजिए।

उत्तर– अधिनियम की धारा 128 कर लगाया जाना– (1) इस अधिनियम और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 285 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नगरपालिका निम्नलिखित कर लगाएगी, अर्थात–

(i) भवनों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर कर।

(ii) भवनों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर जल कर;

(iii) भवनों के वार्षिक मूल्य पर जल निकासी कर, जो ऐसे भवनों पर लगाया जा सकेगा जो निकटतम सीवर लाइन से प्रत्येक नगरपालिका के लिए इस निमित्त नियमों द्वारा निर्धारित दूरी के भीतर स्थित हैं;

(iv) शौचालयों, मूत्रालयों, सीवेज पूलों से मल और प्रदूषित पदार्थों के संग्रहण, निष्कासन और निपटान के लिए संरक्षण करय (2) उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट करों के अतिरिक्त, नगरपालिका इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए तथा इसके उपबंधों के अधीन रहते हुए निम्नलिखित में से कोई भी कर लगा सकेगी, अर्थात्–

(i) नगरपालिका सीमा के भीतर किए जाने वाले व्यापारों और व्यवसायों पर कर, तथा नगरपालिका सेवाओं से विशेष लाभ प्राप्त करने वाले या उन पर विशेष भार डालने वाले कर;

(ii) व्यापारों, व्यवसायों और व्यवसायों पर कर, जिसमें वेतन या फीस द्वारा पारिश्रमिक प्राप्त करने वाले सभी रोजगार शामिल हैं;

(iii) रंगमंच कर, जिसका अर्थ है मनोरंजन या मनोरंजन पर करय (पअ) नगरपालिका के भीतर रखे जाने वाले कुत्तों पर कर;

(v) सफाई कर;

(vi) नगरपालिका की सीमा के भीतर स्थित अचल संपत्तियों के हस्तांतरण के विलेखों पर कर;

(vii) समाचारपत्रों में प्रकाशित विज्ञापनों के अलावा अन्य विज्ञापनों पर करय (अपपप) नगरपालिका सीमा के भीतर चलने वाले वाहनों और अन्य वाहनों पर या उसमें खड़ी नावों पर कर।

(Viii) सुधार कर।

(3) नगरपालिका करों का निर्धारण और अधिरोपण इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों और उप–नियमों के प्रावधानों के अनुसार किया जाएगा।

(4) इस धारा में कोई भी ऐसा कर लगाने का अधिकार नहीं होगा जिसे राज्य विधानमंडल को संविधान के तहत राज्य में लगाने का अधिकार नहीं है–

बशर्ते कि कोई नगरपालिका जो संविधान के लागू होने से ठीक पहले इस धारा के तहत कोई ऐसा कर वैध रूप से लगा रही थी, वह तब तक उस कर को लगाना जारी रख सकती है जब तक कि संसद द्वारा इसके विपरीत प्रावधान नहीं कर दिया जाता।

अधिनियम की धारा 128 क अचल सम्पत्ति के हस्तान्तरण के कर्मों पर कर– (1) जहां किसी नगर पालिका ने धारा 128 की उपधारा (1) के खंड (xiii–बी) में निर्दिष्ट कर लगाया है, वहां भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 द्वारा अचल संपत्ति के हस्तांतरण के किसी विलेख पर लगाया गया शुल्क, ऐसी नगर पालिका की सीमाओं के भीतर स्थित अचल संपत्ति के मामले में, उस प्रतिफल की राशि या मूल्य पर दो प्रतिशत बढ़ाया जाएगा, जिसके संदर्भ में उक्त अधिनियम के तहत शुल्क की गणना की जाती हैरू बशर्ते कि नगर पालिका राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से विशेष संकल्प द्वारा स्टाम्प शुल्क में वृद्धि के उपर्युक्त प्रतिशत को पांच प्रतिशत तक बढ़ा सकती है।

(2) उक्त वृद्धि से होने वाले सभी संग्रह, आकस्मिक व्ययों की कटौती के बाद, यदि कोई हो, राज्य सरकार द्वारा संबंधित नगर पालिका को निर्धारित तरीके से भुगतान किए जाएंगे।

(3) इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 27 को इस प्रकार पढ़ा और समझा जाएगा मानो इसमें निर्दिष्ट विशिष्टियों को निम्नलिखित के संबंध में पृथक रूप से वर्णित करने की आवश्यकता है –

(क) किसी नगर पालिका की सीमाओं के भीतर स्थित संपत्ति; और

(ख) किसी नगर पालिका की सीमाओं के बाहर स्थित संपत्ति।

(4) इस धारा के प्रयोजनों के लिए भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 64 में सरकार के सभी संदर्भों में नगर पालिका, भी शामिल माना जाएगा।

अधिनियम की धारा 129 जल–कर के अधिरोपण पर प्रतिबन्ध– धारा 128 की उपधारा (1) के खण्ड (ii) के अन्तर्गत कर अधिरोपण इस प्रतिबन्ध के अधीन होगा कि कर अधिरोपित नहीं किया जाएगा, –

(i) ऐसी भूमि पर जो केवल कृषि प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाती है, जब तक कि ऐसे प्रयोजन के लिए ख्नगरपालिका, द्वारा जल प्रदाय नहीं किया जाता है; या

(ii) किसी भूमि या भवन पर जिसका वार्षिक मूल्य तीन सौ साठ रूपये से अधिक नहीं है, तथा जिसे ख्नगरपालिका, द्वारा जल प्रदाय नहीं किया जाता है; या

(iii) किसी ऐसे भूखंड या भवन पर जिसका कोई भी भाग निकटतम स्टैंड–पाइप या अन्य जल कार्यों से नगरपालिका के लिए निर्धारित त्रिज्या के अन्दर नहीं है, जहाँ ख्नगरपालिका, द्वारा जनता को जल उपलब्ध कराया जाता है।

स्पष्टीकरण– इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) 'भवन' में उसका परिसर, यदि कोई हो, शामिल होगा और जहां एक सामान्य परिसर में कई भवन हैं, वहां सभी ऐसे भवन और सामान्य परिसर शामिल होंगे;

(ख) 'भूमि का एक भूखण्ड' से किसी एकल अधिभोगी द्वारा धारित भूमि का कोई टुकड़ा अभिप्रेत है, या कई सह–अधिभोगियों द्वारा साझा रूप से धारित है, जिसका कोई भी भाग किसी अन्य अधिभोगी या अन्य सह–अधिभोगी की भूमि या सार्वजनिक संपत्ति द्वारा दूसरे भाग से पूरी तरह से अलग नहीं है।

अधिनियम की धारा 129 (क) भवनों या भूमियों या दोनों के वार्षिक मूल्य पर कर लगाना– भवनों या भूमियों या दोनों के वार्षिक मूल्य पर कर नगरपालिका सीमा में स्थित सभी भवनों और भूमियों के संबंध में लगाया जाएगा, सिवाय –

(क) केवल मृतकों के निपटान से संबंधित उद्देश्यों के लिए उपयोग किए जाने वाले भवन और भूमि;

(ख) केवल सार्वजनिक पूजा या धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए उपयोग किए जाने वाले भवन और भूमि या उनके हिस्से, अनुसंधान और विकास के सरकारी सहायता प्राप्त संस्थानों के खेत, फार्म और उद्यान, सरकारी सहायता प्राप्त या गैर–सहायता प्राप्त, मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों या खेल स्टेडियम के खेल के मैदान;

(ग) केवल स्कूलों और इंटरमीडिएट कॉलेजों के रूप में उपयोग की जाने वाली इमारतें, चाहे वे राज्य सरकार द्वारा सहायता प्राप्त हों या नहीं;

(घ) प्राचीन स्मारक संरक्षण अधिनियम, 1904 में परिभाषित प्राचीन स्मारक,

किसी भी ऐसे स्मारक के संबंध में राज्य सरकार के किसी भी निर्देश के अधीनय

(ई) भारत संघ में निहित भवन और भूमि, सिवाय उन स्थानों के जहां भारतीय संविधान के अनुच्छेद 285 के खंड (2) के प्रावधान लागू होते हैं;

(एफ) तीस वर्ग मीटर या पंद्रह वर्ग मीटर तक के कारपेट क्षेत्र वाले भूखंड पर निर्मित कोई भी स्वामी द्वारा अधिगृहीत आवासीय भवन, बशर्ते कि उसके स्वामी के पास नगरपालिका सीमा में कोई अन्य भवन न हो; और

(जी) भवन के स्वामी द्वारा अधिगृहीत आवासीय भवन जो ऐसे क्षेत्र में स्थित है जो नगरपालिका परिषद की सीमा में शामिल किया गया है, पांच वर्ष के भीतर या क्षेत्र में सड़क, पेयजल और स्ट्रीट लाइट की सुविधाएं प्रदान किए जाने के बाद, जो भी पहले हो",

अधिनियम की धारा 130 अन्य करों के अधिरोपण पर प्रतिबंध– धारा 128 की उपधारा (1) के खंड (iv) या उपधारा (2) के खंड (अप) के अंतर्गत कर लगाना इस प्रतिबंध के अधीन होगा कि कर किसी भी घर या भवन पर निर्धारित नहीं किया जाएगा या किसी भी घर या भवन के अधिभोगी से नहीं वसूला जाएगा, जब तक कि धारा 196 के खंड (क) के अंतर्गत नगरपालिका घर की सफाई या शौचालयों, मूत्रालयों और सीवेज पूलों से मलमूत्र और प्रदूषित पदार्थों के संग्रह, निष्कासन और निपटान का कार्य नहीं करती है।

अधिनियम की धारा 130 क राज्य सरकार की नगरपालिका से कर लगाने की अपेक्षा करने की शक्ति– (1) राज्य सरकार, राजपत्र में प्रकाशित सामान्य या विशेष आदेश द्वारा, किसी नगरपालिका को धारा 128 में उल्लिखित कोई कर, जो पहले से नहीं लगाया गया है, ऐसी दर पर और ऐसी अवधि के भीतर लगाने की आवश्यकता हो सकती है, जैसा कि अधिसूचना में निर्दिष्ट किया जा सकता है और नगरपालिका तदनुसार कार्य करेगी।

(2) राज्य सरकार किसी नगरपालिका को पहले से लगाए गए किसी कर की दर को बढ़ाने, संशोधित करने या बदलने की आवश्यकता हो सकती है और नगरपालिका आवश्यकतानुसार कर को बढ़ाएगी, संशोधित करेगी या बदलेगी।

(3) यदि नगरपालिका उपधारा (1) या (2) के तहत पारित आदेश को पूरा करने में विफल रहती है, तो राज्य सरकार कर लगाने, बढ़ाने, संशोधित करने या बदलने के लिए उपयुक्त आदेश पारित कर सकती है और इसके बाद ख्राज्य सरकार, का आदेश इस प्रकार लागू होगा मानो वह केवल ख्नगरपालिका, द्वारा ख्धारा 134 की उपधारा (2) के अधीन, पारित संकल्प हो।

अधिनियम की धारा 130 ख कुछ प्रयोजनों के लिए करों की प्राप्तियों को एकत्रित करना– धारा 128 की उपधारा (1) के खंड (ii), (iii) और (iv) तथा उपधारा (2) के खंड (vi) में उल्लिखित जल, जल निकासी, सफाई और संरक्षण करों से प्राप्त सभी धनराशियां तथा जल–कार्यों और मल–मूत्र फार्मों तथा शौचालयों, मूत्रालयों और सेसपूलों से एकत्रित मल–मूत्र और प्रदूषित पदार्थों के निपटान से प्राप्त सभी अन्य आयें एक साथ एकत्रित की जाएंगी और उनका उपयोग जल–कार्यों और जल–मूत्र निकासी कार्यों के निर्माण, रखरखाव, विस्तार या सुधार तथा शौचालयों, मूत्रालयों और सेसपूलों से मल–मूत्र और प्रदूषित पदार्थों के संग्रह, निष्कासन और निपटान की व्यवस्थाओं से संबंधित उद्देश्यों के लिए किया जाएगा, जिसमें मल–मूत्र फार्मों का रखरखाव भी शामिल है।

अधिनियम की धारा 131 प्रारंभिक प्रस्तावों का निर्माण– (1) जब कोई ख्नगरपालिका, कोई कर लगाना चाहती है, तो वह विशेष संकल्प द्वारा प्रस्ताव तैयार करेगी, जिसमें यह निर्दिष्ट किया जाएगा –

(क) वह कर, जो धारा 128 की उपधारा (2) में वर्णित करों में से एक है, जिसे वह लगाना चाहती है;

(ख) वे व्यक्ति या व्यक्तियों का वर्ग, जिन पर उन्हें दायित्व दिया जाना है, तथा संपत्ति या अन्य करयोग्य वस्तुओं या परिस्थितियों का विवरण, जिनके संबंध में उन्हें दायित्व दिया जाना है,

सिवाय इसके कि जहां तक ऐसा कोई वर्ग या विवरण खंड (क) के अधीन या इस अधिनियम द्वारा पहले से ही पर्याप्त रूप से परिभाषित है;

(ग) ऐसे प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग से वसूलनीय राशि या दर;

(घ) धारा 153 में निर्दिष्ट कोई अन्य विषय, जिसे ख्राज्य सरकार, नियम द्वारा निर्दिष्ट करने की अपेक्षा करती है।

(2) नगरपालिका उन नियमों का प्रारूप भी तैयार करेगी, जिन्हें वह राज्य सरकार से धारा 153 में निर्दिष्ट विषयों के संबंध में बनवाना चाहती है।

(3) नगरपालिका, तत्पश्चात धारा 94 में निर्धारित तरीके से उपधारा (1) के अंतर्गत बनाए गए प्रस्तावों और उपधारा (2) के अंतर्गत बनाए गए प्रारूप नियमों को अनुसूची प्प् में दिए गए प्रारूप में सूचना सहित प्रकाशित करेगी।

अधिनियम की धारा 132 प्रस्ताव तैयार करने के पश्चात् की प्रक्रिया– (1) नगरपालिका क्षेत्र का कोई भी निवासी उक्त सूचना के प्रकाशन से एक पखवाड़े के भीतर नगरपालिका को पूर्ववर्ती धारा के अंतर्गत बनाए गए सभी या किसी भी प्रस्ताव पर लिखित रूप में आपत्ति प्रस्तुत कर सकेगा और नगरपालिका इस प्रकार प्रस्तुत की गई किसी भी आपत्ति पर विचार करेगी और विशेष प्रस्ताव द्वारा उस पर आदेश पारित करेगी।

(2) यदि ख्नगरपालिका, अपने प्रस्तावों या उनमें से किसी को संशोधित करने का निर्णय लेती है, तो वह अधिसूचित प्रस्तावों और (यदि आवश्यक हो) संशोधित मसौदा नियमों को एक नोटिस के साथ प्रकाशित करेगी, जिसमें यह दर्शाया जाएगा कि प्रस्ताव और नियम (यदि कोई हो) आपत्ति के लिए पहले प्रकाशित प्रस्तावों और नियमों में संशोधन हैं– बशर्ते कि ऐसा कोई प्रकाशन आवश्यक नहीं होगा जहां संशोधन मूल रूप से प्रस्तावित कर की राशि या दर में कमी तक ही सीमित हो।

प्रश्न न0 9–निम्नलिखित में सें किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

उत्तर– (1) उ0प्र0 नियोजन एवं विकास अधिनियम, 1973 के अन्तर्गत का अर्जन और व्ययन–

धारा 17. भूमि का अनिवार्य अर्जन– (1) यदि राज्य सरकार की राय में विकास के लिए या किसी अन्य उद्देश्य के लिए कोई भूमि आवश्यक है, तो इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के उपबंधों के अधीन ऐसी भूमि का अर्जन कर सकती है: परन्तु कोई व्यक्ति, जिससे कोई भूमि इस प्रकार अर्जित की गई है, ऐसे

अर्जन की तिथि से पांच वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात राज्य सरकार को उस भूमि को उसे लौटाने के लिए इस आधार पर आवेदन कर सकता है कि जिस अवधि के भीतर भूमि का उपयोग उस उद्देश्य के लिए नहीं किया गया है जिसके लिए वह अर्जित की गई थी, और यदि राज्य सरकार इस आशय से संतुष्ट है तो वह अर्जन के संबंध में व्यय किए गए प्रभारों को बारह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित तथा ऐसे विकास प्रभारों को, जो अर्जन के पश्चात व्यय किए गए हों, वापस चुकाने पर भूमि उसे लौटाने का आदेश देगी।

(2) जहां कोई भूमि राज्य सरकार द्वारा अर्जित की गई है, वहां वह सरकार, भूमि पर कब्जा लेने के पश्चात, उस भूमि को प्राधिकरण या किसी स्थानीय प्राधिकरण को उस प्रयोजन के लिए, जिसके लिए भूमि अर्जित की गई है, उस अधिनियम के अधीन अधिनिर्णीत प्रतिकर और अधिग्रहण के संबंध में सरकार द्वारा उपगत प्रभारों का प्राधिकरण या स्थानीय प्राधिकरण द्वारा भुगतान किए जाने पर अंतरित कर सकेगी।

धारा 18. प्राधिकरण या संबंधित स्थानीय प्राधिकरण द्वारा भूमि का निपटान–(1) राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में दिए गए किसी निर्देश के अधीन, प्राधिकरण या, जैसा भी मामला हो, संबंधित स्थानीय प्राधिकरण राज्य सरकार द्वारा अर्जित और उसे हस्तांतरित किसी भूमि का, उस पर कोई विकास किए बिना या उसे कार्यान्वित किए बिना निपटान कर सकता है; या ऐसी किसी भूमि का, जो वह उचित समझे, ऐसे व्यक्तियों को, ऐसी रीति से और ऐसी शर्तों और नियमों के अधीन, जिन्हें वह योजना के अनुसार विकास क्षेत्र के विकास को सुरक्षित करने के लिए समीचीन समझे।

(2) इस अधिनियम में किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह प्राधिकरण या संबंधित स्थानीय प्राधिकरण को दान के रूप में भूमि का निपटान करने में सक्षम बनाती है, किन्तु इसके अधीन रहते हुए, इस अधिनियम में भूमि के निपटान के संदर्भों का अर्थ किसी भी तरीके से, चाहे बिक्री, विनिमय या पट्टे के माध्यम से या किसी सुखभोग, अधिकार या विशेषाधिकार के सृजन द्वारा या अन्यथा, उसके निपटान के संदर्भों के रूप में लगाया जाएगा। 2 (3) उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, संबंधित प्राधिकरण या स्थानीय प्राधिकरण ऐसी भूमि पर (जिसके अंतर्गत उस पर कोई भवन भी है) भारतीय जीवन बीमा निगम के पक्ष में बंधक या भार सृजित कर सकेगा। आवास एवं नगरीय विकास निगम, या उत्तर प्रदेश लोक धन (बकाया वसूली) अधिनियम, 1972 में परिभाषित बैंकिंग कंपनी या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में सामान्य या विशेष आदेश द्वारा अनुमोदित कोई अन्य वित्तीय संस्था।

(3) (4) जहां खाली भूमि को इस धारा के अधीन निर्माण करने के लिए पट्टे के माध्यम से समय के भीतर निपटाया गया है, ऐसे समय के भीतर निर्माण न करने पर पट्टे को जब्त करने और पुनः प्रवेश का अधिकार है, और पट्टेदार पर्याप्त कारण के बिना, निर्माण या उसके पर्याप्त भाग को निर्धारित समय या पट्टाकर्ता द्वारा दी गई विस्तारित समय के भीतर करने में विफल रहता है, तो पट्टाकर्ता उप–धारा (4–ए) के प्रावधानों के अधीन पट्टे को जब्त कर सकता है और भूमि पर पुनः प्रवेश कर सकता हैरू बशर्ते कि कोई जब्ती और पुनः प्रवेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि पट्टेदार को प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ कारण बताने का उचित अवसर न दिया गया हो।

(4) (4–ए) जहां पट्टेदार निर्धारित समय और विस्तारित समय के भीतर निर्माण करने में विफल रहता है, उपधारा (4) के अधीन, जिससे पट्टे की तिथि से कुल अवधि पांच वर्ष से अधिक हो जाए, संबंधित भूमि के प्रचलित बाजार मूल्य के दो प्रतिशत की दर से प्रभार पट्टाकर्ता द्वारा प्रति वर्ष उससे वसूल किया जाएगा और यदि उक्त प्रभार लगाए जाने की तिथि से पांच वर्ष की अतिरिक्त अवधि बीत जाती है तो पट्टा जब्त हो जाएगा और पट्टाकर्ता भूमि पर पुनः प्रवेश कर सकेगा:) परन्तु जहां पांच वर्ष की अवधि उत्तर प्रदेश नगरीय नियोजन और विकास (संशोधन) अधिनियम, 1997 के प्रारंभ होने से पूर्व समाप्त हो गई हो या जहां पांच वर्ष की अवधि ऐसे प्रारंभ होने के पश्चात एक वर्ष के भीतर समाप्त हो जाती है, वहां प्रभार ऐसे प्रारंभ होने की तिथि से एक वर्ष की अवधि के पश्चात वसूल किया जा सकेगा।

(5) ऐसे जब्तीकरण और पुनः प्रवेश पर, पट्टेदार द्वारा ऐसी भूमि के लिए भुगतान किया गया प्रीमियम, उस पट्टे के अंतर्गत पट्टाकर्ता को देय राशि, यदि कोई हो, और प्रशासनिक व्ययों के लिए प्रीमियम के 5 प्रतिशत के बराबर राशि घटाने के पश्चात, बिना किसी ब्याज के वापस किया जाएगा। (6) उपधारा (4) के अधीन किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, उसके ज्ञान की तारीख से 30 दिन के भीतर जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील कर सकेगा, जिसका निर्णय अंतिम होगा।

(7) पट्टे के जब्तीकरण के पश्चात पुनः प्राप्त भूमि का निपटान उपधारा (1) और (2) के उपबंधों के अनुसार किया जा सकेगा।

(2) विकास प्राधिकरण– धारा 3. विकास क्षेत्रों की घोषणा–यदि राज्य सरकार की राय में राज्य के भीतर किसी क्षेत्र को योजना के अनुसार विकसित करने की आवश्यकता है तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा उस क्षेत्र को विकास क्षेत्र घोषित कर सकती है।

धारा 4. विकास प्राधिकरण–(1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए किसी विकास क्षेत्र के लिए विकास प्राधिकरण कहलाने वाले प्राधिकरण का गठन कर सकेगी।

(2) प्राधिकरण, उक्त अधिसूचना में दिए गए नाम से एक निगमित निकाय होगा, जिसका शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुहर होगी, जिसमें चल और अचल दोनों प्रकार की सम्पत्ति अर्जित करने, धारण करने और व्ययन करने तथा संविदा करने की शक्ति होगी और वह उक्त नाम से वाद लाएगा और उस पर वाद लाया जाएगा।

(3) किसी विकास क्षेत्र के संबंध में प्राधिकरण, जिसमें उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम में परिभाषित किसी शहर का पूरा या उसका कोई भाग सम्मिलित है। 1959) में निम्नलिखित सदस्य शामिल होंगे, अर्थात–

क–अध्यक्ष, जिसे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा:
ख– उपाध्यक्ष, जिसे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा
ग राज्य सरकार का सचिव, जो उस विभाग का प्रभारी होगा जिसमें विकास प्राधिकरणों से संबंधित कार्य फिलहाल स्थानांतरित किया गया है, पदेन:),
घ राज्य सरकार का सचिव, जो वित्त विभाग का प्रभारी होगा, पदेन।
1 मुख्य नगर एवं ग्राम नियोजक, उत्तर प्रदेश पदेन:
2 एफ उत्तर प्रदेश जलापूर्ति एवं सीवरेज अधिनियम, 1975 के अधीन स्थापित जल निगम के प्रबंध निदेशक। पदेन,
3 मुख्य नगर अधिकारी, पदेन:
4 प्रत्येक जिले का जिला मजिस्ट्रेट जिसका कोई भाग विकास क्षेत्र में सम्मिलित है पदेन:
5 उक्त शहर के लिए नगर महापालिका की सभाओं द्वारा अपने में से निर्वाचित किए जाने वाले चार सदस्य,
परन्तु ऐसा कोई सदस्य जैसे ही नगर निगम का सभासद नहीं रह जाता है, वैसे ही वह पद धारण नहीं कर सकेगा–
जे ऐसे अन्य सदस्य जो तीन से अनधिक होंगे, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा नामित किया जा सकेगा।
(4) उपाध्यक्ष की नियुक्ति पूर्णकालिक होगी।
(5) उपाध्यक्ष प्राधिकरण की निधियों से ऐसे वेतन और भत्ते प्राप्त करने का हकदार होगा तथा ऐसी सेवा शर्तों द्वारा शासित होगा, जो राज्य सरकार के इस संबंध में सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित की जा सकती हैं।
(6) उपधारा (3) के खंड (ग), खंड (घ), खंड (ङ) या खंड (च) में निर्दिष्ट सदस्य प्राधिकरण की बैठक में स्वयं उपस्थित होने के बजाय, खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट सदस्य की स्थिति में विभाग में उप सचिव के पद से नीचे का नहीं तथा खंड (ङ) में निर्दिष्ट सदस्य की स्थिति में नगर नियोजक के पद से नीचे का नहीं तथा खंड (च) में निर्दिष्ट सदस्य की स्थिति में अधीक्षण अभियंता के पद से नीचे का नहीं, किसी अधिकारी को बैठक में उपस्थित होने के लिए प्रतिनियुक्त कर सकेगा। इस प्रकार प्रतिनियुक्त अधिकारी को बैठक की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होगा तथा उसे मत देने का भी अधिकार होगा। (7) उप–धारा (3) में उल्लिखित विकास क्षेत्र के अलावा किसी अन्य विकास क्षेत्र के संबंध में प्राधिकरण में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा कम से कम पांच और अधिक से अधिक ग्यारह ऐसे अन्य सदस्य होंगे, जिनमें विकास क्षेत्र में प्रत्येक क्षेत्राधिकार रखने वाले नगरपालिका बोर्डों और अधिसूचित क्षेत्र समितियों का कम से कम एक सदस्य शामिल होगा, जो ऐसी अवधि के लिए और ऐसे नियमों और शर्तों पर पद धारण करेंगे, जो इस संबंध में राज्य सरकार के सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित किए जा सकते हैं।
बशर्ते कि प्राधिकरण का उपाध्यक्ष या पदेन सदस्य के अलावा कोई अन्य सदस्य किसी भी समय राज्य सरकार को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लिखित रूप में अपना पद त्याग सकेगा और ऐसा त्यागपत्र स्वीकार किए जाने पर यह समझा जाएगा कि उसने अपना पद रिक्त कर दिया है।
(8) प्राधिकरण का कोई कार्य या कार्यवाही प्राधिकरण में किसी रिक्ति या उसके गठन में किसी दोष के कारण अवैध नहीं होगी।
धारा 7. प्राधिकरण के उद्देश्य–प्राधिकरण के उद्देश्य विकास क्षेत्र के विकास को योजना के अनुसार बढ़ावा देना और सुरक्षित करना होगा और उस प्रयोजन के लिए प्राधिकरण को भूमि और अन्य संपत्ति अर्जित करने, धारण करने, प्रबंधित करने और निपटाने, भवन निर्माण, इंजीनियरिंग, खनन और अन्य कार्य करने, जल और बिजली की आपूर्ति के संबंध में कार्य करने, मलजल का निपटान करने और अन्य सेवाओं और सुविधाओं को प्रदान करने और बनाए रखने और सामान्य रूप से ऐसे विकास के प्रयोजनों और उसके आनुषंगिक प्रयोजनों के लिए आवश्यक या समीचीन कुछ भी करने की शक्ति होगीरू
बशर्ते कि इस अधिनियम में जैसा प्रावधान किया गया है, उसके सिवाय इस अधिनियम में निहित किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह प्राधिकरण द्वारा तत्समय प्रवृत्त किसी कानून की अवहेलना को अधिकृत करती है।
(3) सलाहकार परिषद– (1) राज्य सरकार, यदि वह ठीक समझे, मास्टर प्लान तैयार करने तथा विकास की योजना से संबंधित या इस अधिनियम के प्रशासन से उत्पन्न या इसके संबंध में ऐसे अन्य मामलों पर प्राधिकरण को सलाह देने के प्रयोजन के लिए एक सलाहकार परिषद का गठन कर सकेगी, जो प्राधिकरण द्वारा उसे निर्दिष्ट किए जाएं।
(2) धारा 4 की उपधारा (3) में विकास क्षेत्र के संबंध में सलाहकार परिषद में निम्नलिखित सदस्य शामिल होंगे, अर्थात–
(क) प्राधिकरण का पदेन अध्यक्ष, जो अध्यक्ष होगा।
(ख) मुख्य नगर एवं ग्राम नियोजक, उत्तर प्रदेश तथा मुख्य अभियंता, स्थानीय स्वशासन अभियंत्रण विभाग, उत्तर प्रदेश, पदेन:
(ग) निदेशक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, उत्तर प्रदेश, या उनके द्वारा नामित व्यक्ति जो उप निदेशक के पद से नीचे का नहीं होगा, पदेन:

(घ) विकास क्षेत्र की सीमाओं के भीतर अधिकार क्षेत्र रखने वाले स्थानीय प्राधिकारियों के चार प्रतिनिधि, जो अपने सदस्यों द्वारा अपने में से चुने जाएंगे:
(ङ) परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश, या उनके द्वारा नामित व्यक्ति जो उप परिवहन आयुक्त के पद से नीचे का नहीं होगा, पदेन:
(च) अध्यक्ष, राज्य विद्युत बोर्ड, उत्तर प्रदेश या उनके द्वारा नामित व्यक्ति, पदेन:
(छ) लोक सभा और राज्य विधान सभा के सभी सदस्य जिनके निर्वाचन क्षेत्रों में विकास क्षेत्र का कोई भाग शामिल है:
(ज) राज्य सभा और राज्य विधान परिषद के सभी सदस्य जिनका निवास विकास क्षेत्र में है:
(i) राज्य सरकार द्वारा नामित तीन सदस्य, जिनमें से एक श्रम के हित का और दूसरा उद्योग के हित का प्रतिनिधित्व करेगा विकास क्षेत्र में वाणिज्य।
(3) उपधारा (2) के खंड (एच) के प्रयोजन के लिए, राज्य सभा या राज्य विधान परिषद के सदस्य का निवास स्थान वह माना जाएगा जो ऐसे सदस्य के रूप में उसके निर्वाचन या नामांकन की अधिसूचना में उल्लिखित है।
उपधारा (2) के खंड (डी) के तहत निर्वाचित सदस्य परिषद के लिए अपने निर्वाचन की तारीख से तीन वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेगा और पुनः निर्वाचन के लिए पात्र होगा:
बशर्ते कि ऐसा कार्यकाल उस समय समाप्त हो जाएगा जब सदस्य उस स्थानीय निकाय का सदस्य नहीं रह जाता है जहां से वह निर्वाचित हुआ था।
उपधारा (2) में उल्लिखित विकास क्षेत्र के अलावा किसी अन्य विकास क्षेत्र के संबंध में सलाहकार परिषद, यदि कोई हो, ऐसे सदस्यों से मिलकर बनेगी जिन्हें राज्य सरकार उस संबंध में सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित कर सकती है।
सलाहकार परिषद), अध्यक्ष द्वारा बुलाए जाने पर बैठक करेगीरू बशर्ते कि ऐसी बैठक वर्ष में कम से कम दो बार आयोजित की जाएगी।
(4) नजूल भूमि– (1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा तथा ऐसी शर्तों पर, जिन पर उस सरकार और प्राधिकरण के बीच सहमति हो, राज्य में निहित विकास क्षेत्र में सभी या कोई विकसित और अविकसित भूमि (जिसे आगे श्नजूल भूमिश के रूप में जाना जाएगा और संदर्भित किया जाएगा) को अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार विकास के प्रयोजन के लिए प्राधिकरण के निपटान में दे सकेगी,
(2) उप–धारा (1) के तहत प्राधिकरण के निपटान में किसी नजूल भूमि को रखे जाने के बाद, प्राधिकरण के नियंत्रण और पर्यवेक्षण के तहत या उसके द्वारा ऐसी किसी भी भूमि का विकास नहीं किया जाएगा।
(3) प्राधिकरण द्वारा या उसके नियंत्रण और पर्यवेक्षण के तहत ऐसी किसी भी नजूल भूमि को विकसित किए जाने के बाद, प्राधिकरण द्वारा उस संबंध में राज्य सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार उस पर कार्रवाई की जाएगी।
(4) यदि उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के निपटान में रखी गई कोई नजूल भूमि राज्य सरकार द्वारा तत्पश्चात् किसी भी समय अपेक्षित हो, तो प्राधिकरण राजपत्र में अधिसूचना द्वारा उसे उस सरकार के निपटान में ऐसे निबंधनों और शर्तों पर प्रतिस्थापित कर देगा, जिन पर उस सरकार और प्राधिकरण के बीच सहमति हो।
प्रश्न न0 10– निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–
उत्तर– (1) नगरपालिका के विघटन का परिणाम –जहां कोई नगरपालिका धारा 30 के अधीन विघटित हो जाती है, वहां निम्नलिखित परिणाम होंगे:
(ए)नगरपालिका के अध्यक्ष सहित सभी सदस्य, आदेश में निर्दिष्ट तिथि को अपने पद छोड़ देंगे, किन्तु इससे उनके पुनः निर्वाचन या पुनः नामांकन की पात्रता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा;
(बी) नई नगरपालिका के गठन तक –
(i) नगरपालिका, उसके अध्यक्ष और समितियों की सभी शक्तियां, कृत्य और कर्तव्य ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों में निहित होंगे तथा उनके द्वारा प्रयोग, पालन और निर्वहन किए जाएंगे जिन्हें राज्य सरकार उस निमित्त नियुक्त करे और ऐसा व्यक्ति या व्यक्ति, जैसा भी अवसर अपेक्षित हो, विधि के अनुसार नगरपालिका, अध्यक्ष या समिति समझे जाएंगे;
(ii) ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों का ऐसा वेतन और भत्ते, जो राज्य सरकार सामान्य या विशेष आदेश द्वारा उस निमित्त नियत करे, नगरपालिका निधि से संदत्त किए जाएंगे;
(iii) राज्य सरकार, समय–समय पर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के किसी उपबंध को उसके सार पर प्रभाव डाले बिना, अनुकूलित करने, परिवर्तित करने या उपांतरित करने के उपबंधों सहित ऐसे आनुषंगिक या पारिणामिक उपबंध कर सकेगी जो उसे इस धारा के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों।,
(2) 30. राज्य सरकार की नगरपालिका को भंग करने की शक्ति.– यदि किसी समय राज्य सरकार को यह विश्वास हो जाए कि कोई नगरपालिका इस अधिनियम या किसी अन्य समय प्रवृत्त विधि द्वारा या उसके अधीन उस पर अधिरोपित कर्तव्यों के पालन में लगातार चूक कर रही है या अपनी शक्तियों का एक से अधिक बार अतिक्रमण या

दुरुपयोग कर रही है, तो वह नगरपालिका को यह कारण बताने का उचित अवसर देने के पश्चात कि ऐसा आदेश क्यों न दिया जाए, राजपत्र में कारणों सहित प्रकाशित आदेश द्वारा नगरपालिका को भंग कर सकती है।

(3) नगरपालिका के कर्तव्य– (1) प्रत्येक नगरपालिका का यह कर्तव्य होगा कि वह नगरपालिका क्षेत्र के भीतर निम्नलिखित के लिए युक्तिसंगत प्रावधान करे–,

(a) सार्वजनिक सड़कों और स्थानों को रोशन करना;

(b) सार्वजनिक सड़कों और स्थानों को पानी देना;

(bb) नगरपालिका का सर्वेक्षण करना और सीमा चिह्न लगाना;

(c) सार्वजनिक सड़कों, स्थानों और नालियों की सफाई करना, हानिकारक वनस्पतियों को हटाना और सभी सार्वजनिक उपद्रवों को कम करना;

(d) आपत्तिजनक, खतरनाक या अप्रिय व्यापार, व्यवसाय या प्रथाओं को विनियमित करना;

आवारा कुत्तों और खतरनाक जानवरों को रोकना, हटाना या नष्ट करना;

(dd) सार्वजनिक सुरक्षा, स्वास्थ्य या सुविधा के आधार पर सड़कों या सार्वजनिक स्थानों पर अवांछनीय अवरोधों और उभारों को हटाना;

(e) खतरनाक इमारतों या स्थानों को सुरक्षित करना या हटाना;

(f) मृतकों के निपटान के लिए स्थानों का अधिग्रहण, रखरखाव, परिवर्तन और विनियमन करना और पुलिस से लिखित रूप में यह सुनिश्चित करने के बाद कि ऐसा करने में कोई आपत्ति नहीं है, लावारिस शवों के निपटान की व्यवस्था करना,;

(g) सार्वजनिक सड़कों, पुलियों, बाजार शौचालयों, शौचालयों, मूत्रालयों, नालियों, जल निकासी कार्यों और सीवरेज कार्यों का निर्माण, परिवर्तन और रखरखाव करना;

(gg) अस्वस्थ बस्तियों को पुनः प्राप्त करना;,

(hh) सड़क के किनारे और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर वृक्ष लगाना और उनका रखरखाव करना;

(i) घरेलू, औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जलापूर्ति प्रदान करना;

(ii) शुद्ध और स्वास्थ्यवर्धक जल की पर्याप्त आपूर्ति प्रदान करना, जहां निवासियों का स्वास्थ्य मौजूदा आपूर्ति की अपर्याप्तता या अस्वस्थता के कारण खतरे में है, मानव उपभोग के लिए उपयोग किए जाने वाले जल को प्रदूषित होने से बचाना और प्रदूषित जल को इस प्रकार उपयोग किए जाने से रोकना।

(j) जल आपूर्ति के किसी अन्य स्रोत के अतिरिक्त, सार्वजनिक कुओं, यदि कोई हो, को कार्यशील स्थिति में बनाए रखना, उनके जल को प्रदूषण से बचाना तथा उसे मानव उपभोग के लिए उपयुक्त बनाए रखना;

(jj) जन्म और मृत्यु का पंजीकरण करना;

(k) सार्वजनिक टीकाकरण की प्रणाली स्थापित करना और बनाए रखना;

(l) सार्वजनिक अस्पतालों और औषधालयों की स्थापना करना और बनाए रखना या उनका समर्थन करना, तथा सार्वजनिक चिकित्सा सहायता प्रदान करना;

(m) प्रसूति केंद्रों तथा बाल कल्याण और जन्म नियंत्रण क्लीनिकों की स्थापना करना, बनाए रखना और उनकी सहायता करना तथा जनसंख्या नियंत्रण, परिवार कल्याण और छोटे परिवार के मानदंडों को बढ़ावा देना;

(mm) पशु चिकित्सा अस्पतालों का रखरखाव करना या उनके रखरखाव में योगदान देना;

(n) शारीरिक संस्कृति के संस्थानों की स्थापना करना और बनाए रखना या उन्हें सहायता प्रदान करना,

(nn) प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना करना और बनाए रखना;

(o) आग बुझाने में सहायता प्रदान करना तथा आग लगने पर जान–माल की रक्षा करना;

(p) नगर पालिका के प्रबंधन में निहित या उसे सौंपी गई संपत्ति के मूल्य का रखरखाव करना और उसका विकास करना;

(q)) बोर्ड के वित्त को संतोषजनक स्थिति में बनाए रखना तथा उसके दायित्वों को पूरा करना;

(qq) आधिकारिक पत्रों पर त्वरित ध्यान देना तथा ऐसे विवरण, विवरण और रिपोर्ट तैयार करना, जिन्हें राज्य सरकार, बोर्ड से प्रस्तुत करने की अपेक्षा करती है; तथा

(r) कानून द्वारा उस पर लगाए गए किसी दायित्व को पूरा करना।

(s) चमड़े के कारखानों को विनियमित करना;

(t) पार्किंग स्थलों, बस स्टॉप और सार्वजनिक सुविधाओं का निर्माण और रखरखाव;

(u) शहरी वानिकी और पारिस्थितिकी पहलुओं को बढ़ावा देना तथा पर्यावरण की सुरक्षा;

(v) विकलांगों और मानसिक रूप से मंद लोगों सहित समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा करना;

(w) सांस्कृतिक, शैक्षिक और सौंदर्य संबंधी पहलुओं को बढ़ावा देना;

(x) पशु बाड़ों का निर्माण और रखरखाव करना तथा पशुओं के प्रति क्रूरता को रोकना;

(y) गंदी बस्तियों का सुधार और उन्नयन;

(z) शहरी गरीबी उन्मूलन;

(zz) उद्यान, सार्वजनिक पार्क और खेल के मैदान जैसी शहरी सुख–सुविधाएं और सुविधाएं उपलब्ध कराना।

(4) नगरपालिका के कर्तव्य– (1) प्रत्येक नगरपालिका, जब तक धारा 39 के अधीन पहले ही विघटित न कर दी जाए, अपनी प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष तक बनी रहेगी, इससे अधिक नहीं।

(2)किसी नगर पालिका के गठन के लिए चुनाव निम्नलिखित तिथियों में सम्पन्न किया जाएगा –

(ए)उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति से पूर्व; या

(बी)इसके विघटन की तारीख से छह माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व–

परन्तु जहां विघटित नगरपालिका के बने रहने की शेष अवधि छह मास से कम है, वहां ऐसी अवधि के लिए नगरपालिका का गठन करने के लिए इस उपधारा के अधीन कोई निर्वाचन कराना आवश्यक नहीं होगा।

(3) किसी नगरपालिका के अवधि की समाप्ति के पूर्व उसके विघटन पर गठित नगरपालिका केवल उस अवधि के शेष भाग के लिए बनी रहेगी जिसके लिए विघटित नगरपालिका उपधारा (1) के अधीन बनी रहती यदि वह इस प्रकार विघटित न हुई होती।, ख्उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 12, 1994 द्वारा प्रतिस्थापित।,

(4) इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, जहां अपरिहार्य परिस्थितियों या लोकहित में किसी नगर पालिका के कार्यकाल की समाप्ति के पूर्व उसका गठन करने के लिए चुनाव कराना साध्य न हो, वहां ऐसी नगर पालिका के सम्यक् गठन तक नगर पालिका की समस्त शक्तियों, कृत्यों और कर्तव्यों का प्रयोग और पालन जिला मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस निमित्त नियुक्त उप–कलेक्टर से अनिम्न पद के राजपत्रित अधिकारी द्वारा किया जाएगा और ऐसा जिला मजिस्ट्रेट या अधिकारी प्रशासक कहलाएगा और ऐसा प्रशासक विधितः नगर पालिका, अध्यक्ष या समिति समझा जाएगा, जैसा भी अवसर अपेक्षित हो।, ख्उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 23, 2005 द्वारा अन्तःस्थापित। उत्तराखंड संशोधन धारा 10–ए के अंत में एक नई उपधारा जोड़ी जाएगी, अर्थात–

(4) इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान में निहित किसी भी विपरीत बात के बावजूद, जहां अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण या सार्वजनिक हित में, इसकी अवधि की समाप्ति से पहले नगर पालिका परिषद / नगर पंचायत का गठन करने के लिए चुनाव कराना व्यावहारिक नहीं है, तब ऐसी नगर पालिका परिषद / नगर पंचायत के उचित गठन तक, नगर पालिका परिषद /नगर पंचायत की सभी शक्तियों, कार्यों और कर्तव्यों का प्रयोग, पालन और निर्वहन जिला मजिस्ट्रेट या उप–मंडल मजिस्ट्रेट के पद से नीचे नहीं ऐसे राजपत्रित अधिकारी द्वारा किया जाएगा, जिसे जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस संबंध में नियुक्त किया जाएगा और ऐसा जिला मजिस्ट्रेट या ऐसा अधिकारी कानून में अध्यक्ष / अध्यक्ष या समिति माना जाएगा, जैसा कि अवसर की आवश्यकता हो सकती है– परन्तु इस धारा के अधीन नियुक्त प्रशासक का कार्यकाल छह माह से अधिक या नये बोर्ड के गठन तक नहीं होगा।, उत्तराखंड अधिनियम संख्या 3, 2008 द्वारा अंतःस्थापित।

LL.B.-6th Sem. Paper-IV International Organisation

प्रश्न न0 1– उन कारणों तथा घटनाओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिये जिनके कारण संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई।

उत्तर– बीसवीं शताब्दी में दो विध्वन्सकारी विश्व युद्ध हुए। प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई। राष्ट्रसंघ का मुख्य उद्देश्य विश्व में शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखना था.। राष्ट्रसंघ अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहा। राष्ट्रसंघ की असफलता का मुख्य प्रमाण द्वितीय विश्वयुद्ध के विध्वन्सकारी प्रभावों ने राष्ट्रों को फिर एक बार विवश किया कि वह एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना करे जिससे उनके पारस्परिक विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल किया जा सके तथा विश्व युद्ध में शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित की जा सके। अतः युद्ध के दौरान अधिकांश महान् राष्ट्रों ने इस दिशा में प्रयास आरम्भ कर दिये थे। उनके अधक प्रयलों के परिणामस्वरूप 26 जनवरी, 1945 को सैन फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्र चार्टर पर 51 राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किए। तत्पश्चात् निर्धारित राष्ट्रों को सरकारों ने इसका अनुसमर्थन 24 अक्टूबर, 1945 तक कर दिया, अतः 24 अक्टूबर, 1945 को विधियत संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हो गई। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि युद्ध के दौरान ही राष्ट्रों ने इस दिशा में प्रयास कर दिये थे। इन प्रयासों तथा घटनाओं का अध्ययन हम निम्मलिखित शीर्षकों में करेंगे–

(1) सेंट जेम्स के महल की घोषणा (The Declaration of St- James's Palace, June 12, 1941)–जून, 1941 तक लन्दन लगभग 9 निष्कासित देशों का गृह बन चुका था। ग्रीक, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया, लग्जमवर्ग, नीदरलैण्ड, नार्वे, पोलैंड, यूगोस्लोविया की निष्कासित सरकार के प्रतिनिधि तथा ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका के प्रतिनिधि तथा फ्रांस के जनरल द गाल लन्दन के विख्यात सेंट जेम्स के महल में मिले तथा 12 जून, 1941 को उन्होंने एक घोषणा पर हस्ताक्षर किये जिससे उन्होंने शांति स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की।

(2) ऐटलांटिक चार्टर (The Atlantic Charter August 14, 1941)–सेन्ट जेम्स के महल की घोषणा के बाद दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना 14 अगस्त, 1941 की एटलांटिक चार्टर थी। यह विश्व के दो महान राजनीतिज्ञों ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री, विन्सटन चर्चिल तथा अमेरिका के राष्ट्रपति फ्रेन्कलिन रूजवेल्ट का मिलन था। ये दोनों राजनीतिज्ञ ऐटलांटिक महासागर पर एक जहान में मिले थे। इसलिए जिस चार्टर पर उन्होंने हस्ताक्षर किये उसे 'ऐटलांटिक चार्टरश कहते हैं। इस चार्टर में उन्होंने नाजीवाद को समाप्त करने का संकल्प लिया तथा राज्यों की समानता, सार्वभौमिक शान्ति, सामूहिक सहयोग, विजय द्वारा प्रदेशों के अधिग्रहण पर निषेध आदि के सिद्धान्तों के प्रति आस्था प्रकट को।

(3) संयुक्त राष्ट्र घोषण्णा (The United Nations Declaration] Jan. 1, 1942)–तीसरी महत्वपूर्ण घटना संयुक्त राष्ट्र की घोषणा थी जिस पर अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट, ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री चर्चिल, रूस के मैक्जिम लिट्वीनीय तथा चीन के टी. वी. सुंग ने जनवरी 1, 1942 को हस्ताक्षर किये। तत्पश्चात् 22 देशों के प्रतिनिधियों ने भी इस पर हस्ताक्षर किये। प्रत्येक सरकार ने सहयोग करने का वचन दिया तथा यह निश्चय किया कि अलग से शत्रु के साथ कोई विराम–सन्धि या सन्धि नहीं करेंगे। यह घोषणा बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें सर्वप्रथम 'संयुक्त राष्ट्र' शब्दों का प्रयोग हुआ तथा 'संयुक्त राष्ट्र' की घोषणा पर हस्ताक्षर किये थे, उन्हें भी संयुक्त राष्ट्र का मौलिक सदस्य मान लिया गया।

(4) मास्को–घोषणा (The Moscow Declaration, Oct. 30, 1943)–30 अक्टूबर, 1943 को ब्रिटेन, अमेरिका, रूप तथा चीन के प्रतिनिधि मास्को–सम्मेलन में एकत्रित हुए तथा उन्होंने एक घोषणा पर हस्ताक्षर किये, जिसे मास्को घोषणा कहते हैं। इस घोषणा में उन्होंने शत्रु के विरुद्ध संयुक्त कार्यवाही करने का संकल्प लिया तथा ऐसी विश्व–संस्था की स्थापना पर जोर दिया जो राष्ट्रों की समानता के सिद्धान्त पर आधारित हो, सभी देशों के लिए खुली हो तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखे।

(5) तेहसन–सम्मेलन (The Techeran Conference, Dec. 1, 1943)–1 दिसम्बर, 1943 को चर्चिल, रूजवेल्ट तथा स्टालिन तेहरान में एकत्रित हुए। उन्होंने एक घोषणा पर हस्ताक्षर किया जिसमें एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया जो विश्व–शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रख सके।

(6) डम्बरटन–ओक्स–सम्मेलन, 1941– संयुक्त राष्ट्र को स्थापना के संबंध में यह सम्मेलन महत्वपूर्ण है। यह सम्मेलन दो चरणों में हुआ–पहले समय में रूस, ब्रिटेन तथा अमेरिका के प्रतिनिधियों ने भाग लियाय दूसरे चरण में चोन, ब्रिटेन तथा अमेरिका ने भाग लिया। इस सम्मेलन में भावी विश्व–संस्था की रचना कार्य, मुख्य अंग आदि के विषय में विस्तापूर्वक विचार की गई। ब्रिटेन, चीन, रूस तथा अमेरिका ने भावी संस्था का नाम संयुक्त राष्ट्र (United Nations) रखने में अपनी सहमति प्रदान कर दी।

(7) याल्टा सम्मेलन (The Yalta-Conference, Feb. 11, 1945)– डम्बर्टर ओक्स सम्मेलन के बाद अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना याल्टा सम्मेलन थी। इस सम्मेलन में ब्रिटेन से चर्चिल, अमेरिका से रूजवेल्ट तथा रूस से स्टालिन अपने विदेश मन्त्रियों तथा सैनिक अध्यक्षों के साथ एकत्रित हुए। इस सम्मेलन में भावी विश्व संस्था की स्थापना के लिये अन्तिम रूप से निश्चय किया गया। इस सम्मेलन में यह भी तय किया गया कि अगला सम्मेलन 25 अप्रैल, 1945 को सैन फ्रांसिस्को में भावी संस्था के लिए चार्टर तैयार करने के लिये होगा।

(8) सैन फ्रांसिस्को–सम्मेलन (San Francisco Conference, June 25, 1945)–सैन फ्रांसिस्को में जून 25, 1945 को अनेक राष्ट्रों का सम्मेलन लार्ड हैलीफैक्स की अध्यक्षता से हुआ। इस सम्मेलन में चार्टर के लिए मतदान हुआ तथा

अन्त में सर्वसम्मति से चार्टर स्वोकार कर लिया गया। परन्तु चार्टर फौरन ही लागू नाहीं हो गया। इसमें यह प्रावधान रखा गया था कि चार्टर तव लागू होगा जब चीन, फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका तथा रूस की सरकारें तथा अन्य हस्ताक्षर करने वाले राज्य की संस्था की बहुमत सरकारें उनका अनुसमर्थन कर देंगी। यह शर्त 24 अक्टूबर, 1945 को पूरी हो गयीय अतः उस दिन से संयुक्त राष्ट्र चार्टर लागू हो गया। सैन फ्रांसिस्को में 51 राज्यों ने हस्ताक्षर किये थे और आज संयुक्त राष्ट्र के 175 सदस्य है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र ने लगभग सार्वभौमिकता प्राप्त कर ली है। जैसा कि चार्टर की प्रस्तावना से स्पष्ट है, संयुक्त राष्ट्र की स्थापना का मुख्य उद्देश्य भावी पीढ़ियों को युद्ध के प्रकोप से बचाना था ("to save the succeding generations from the scourge of war") अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा रखने के अतिरिक्त राष्ट्रों में मित्रातापूर्ण सम्बन्धों का विकास करना, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा मानवीय क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की प्रोत्साहन देना तथा संयुक्त राष्ट्र को इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राष्ट्रों के कार्यों में समन्वय करने के लिए संयुक्त राष्ट्र को केन्द्र बनाना इसके उद्देश्य हैं।

प्रश्न न0 2– संयुक्त राष्ट्र महासभा की संरचना एवं कार्यों की विवेचना कीजिए।

उत्तर– **संयुक्त राष्ट्र महासभा की संरचना–** महासभा में संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता है। इस समय संयुक्त राष्ट्र के 175 सदस्य है। प्रत्येक सदस्य को एक वोट देने का अधिकार होता है। परन्तु यह महासभा अपने 5 प्रतिनिधियों तक ही रख सकती है (अनुच्छेद 9)।

मतदान अधिकार (Voting Rights)– चार्टर के अनुच्छेद 18 के अनुसार प्रत्येक सदस्य की एक मत देने का अधिकार होता है। महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर निर्णय महासभा के सदस्य के 2/3 बहुमत से किया जाता है। अनुच्छेद 18 के अनुसार महत्वपूर्ण प्रस्तावों में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखने के लिए सुझाव के सुरक्षा–परिषद् के गैर–स्थायी सदस्यों का निर्वाचन, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद के सदस्यों का निर्वाचन, न्यास परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन, नये राज्यों को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाना, सदस्यों के अधिकारों तथा निषेधाधिकारों को निलम्बित करना, सदस्यों को निष्कासित करना एवं ट्रस्टीशिप व्यवस्था से सम्यन्धित प्रश्न शामिल है। इसके अन्य प्रस्ताव महासभा के सदस्यों के बहुमत द्वारा निर्णीत किये जाते हैं।

प्रक्रिया–महासभा के वार्षिक अधिवेशन संयुक्त राष्ट्र के महासचिव अथवा सदस्यों के बहुमत द्वारा बुलाये जा सकते हैं (अनुच्छेद 20)। महासभा को अधिकार प्राप्त है कि यह प्रक्रिया सम्बन्धी अपने नियम स्वयं निर्मित करे (अनुच्छेद 21)। महासभा को यह भी अधिकार प्राप्त है कि यह अपने कार्यों को पूरा करने के लिए गौण अंग स्थापित कर सकती है। महासभा का कार्य महासचिव के रिपोर्ट पर बहस से प्रारम्भ होता है।

महासभा में सभी सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता है तथा प्रत्येक राज्य इसमें अपने 5 प्रतिनिधि तक भेज सकता है। अतः यह एक बड़ी सभा है। महासभा अपना कार्य मुख्यतया समितियों द्वारा करती है। महासभा की 4 प्रकार की समितियाँ हैं– (1) मुख्य समितियाँ (Main Committees), (2) प्रक्रिया सम्बन्धी समितियाँ (Procedural CommitteeS), (3) स्थायी समितियाँ (Standing Committees), तथा (4) तदर्थ समितियों (Adhoc Committees)।

महासभा को मुख्य समिति महासभा द्वारा विचारणीय प्रस्तावों के एकेन्डा आदि पर विचार करती है। यह महासभा के लिए सुझाव आदि तैयार करती है। मुख्य समितियों में प्रत्येक सदस्य को प्रतिनिधित्व का अधिकार है। महासभा की मुख्य समितियाँ निम्नलिखित हैं–(3) राजनैतिक तथा सुरक्षा समिति (इसके अतिरिक्त एक विशेष राजनैतिक समिति भी स्थापित की गई है जो पहली समिति की सहायता करती है. (2) आर्थिक एवं वित्तीय समिति, (3) सामाजिक, मानवीय एवं सांस्कृतिक समिति (4) विन्यास समिति (Trusteeship Committee including non-self Governing Territorics), (5) प्रशामनिक एवं बजट समिति तथ्य (6) कानूनी समिति।

महासभा के कार्य तथा शक्तियाँ– संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 7 को अनुस्वर महासभा संयुक्त राष्ट्र के 6 प्रमुख अंगों में से एक है। प्रो. लिओनार्ड (Prof- Leonard) ने महासभा के कार्यों तथा रक्तियों को पाँच शीर्षकों में विभाजित किया है– (1) विमर्शकारी कार्य (Deliberative Functions), (2) पर्यवेक्षण सम्बन्धी कार्य (Supervisory Functions), (3) वित्तीय कार्य (Financial Functions), (4) निर्वाचन संबंधी कार्य (Elective Functions) तथा (अ) संवैधानिक कार्य (Constitutive Functions)

(1) विमर्शकारी कार्य (Deliberative Functions)– विमर्शकारी कार्यों से तात्पर्य महासभा के उन कार्यों से है जिनके अन्तर्गत वह विचार–विमर्श करती है, अध्ययन करती है तथा अपने सुझाव पेश करती है। महासभा के विमर्शकारी कार्य तथा शक्तियाँ निम्नलिखित

(1) महासभा संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अन्तर्गत किसी भी प्रश्न पर विचा–विमर्श कर सकती है तथा अपने सुझाव संयुक्त राष्ट्र तथा सुरक्षा परिषद् को दे सकती है (अनुच्छेद 10)। परन्तु इसका एक अपवाद है। महासभा उस प्रश्न पर विचार नहीं कर सकती जिस पर उस समय सुरक्षा–परिषद् में विचार किया जा रहा है (अनुच्छेद 12)।

(2) महासभा शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने के लिए (जिनमें निशस्त्रीकरण भी शामिल है) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के सामान्य सिद्धान्तों पर विचार–विमर्श कर सकती है।(अनुच्छेद 11)।

(3) महासभा को यह अधिकार प्राप्त है कि यह सुरक्षा परिषद् का ध्यान उन परिस्थितियों की ओर आकर्षित कर सकती है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को खतरा होने की सम्भावना है (अनुच्छेद 11–3)।

(4) महासभा को यह भी अधिकार है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि उद्देश्य के लिए अध्ययन करा सकती है तथा इस विषय में अपने सुझाव पेश कर सकती है।

(5) संयुक्त राष्ट्र की महासभा को यह भी अधिकार प्राप्त है कि वह किसी ऐसी समस्याओं या परिस्थितियाँ, जिससे राष्ट्रों के सम्बन्ध खराब होने की सम्भावना होने की संभावना शांतिपूर्वक समाधान के लिए अपना सुझाव तथा ढंग प्रस्तावित कर सकती है।

उपर्युक्त शक्तियों तथा कार्यों का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि संयुक्त राष्ट्र को महासभा अत्यधिक प्रभावशाली अंग है। इसमें सन्देह नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद से महासभा के कार्यों तथा शक्तियों में निरन्तर वृद्धि हुई है तथा इसने महत्वपूर्ण कार्य किया है। परन्तु फिर भी इसको कुछ परिसीमाएँ (Limatations) हैं, वे परिसीमाएँ निम्नलिखित है–

(1) महासभा के सुझाव का प्रस्ताव राज्यों पर वन्धनकारी प्रभाव नहीं रखते। ये केवल सुझाव होते हैं। संयुक्त राष्ट्र की महासभा को विश्व–संसद कहना अनुचित होगा। क्योंकि यह संसद राज्यों के लिए विधि का निर्माण नहीं कर सकती तथा इसके प्रस्ताव एवं घोषणाएँ राज्यों पर बन्धनकारी प्रभाव नहीं डालते। परन्तु कुछ परिस्थितियों में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के प्रस्ताव तथा घोषणाएँ विधिक लक्ष्यार्थ (Legal implication) उत्पन्न कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि महासभा के प्रस्ताव सर्वसमति से पारित हों। महासभा के केवल वहीं प्रस्ताव विधिक परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं जिनमें परम्परागत अन्तर्राष्ट्रीय विधि की घोषणा की जाती है अथवा अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नये नियमों का निर्माण किया जाता है या चार्टर के प्रावधानों का निर्वबन (Interpretation) किया जाता है।

(2) महासभा की दूसरी महत्वपूर्ण परिसीमा यह है कि संयुक्त राष्ट्र सदस्य राज्यों के आन्तरिक या घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। संयुक्त राष्ट्र का यह सिद्धान्त संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2(7) में प्रतिपादित किया गया है।

(2) **पर्यवेक्षण सम्बन्धी कार्य (Supervisory Functions)–** पर्यवेक्षण कार्यों से हमारा तात्पर्य उन कार्यों से है जिनके द्वारा महासभा दूसरे अंगों तथा विशिष्ट एजेन्सियों (Specialised Agencies) पर अपना नियन्त्रण रखती है। यह अंग आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् तथा न्यास–परिषद् (Trusteeship Council) है। आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् वास्तव में महासभा के अधीनस्थ अंग के रूप में काम करती है। इसी प्रकार न्यास–परिषद् के सामाजिक क्षेत्रों से सम्बन्धित मामलों को छोड़कर और सभी मामलों पर महासभा का निषन्त्रण होता है। इसके अतिरिक्त सुरक्षा परिषद् तथा संयुक्त राष्ट्र के द्वारा मुख्य अंग मावसभा को वार्षिक रिपोर्ट प्रेषित करते हैं। महासभा उन रिपोटों पर अपना विचार–विमर्श करती है। जब महासभा का सत्र प्रारम्भ होता है तो महासभा संयुक्त राष्ट्र के महासचिव की वार्षिक रिपोर्ट पर विचार–विमर्श करती हैरू अतः महासभा संयुक्त राष्ट्र का एक ऐसा मुख्य अंग है जो अन्य अंगों पर अपना नियन्त्रण रखती है।

(3) वित्तीय कार्य–प्रो लियोनार्ड के अनुसार महासभा एक शक्तिशाली अंग है क्योंकि यह संयुक्त राष्ट्र संस्था पर वित्तीय नियन्त्रण रखती है। चार्टर के अनुच्छेद 17 के अनुसार महासभा संयुक्त राष्ट्र के बजट पर विचार–विमर्श करती है तथा उसे पारित करती है। इसके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण शक्ति यह है कि महासभा संस्था के व्यय को सदस्यों में बाँटती है अर्थात् सदस्यों की संस्था के लिए यह व्यय देना पड़ता है जो महासभा निर्धारित करती है। यह एक महत्वपूर्ण शक्ति तथा कार्य है। महासभा की आर्थिक शक्तियों से सम्बन्धित एक प्रमुख बाद संयुक्त राष्ट्र के कुछ खर्च [Certain Expenses of U-N- (1962), है। इस बाद के तथ्य तथा प्रतिपादित नियम निम्नलिखित है–

शांति के लिये संगठित होने के प्रस्ताव (न्दपजमक वित च्मंबम त्मेवसनजपवद, 1950) के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र की महासभा को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के सम्बन्ध में भी कुछ शक्तियाँ प्राप्त हो गई। इस प्रस्ताव के अन्तर्गत महासभा अपनी संकटकालीन फौजों की विराम–सन्धि के लिए अथवा शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए भेज सकती है। इस प्रस्ताब के अनतर्गत महासभा ने स्वेज नहर के संकट (Suez Crisis) में अपनी संकटकालोन फौजें (United Nations Emergence Force on UNEF) मिस में 1956 में भेजी। इसके उपरान्त 1960 में इसी प्रस्ताव के अन्तर्गत फौजें कांगो (U-N] Operation in Congo) में भेजी। रूस प्रारम्भ से हो शांति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव, 1950 का विरोध कर रहा था। उसके अनुसार यह चार्टर के प्रावधान के विरुद्ध था। अतः रूस ने कांगो तथा मिस्र में भेजी जाने वाली फौजों पर होने वाले खचों को देने से इन्कार कर दिया परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र के सम्मुख आर्थिक संकट उत्पन हो गया। अतः 1961 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से सलाहकारी मत देने को कहा। महासभा ने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से अनुच्छेद 17 के पैरा 2 को स्पष्ट करने को कहा। अनुच्छेद 17 के पैरा 2 में एक प्रावधान है कि सदस्य राज्यों के खर्चे सामान्य सभा द्वारा निधर्धारित किये जायेंगे। अप्रत्यक्ष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने शांति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव 1950 की वैधता को स्वीकार किया तथा यह स्पष्ट किया कि संस्था हर वह कार्य कर सकती है जो चार्टर द्वारा वर्जित नहीं है। न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय के बावजूद समस्या का हल नहीं हो पाया क्योंकि रूस तथा फ्रांस ने फौजों पर खर्चा देने से फिर भी इन्कार किया। अतः महासभा ने सितम्बर 1, 1965 को एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें यह कहा गया कि मिस्र तथा कांगो में भेजी जाने वाली संयुक्त राष्ट्र की फौजों के सम्बन्ध में हुए खचों में अनुच्छेद 19 को स्वगू नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद 19 के अनुसार वे सदस्य राज्य, जो संस्था द्वारा निर्धारित अपने खर्चे नहीं देते हैं उनके मतदान के अधिकार को निलम्बित किया जा सकता है। यह प्रावधान इसलिए रखा गया क्योंकि अमेरिका इस बात पर दृढ़ था कि वह रूस के मतदान के अधिकार की निलम्बित करवा देगा। इसके अतिरिक्त संस्था के आर्थिक संकट को दूर करने के लिए मेम्बरों से यह कहा गया कि उपर्युक्त फौजों को भेजे जाने वालों पर हुए खर्चों को राष्ट्र स्वैच्छिक अनुदान देकर पूरा करें।

(4) निर्वाचन सम्वन्धी कार्य– मंयुक्त राष्ट्र की सहासभा दो प्रकार के निर्वाचन सम्बन्धी कार्य सम्पादित करती है, वे निम्नलिखित हैं– (1) नये राज्यों की सदस्यता से सम्बन्धित तथा (2) दूसरे अंगों के सदस्यों के निर्वाचन सम्बन्धी।

(1) नये राज्यों की सदस्यता से सम्बन्धित निर्वाचन कार्य–संयुक्त राष्ट्र चार्टर में 'प्रवेश' (Admission) शब्द का प्रयोग किया गया। परन्तु प्रो. लिओनार्ड (Leonard) के अनुसार वास्तव में मये राज्यों का उनकी सदस्यता के लिये महासभा में चयन होता है। जब नये राज्य के प्रार्थनापत्र पर सुरक्षा परिषद् की सहमति प्राप्त हो जाती है तो महासभा उसे 2/3 उपस्थित सदस्यों के बहुमत से चयन करके संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाती है।

इसके अतिरिक्त सदस्यों की सदस्यता खोने के सम्बन्ध में महासभा को कुछ अधिकार प्राप्त हैं। इस सम्बन्ध में महासभा की निम्नलिखित अधिकार प्राप्त है–

(1) यदि किसी सदस्य के विरुद्ध सामूहिक कार्यवाही की जाती है तो सुरक्षा परिषद् की सहमति से महासभा 2/3 सदस्यों के बहुमत से उस सदस्य को निलम्बित कर सकती है।

(2) यदि कोई सदस्य संयुक्त राष्ट्र चार्टर का खुलेआम उल्लंघन करता है तो सुरक्षा–परिषद् की सहमति या सुझाव पर महासभा उपस्थित सदस्यों के 2/3 बहुमत से उस सदस्य को संस्था से निष्कासित कर सकती है।

(3) इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 19 के अनुसार यह सदस्य जो संस्था द्वारा निर्धारित अपने खर्वे नहीं देते हैं उन्हें सुरक्षा परिषद् के सुझाव तथा सहमति पर महासभा 2/3 सदस्य के द्वारा उनके मतदान के अधिकारों से निलम्बित कर सकती है।

(2) दूसरे अंगों के सदस्यों के निर्वाचन सम्बन्धी कार्य– इस सम्बन्ध में महासभा निम्नलिखित कार्य सम्पादित करती है–

(1) यह सुरक्षा–परिषद् के 10 गैर–स्थायी सदस्यों का निर्वाचन करती है।

(2) यह आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के 54 सदस्यों का चयन करती है।

(3) यह न्यास–परिषद के कुछ सदस्यों का चयन करती है।

(4) यह सुरक्षा–परिषद् के साथ मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का चयन या चुनाव करती है।5) महासभा सुरक्षा–परिषद् के सुझाव तथा सहमति के पद संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को नियुक्त करती है।

(5) संवैधानिक कार्य (Constituent Functions)–महासभा कुछ संवैधानिक कार्य श्री सम्यादित करती है। महासभा चार्टर को संशोधन में भाग लेती है। बार्टर का कोई संशोधन तभी सम्भव है जबकि संयुक्त राष्ट्र के 2/3 सदस्य उसे स्वीकार करे जिसमें 5 स्थायी सदस्यों का होना आवश्यक है तथा ये 2/3 सदस्य इसका अनुसमर्थन करें। अतः महासभा 2/3 मतों से चार्टर के संशोधन के लिये अपनी सहमति प्रदान नहीं करती, चार्टर संशोधित नहीं हो सकता। चार्टर के संशोधन के लिये यह आवश्यक है कि इस पर पाँच स्थायी सदस्यो समर्थन की सहमति के बाद उन सदस्यों को सरकारें ऐसे संशोधन का अनुसमर्थन करें।

उपर्युक शक्तियों तथा कार्यों का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि महापरिषद् संपूत राष्ट्र कर एक महत्वपूर्ण प्रमुख अंग है। संयुक्त राष्ट्र की महासभा की शक्तियाँ नवम्बर 3, 1950 शान्ति के लिए संगठित होने के लिये प्रस्ताव पारित होने से अपने चरम सीमा पर पहुँच गई। इस प्रस्ताव द्वारा महासभा को अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा के विषय में काफी शक्यिाँ प्राप्त हो गई।

प्रश्न न0 3– संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता से सम्वन्धित विधि की विवेचना कीजिये। सदस्यता के निलम्बन और निष्कासन की प्रक्रिया का उल्लेख करें।

उत्तर–सदस्यता–संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसार, निम्नलिखित दो प्रकार के हो सकते हैं–(1) मौलिक सदस्य तथा (2) अनुच्छेद 4 के अनुसार बनाये जाने वाले सदस्य। संयुक्त राष्ट्र के मौलिक सदस्य वे राज्य हैं जिन्होंने सैन फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में भाग लिया था तथा चार्टर पर हस्ताक्षर करके बाद में उसका अनुसमर्थन किया था। इसके अतिरिक्त वे भी एक मौलिक सदस्य माने जायेंगे जिन्होंने जनवरी 1, 1942 की संयुक्त राष्ट्र घोषणा पर हस्ताक्षर किया था तथा तत्पश्चात् विद्यमान चार्टर पर हस्ताक्षर करके अनुच्छेद 110 के अनुसार उसका अनुसमर्थन किया। (अनुच्छेद 3)

किसी भी राज्य को सुरक्षा परिषद् की संस्तुति पर महासभा के दो–तिहाई मत द्वारा सदस्य बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 4 में किसी राज्य को सदस्य बनाने की निम्नलिखित 5 शर्तें वर्णित की गई हैं– (1) एक राज्य होना (2) शन्तिप्रेमी होना, (3) चार्टर के उत्तरदायित्वों को स्वीकार करना, (4) चार्टर के उत्तरदायित्वों का पालन करने की इच्छा होना. (5) उन उत्तरदायित्वों को पूरा करने की क्षमता।

नये राज्यों को सदस्य बनाने में संयुक्त राष्ट्र का व्यवहार अनुच्छेद 4 में वर्णित उपर्युक्त प्रावधानों से असंगत है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्य बहुधा राज्यों को सदस्य बनाने के सम्बन्ध में मतदान देते समय अपने निजी स्वार्थ आदि की सर्वोपरि महत्व देते हैं तथा उपर्युक्त शतों के अतिरिक्त भी शर्तें लगाते हैं। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद रूस ने अपने निषेधाधिकारों (Vetoes) द्वारा नये राज्यों को सदस्य होने से रोका तथा अनुच्छेद 4 में वर्णित् शों के अतिरिक्त शर्तें लगायी। उदाहरण के लिए इटली तथा फिनलैण्ड की सदस्यता के प्रश्न पर रूस ने यह शर्त लगायी कि वह अपना मतदान तभी देगा जब बलगारिया, हंग्री तथ रूमानिया को भी सदस्य बनाया जाय, अतः संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने इस विषय में न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से 1948 में सलाहकारी माह देने के लिये कहा। महासभा ने न्यायालय के सम्मुख निम्नलिखित दो प्रश्न रखे–

(1) क्या संयुक्त राष्ट्र का कोई सदस्य मुरक्षा परिषद अथया महासभा में सदस्यता को प्रार्थना पर अपना मतदान करते समय उस पर कोई ऐसी शर्त लगा सकता है जो चार्टर में वर्णित नहो?
(2) क्या कोई सदस्य अपनी सकारात्मक महमति पर यह शर्त लगा सकता है कि कुछ दूसरे राज्य भी सदस्य बनाये जायें?
न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने अपने सलाहकारी मत [Conditions of the Membership in the U- N- 1- C- J- Rep- (1948)) में उपर्युक्त दोनों प्रश्नों में राज्यों को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाये जाने के प्रश्न पर मतदान करते समय सदस्य कोई ऐसी शर्व नहीं लगा सकते जो संयुक्त राष्ट्र चार्टर में वर्णित नहीं है तथा विरोपकर यह यह शतं नहीं लगा सफता कि कुछ और राज्य भी सदस्य बनाये जायें।
अतः न्यायालय के अनुसार चार्टर में वर्णित शर्तों को हो ध्यान में रखा जाना चाहिये तथा थाहा राजनीतिक बातों को महला दिया जाना चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के इस मत के बावजूद महाशक्तियों के निषेधाधिकार के कारण अनेक राज्यों की सदस्तया के प्रार्थनापत्र पर सुरक्षा–परिषद् अपनी सकारात्मक सहमति देने में असमर्थ रही। अतः अगला प्रश्न उदा फि क्या महासभा केवल अपने निर्णय द्वारा किसी राज्य को मंयुक्त राष्ट्र का सदस्य बना सकती है? नवम्बर 22, 1949 की महासभा ने इस प्रश्न पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने फिर सलाहकारी मत देने के लिए कहा। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने मार्च 3, 1950 के अपने सलाहकारी मत [Compe] tence of the General Assembly Regarding the Admission to the U- N- L- C- J- Reports (1950), में यह उत्तर दिया कि किसी राज्य की सदस्य बनने के लिए सुरक्षा–परिषद् तथा महासभा दोनों की सकारात्मक सन्तुति (affirmative recommendation) आवश्यक है।
इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र में किसी राष्ट्र को सदस्य के रूप में प्रवेश दिये जाने का एक ऐसा मामला है जिसका निर्णय दोनों अंगों सुरक्षा परिषद और महासभा के द्वारा किया जाता है। अनुच्छेद 4 के परिच्छेद 2 के प्रावधान से ऐसा प्रतीत होता है कि नये सदस्यों का प्रवेश केवल महासभा के द्वारा होता है. किन्तु ऐसा नहीं है। यदि सुरक्षा परिषद किसी नये राज्य के प्रवेश के पक्ष में नहीं है तो उसे कोई सिफारिश करने की आवश्यकता नहीं है, ऐसी स्थिति में महासभा नये राज्य के प्रवेश के मामले पर कोई विनिश्चय नहीं कर सकती है।
संयुक्त राष्ट्र में सदस्य बनने की शर्तें (Conditions of becoming a Member of the United Nations)– चार्टर के अनुच्छेद 4 का परिच्छेद। उन शर्तों का उल्लेख करता है, जिन्हें संयुक्त राष्ट्र का सदस्य होने के लिए राज्यों से पूरा करने की अपेक्षा की जाती है। ये शर्ते है–प्रथम, राज्य को शान्तिप्रिय होना चाहिये, दूसरा, ये राज्य सदस्य हो सकते हैं, जो चार्टर में वर्णित बाध्यताओं को स्वीकार करते हैं. और तीसरा, ये राज्य सदस्य हो सकते हैं, जो चार्टर में वर्णित बाध्यताओं को पालन करने के लिए समर्थ और इच्छुक हैं।
संयुक्त राष्ट्र के कुल सदस्यों की संख्या 193 हो गयी है। इस प्रकार इस संगठन में विश्य के अधिकतर राज्यों का प्रतिनिधित्य होता है। वास्तव में, यह संगठ की सार्वभौमिकता के लक्ष्य की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।
सदस्य का निलम्बन (Supension of a Member)– चार्टर का अनुच्छेद 5 प्रावधान करता है कि सदस्य को संयुक्त राष्ट्र में निलम्बित किया जा सकता है। इस अनुच्छेद के अनुसार सदस्य को मदस्यता के अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों का प्रयोग करने से निलम्बित किया जा सकता है, यदि सुरक्षा परिषद ने उसके विरुद्ध कोई निवारक या प्रवर्तन कार्यवाही की है। निलम्बन सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महासभा द्वारा किया जा सकता है। सदस्य का निलम्बन गैर–प्रक्रिया (non-procedural) विषय है, इसलिए यह सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के सहमति सूचक मत को शामिल करके नौ सदस्यों के सकारात्मक मत की अपेक्षा करता है। इस प्रावधान का यह तात्पर्य है कि जब किसी सदस्य को निलम्बित किया जाता है, तो वह अपने उन सभी अधिकारों से वंचित हो जाता है, जो उसे प्राप्त हैं। उदहारण के लिए, वह महासभा तथा तीन परिषदों (सुरक्षा परिषद, आर्थिक तथा सामाजिक और न्यासिता परिषद) में प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता और यह इन परिषदों के सदस्य के रूप में निर्वाचित नहीं किया जा सकता। उसे चार्टर के अनुच्छेद 31, 32 तथा 34 के अधीन सुरक्षा परिषद या महासभा का ध्यान आकृष्ट करने के लिए तथा अनुच्छेद 35 के परिच्छेद 1 के अधीन अन्य परिस्थितियों में सुरक्षा परिषद के विचार–विमर्श में भाग लेने के लिए आमात्रि नहीं किया जा सकता। लेकिन राज्य निलम्बित होने के बाद भी सदस्य बना रहता है तथा उसे सदस्य की सभी बाध्याओं को पूरा करना होता है।
सदस्य का निष्कासन (Expulsion of a Member)– चार्टर का अनुच्छेद 6 संयुक्त राष्ट्र से सदस्य के निष्कासन के सम्बन्ध में प्रावधान करता है। इसके अनुसार यदि कोई सदस्य बार–बार चार्टर के सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है, तब यह सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महासभा द्वारा निष्कासित किया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र से निष्कासन प्रवर्तन कार्यवाही (enforcement action) है क्योंकि यह कार्यवाही सम्बद्ध राज्य की इच्छा के विरुद्ध की जाती है। निष्कासन सदस्य की इच्छा के प्रतिकूल किया जाता है। चूँकि निष्कासन प्रक्रियात्मक मामला है, इसलिए यह सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के सहमति सूचक मत को शामिल करके नौ सदस्यों के सकारात्मक मत की अपेक्षा करता है। इसके लिए, अनुच्छेद 18 के परिच्छेद 2 के अनुरूप महासभा में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत की भी आवश्यकता होती है। सदस्यों निष्कासन के लिए महासभा तथा सुरक्षा परिषद दोनों का निर्णय आवश्यक है। अब तक कोई भी सदस्य संयुक्त राष्ट्र से निष्कासित नहीं किया गया है। यदि एक बार सदस्य का निष्कासन संयुक्त राष्ट्र से कर दिया जाता है, तो उसकी वही स्थिति हो जाती है. जो गैर–सदस्य राज्य की है। इस

प्रकार, निष्कासन के बाद वह उन सभी अधिकारों का प्रयोग कर सकता है, जिनका प्रयोग करने का अधिकार गैर–सदस्य राज्यों को है।

संयुक्त राष्ट्र से सदस्यता की वापसी (Withdrawal of Membership from the United Nations)–संयुक्त राष्ट्र के किसी सदस्य को चार्टर के अनुच्छेद 6 के अनुरूप निष्कासन द्वारा सदस्य की इच्छा के विरुद्ध समाप्त किया जा सकता है। किन्तु वार्टर में उस सम्भावित मामलों के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं है, जिसमें सदस्य स्वेच्छा के संयुक्त राष्ट्र से स्वयं अलग होने की इच्छा करता है। राष्ट्र संघ की प्रसंविदा में सदस्यता की वापसी के लिए प्रावधान किया गया था। सदस्य या तो दो मास की सूचना देकर अपनी सदस्यता को वापस ले सकता था, या यदि किसी सदस्य द्वारा किसी संशोधन का विरोध करने पर, या यदि उसे संशोधन अन्य प्रकार से स्वीकार्य नहीं होता था, तो इसका यह अर्थ हो सकता था कि विशेष सदस्य राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं रह गया। किन्तु चार्टर में ऐसा कोई प्रावधान नहीं किया गया है।

प्रश्न न0 4– संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद के संविधान एवं कार्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर– सुरक्षा–परिषद् की शक्तियाँ तथा कार्य– सुरक्षा–परिषद् के कार्यों तथा शक्तियों का अध्ययन निम्नलिखित चार शीर्षकों के अन्तर्गत सुविधाजनक ढंग से किया जा सकता है– (1) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखना, (2) निर्वाचन सम्बन्धी कार्य, (3) पर्यवेक्षण कार्य तथा (4) संवैधानिक कार्य।

(1) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखना– संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने की प्राथमिक जिम्मेदारी सुरक्षा–परिषद् की है (अनुच्छेद 24)। चार्टर ने इस विषय में सुरक्षा परिषद् को अनेक अधिकार प्रदान कर रखे हैं। अनुच्छेद 24 के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि सभी सदस्य राज्यों ने यह स्वीकार किया है कि सुरक्षा–परिषद् उनके एवज में कार्य करती है तथा सुरक्षा–परिषद् अपने कार्यों को चार्टर में वर्णित उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों के अनुसार करेगी। संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों ने यह संकल्प लिया है कि वे सुरक्षा–परिषद् के निर्णयों को मानेंगे तथा उनका पालन करेंगे (अनुच्छेद 25)। सुरक्षा–परिषद् को हस्तीकरण के नियन्त्रण के लिए योजना बनाना तथा उसे सदस्यों के सम्मुख प्रस्तुत करने का भी अधिकार हैं। चार्टर के अध्याय 6 में अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को शान्तिपूर्ण ढंग से निपटाने के प्रावधान है। चार्टर के अनुसार राज्यों को अपनी समस्याओं को सर्वप्रथम वार्ता, जाँच, मध्यस्थता, समझौता, विवाचन, न्यायिक निर्णय या किसी अन्य शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने चाहिये। इस विषय में सुरक्षा परिषद् भी राज्यों को सलाह दे सकती है। सुरक्षा–परिषद् किसी भी समस्या की जाँच आदि कर सकती है तथा उसके विषय में अपने सुझाव दे सकती है तथा यह सलाह दे सकती है कि वह समस्या उपर्युक्त वर्णित ढंगों में से किस बंग द्वारा सुलझायी जाय। यदि राज्य पक्षकार अपनी समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ रहते हैं तो यदि उनकी समस्याओं से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को खतरा पहुँचाने की सम्भावना रहती है तब सुरक्षा परिषद् समस्या के समाधान के लिये अपने सुझाव दे सकती है (अनुच्छेद 37)।

इसके अत्तिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय शांति के खतरे या शांति के उल्लंघन तथा आक्रमण आदि के विषय में सुरक्षा–परिषद् को अध्याय 7 के अन्तर्गत महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। सर्वप्रथम सुरक्षा–परिषद् यह निश्चित करती है कि शांति का उल्लंघन या आक्रमणकारी कार्य हुआ है और यदि वह इस निश्चय पर पहुँचती है तो वह इस समस्या के समाधान के लिए अपने सुझाव दे सकती है (अनुच्छेद 39)। अनुच्छेद 41 के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाये रखने के लिए सुरक्षा–परिषद् राज्यों को यह सुझाव दे सकती है कि वह दोषी राज्य से आर्थिक तथा अन्य प्रकार के सम्बन्धों का विच्छेद कर दे। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र को सशस्त्र सेना का प्रयोग करने का अधिकार नहीं है। परन्तु यदि अनुच्छेद 41 के अन्तर्गत की हुई कार्यवाही से समस्या का समाधान नहीं होता तो अनुच्छेद 42 के अन्तर्गत सुरक्षा–परिषद् को अधिकार है कि यह हवाई, सामुदिक या स्थल फीजों का प्रयोग कर सकती है। संक्षेप में अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा बनाये रखाने के लिये सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र द्वारा सामूहिक कार्यवाही की जाने के विषय में निर्णय ले सकती है।

चार्टर के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के सदस्य आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेनाएँ देने के लिये बाध्य है, परन्तु अनुच्छेद 43 के अनुसार ये सेनाएँ आदि विशेष समझीर्ती द्वारा दी जानी थी। दुर्भाग्यवश महाशक्तियों के आपस में संघर्ष और सहयोग के कारण यह विशेष समझौते अब तक नहीं हो पाये हैं, अतः सुरक्षा परिषद् के पास इस प्रकार की फौजें नहीं है। इसके अतिरक्त चार्टर में यह भी प्रावधान है कि सुरक्षा परिषद् की सहायता के लिए एक मिलिटरी स्टाक समिति (Military Stalk Committee) होगी जिसमें स्थायी सदस्यों के सैनिक अध्यक्ष हॅगि। महाशक्तियों में असहयोग के कारण इस प्रावधान का भी कोई महत्व नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त चार्टर में यह भी प्रावधान है कि सदस्यों का यह उत्तरदायित्व है कि वे पारस्परिक सहायता करें कि सुरक्षा–परिषद् द्वारा लिये गये निर्णयों का पालन करेंगे।

उपर्युक्त प्रावधानों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शांति तथा सुरक्षा के विषय में सुरक्षा–परिषद् को महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु महाशक्तियों के आपसी संघर्ष तथा असहयोग के कारण सुरक्षा–परिषद् इन शक्तियों का उचित प्रयोग नहीं कर पायी है। इन शक्तियों के प्रयोग में सवस बड़ी बाधा महाशक्तियों या सदस्यों द्वारा निषेधाधिकार (Veto) के अधिकार के प्रयोग से हुई है। निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण सुरक्षा–परिषद् महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेने में असमर्थ रही है।

निषेधाधिकार तथा उसका सुरक्षा–परिषद् की क्षमता पर प्रभाव (Veto and its effects on Efficiency of Security Council)– अनुच्छेद 27 के अनुसार सुरक्षा–परिषद् द्वारा सभी महत्वपूर्ण प्रस्तावों के निर्णयों के लिए नौ (9)

सकारात्मक मत आवश्यक हैं जिनमें महाशक्तियों अर्थात् स्थायी सदस्यों की सकारात्मक सहमति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इन अनुच्छेद द्वारा स्थायी सदस्यों (चीन, रूस, अमेरिका, ब्रिटेन तथा फ्रांस) को चार्टर द्वारा निषेधाधिकार प्रदान किया गया है। यह निषेधाधिकार वास्तव में इसलिये प्रदान किया गया था कि चार्टर के निर्माताओं का विचार था कि महाशक्तियाँ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखने के लिए आपस में सहयोग करेंगी तथा अपनी जिम्मेदारी निभायेंगी। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के तुरन्त बाद यह विचार गलत सिद्ध हुआ क्योंकि महाशक्तियों का आपस में संघर्ष तथा शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया। सुरक्षा–परिषद् द्वारा महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय के लिए स्थायी सदस्यों के सकारात्मक मत के प्रावधान ने एक विकट समस्या उत्पन्न कर दी है। महाशक्तियों में आपस के संघर्ष के परिणामस्वरूप बहुधा यह देखा जाता है कि कोई भी स्थायी सदस्य अपने नियेधाधिकार का प्रयोग करके अर्थात् सकारात्मक मत देकर सुरक्षा–परिषद् को निर्णय लेने में असमर्थ बना देते हैं, अतः महाशक्तियों के निपेधाधिकार ने सुरक्षा–परिषद् की क्षमता को बुरी तरह प्रभावित किया। इसके कारण सुरक्षा–परिषद् एक असमर्थ अंग हो गया है। उदाहरण के लिए 1950 में कोरिया के मामलों में प्रारम्भ में सुरक्षा–परिषद् अपना निर्णय इस कारण न ले सकी क्योंकि जिस समय कोरिया के प्रश्न पर विचार हो रहा था, सुरक्षा–परिषद् में रूस का प्रतिनिधि उपस्थित नहीं था। सुरक्षा परिषद् कोरिय के मामलों में भी कोई प्रभावशाली कार्यवाही प्रारंभ में असमर्थ हो गई। इसी प्रकार अन्य महत्वपूर्ण मामलों में भी महाशक्तियों के निपेधाधिकार के कारण सुरक्षा–परिषद् शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने की जिम्मेदारी को ठीक तरह से नहीं निभा पायी। करने 1971 का भारत–पाक संघर्ष भी इसका अच्छा उदाहरण है। पाक–संघर्ष में सुरक्षा परिषद् प्रारम्भ में कोई निर्णय इसलिये नहीं ले पाई है क्योंकि रूस में भारत के पक्ष में अपने निषेधाधिकार का प्रयोग किया, अतः निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि महाशक्तियों के निषेधाधिकार में सुरक्षा परिषद् को अपंग बना दिया है। विख्यात विधिशास्त्री जूलियस स्टोन (Jnlius Stone) ने अपनी पुस्तक 'The Legal Control of International Conflict' में लिखा है, ष्सुरक्षा परिषद् ने शान्ति की स्थापना का कार्य इस मत के साथ प्रारम्भ किया कि वह संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों को अपने निर्णयों से वाध्य कर सकती है। परन्तु व्यवहार में यह प्रत्येक स्थायी सदस्य के निषेधाधिकार द्वारा महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय लेने में अपंग हो गई।''

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखने में सुरक्षा–परिषद् का योगदान – जैसाकि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि स्थायी सदस्यों के निपेधाधिकार ने सुरक्षा–परिषद् को महत्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय लेने के सम्बन्ध में अपंग बना दिया है। कुछ विधिशास्त्रियों का मत है कि संयुक्त राष्ट्र की स्थापना से अब तक सुरक्षा–परिषद् केवल कोरिया में और यह भी आंशिक रूप से सफल रही। कोरिया में भी इसकी सफलता का कारण सुरक्षा–परिषद् में कोरिया के प्रश्न पर विचार हो रहा था। उस समय रूस का प्रतिनिधि उपस्थित नहीं था। प्रो. गुडस्पीड (Prof- Goodspeed) ने उचित ही लिखा है कि यह कहना कि संयुक्त राष्ट्र दक्षिण कोरिया पर उत्तरी कोरिया के आक्रमण को रोक सका, उचित नहीं होगा। क्योंकि वास्तव में यह कार्य अमेरिका ने सम्पादित किया था। संयुक्त राष्ट्र ने केवल अमेरिका द्वारा कार्य को अपनी सहमति तथा आज्ञा प्रदान कर दी थी। वास्तव में अमेरिकी फौजें संयुक्त राष्ट्र के नाम से कोरिया में लड़ी थीं। तत्पश्चात् जैसे ही रूस का प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद् में वापस आया इस कार्य में भी बाधा उपस्थित हो गई।

परन्तु यह कहना उचित नहीं होगा कि सुरक्षा–परिषद् ने अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाये रखने में कोई योगदान नहीं प्रदान किया है। वास्तव में कई मामलों में सुरक्षा–परिषद् ने काफी प्रभावशाली कार्य किया है। इन मामलों में इण्डोनेशिया, फिलिस्तीन, स्वेज संकट, भारत–पाक संघर्ष, कांगो, साइप्रस, अरव इजरायली संघर्ष, 1973 आदि मामले प्रमुख हैं। इन उदहारणों से यह स्पष्ट होती, है कि सुरक्षा परिषद् ने शांति तथा सुरक्षा बनाये रखने में कुछ योगदान दिया है। खाडी युद्ध (1991) में सुरक्षा परिषद् ने बड़ी ही प्रभावशाली ढंग से अपनी भूमिका अदा की है।

प्रश्न न0 5– अन्तर्राष्ट्रीय संगठन से आप क्या सकड़ाते हो? द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व इसकी प्रकृति एवं विकास पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर–आधुनिक युग में मानव सभ्यता मंक्रमकालीन अवस्था में गुजर रही है। राष्ट्र अपने अस्तित्व और विकास के लिए परस्पर निर्भर है। अस्तु वे एक–दूसरे से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखने के उद्देश्य से अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाने के लिए विवश हैं। इसके अतिरिक्त सम्प्रभुता की धारणा बहुधा राज्यों के मध्य मतभेद और युद्धका कारण बन जाती है परन्तु आधुनिक युग में परमाणु शक्ति के विकास के कारण राष्ट्र युद्ध का संकट नहीं ले सकते। इसलिये राष्ट्रों के लिये निष्कपट रूप से संगठित होकर शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान करना आवश्यक हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन इसी दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

परिभाषा (Definition)– स्वतन्त्र व सम्प्रभुता सम्पन्न राज्यों के इस औपचारिक समूह को अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की संज्ञा प्रदान की जाती है जिसका निर्माण कुछ निर्दिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के हितार्थ किया जाता है। रूप, आकार और उद्देश्य की दृष्टि में मित्र होते हुए भी लगभग सभी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का जन्म इस भावना के फलस्वरूप होता है कि मानव को एक होना चाहिये। संगठन का निर्माण करते समय राज्य सम्प्रभुता को सुरक्षित रखते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन इस प्रकार अधिराष्ट्रीय राज्य (Supernational State) में भिन्न होता है।

आर्गेनकी (Organske) के अनुसार ''अन्तर्राष्ट्रीय संगठन वहाँ स्थापित होता है जहाँ कुछ राष्ट्र संयुक्त हो जाते हैं और जहाँ उनमें से प्रत्येक यह अनुभव करता है कि एक औपचारिक संगठन के क्रियाशील होने से उसका कुछ लाभ ही होगा।''

चीवर व हैवीलैंड (Cheever and Heavyland) के शब्दों में, ''अन्तर्राष्ट्रीय संगठन राज्यों के मध्य स्थापित उस सहकारी व्यवस्था को कहते हैं जिसकी स्थापना, कुछ परस्पर लाभप्रद कार्यों को नियमित बैठकों व स्टाफ के द्वारा पूरा करने के लिये सामान्यतः एक समझौते द्वारा होती है।''

चार्ल्स लर्च (Charles Lerche) के शब्दों में, ''कुछ सामान्य उद्देश्यों के लिये संगठित किये गये राष्ट्रों के औपचारिक समूह को अन्तर्राष्ट्रीय संगठन कहते हैं। स्वरूप में भिन्नता होने पर भी उसका जन्म समान प्रेरक तत्वों से होता है तथा उनके दर्शन और संगठन में महत्त्वपूर्ण सादृश्य विद्यमान रहता है।''

अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की प्रकृति–(Nature of International Organisations)– अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के उद्देश्य सामान्यतः व्यापक किन्तु अस्पष्ट होते हैं। राष्ट्र संघ (League of Nations) का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देना और अन्तर्राष्टीय शान्ति व सुरक्षा की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना था। संयुक्त राष्ट्र (U.N.) का लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा की रक्षा करना, राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विकसित करना एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त के उद्देश्यों को प्राप्त करना था। इन उद्देश्यों को अस्पष्ट एवं गोलमाल भाषा में इसलिये व्यक्त किया जाता है जिससे कि संगठन को विश्वव्यापी समर्थन प्राप्त हो सके और सभी राष्ट्र उसकी सदस्यता प्राप्त करने के लिये उत्साह दिखायें। न्याय, स्वतन्त्रता और सुरक्षा ऐसे शब्द हैं जो विश्व के सभी देशों के नागारिकों को अच्छे लगते हैं। अतः अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के संविधानों में इसका खुलकर प्रयोग होता है। जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की सदस्यता का प्रश्न है, एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का इस रूप में सार्वभौमिक होना आवश्यक नहीं है कि विश्व के सभी राष्ट्र उसके सदस्य हीं, फिर भी उसे इस रूप में सार्वभौमिक होना चाहिये कि ये सभी महाशतियाँ जिनसे विश्व शान्ति भंग होने का भय हो उसके क्षेत्राधिकार में आती हों, क्योंकि महाशक्तियों में ष्एक दूसरे के मौलिक उद्देश्यों, हितों तथा उत्तरदायित्वों में एक स्थाई पारस्परिक समझति के अभाव में, शान्ति की रक्षा के लिये सभी संगठन कागज पर को ही सृष्टि माने जा सकते हैं तथा एक नवीन आक्रमणकारी के उत्पन्न होने के लिये मागं फिर प्रशस्त होता है।ष इन शक्तियों के अपने उद्देश्यों में विभाजित हो जाने तथा अपने आधारभूत हितों को पहचानने एवं उनमें समन्वय स्थापित करने में असफल होने का परिणाम विनाश हो सकता है और किसी भी प्रकार का संगठन आवश्यक शांति व एकता की स्थापना नहीं कर सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का विकास (Evolution of International Organisations)– अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का इतिहास आधुनिक युग की देन नहीं है इसका विचार प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। छठी तथा सात्तवीं शताब्दी से ही विद्वानों ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में अपनी आस्था प्रकट करना आरम्भ कर दिया था। इटली के कवि और दार्शनिक दाँते (1265–1312) ने एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का विचार प्रस्तुत किया जो न्याय पर आधारित हो। फ्रांस के पिये दुबोअ ने सन् 1305 में इस्लाम का सामना करने के लिये यूरोप के राजाओं का एक संघ बनाने की योजना रखी। सन् 1903 में फ्रांस के राजा हेनरी चतुर्थ ने अपने महामंत्री सली द्वारा प्रतिपादित एक योजना को स्वीकार किया। इसके अनुसार, समस्त यूरोप को 15 भागों में विभक्त कर उनका संघ बनाने की चर्चा की गई थी। आधुनिक युग में विलियन टेन, रूसी, बेथम और कान्ट आदि दार्शनिकों ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की कल्पना को अपना समर्थन प्रदान किया।

राष्ट्रीय राज्य की स्थापना के पश्चात् ही अन्तर्राष्ट्रीय राज्य–व्यवस्था को उसका आधुनिक स्वरूप प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय राज्य 16वीं व 17वीं शताब्दी में निर्मित हुए। सन् 1648 में छोटे–बड़े सब राज्यों की समाप्ति का सिद्धान्त स्वीकार किया गया। राजाओं को निरंकुशता के विरुद्ध फ्रांस की राज्य क्रान्ति हुई जिसने व्यक्तिवाद व प्रजातन्त्र का सन्देश दिया। इसका वर्णन निम्न प्रकार से है–

(1) वियना सम्मेलन (Vienna Conference)–फ्रांस की राज्य क्रांति के बाद सर्वप्रथम यूरोप में शक्ति के सन्तुलन को बनाये रखने के लिये 1815 में वियना सम्मेलन हुआ। यह प्रथम अवसर था जबकि यूरोप में इतने बड़े अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया था, जिसमें यूरोप के प्रायः सभी प्रमुख राष्ट्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। सम्मेलन के अन्तर्गत अनेक संधियों तथा समझौते के रूप में निर्णय लिये गये थे जिनके द्वारा अनेक क्षेत्रीय व्यवस्थायें की गई। कुछ सामाजिक एवं आर्थिक विषयों पर भी निर्णय लिये गये और एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का निर्माण किया गया जो कांग्रेस के रूप में अपना कार्य करती थी।

(2) यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (Concerted arrangement of Europe)– वियना सम्मेलन के अन्तर्गत निर्मित कांग्रेस ने कुछ वर्षों तक सफलतापूर्वक कार्य किया, लेकिन थोड़े हो समय के बाद आपसी स्वाधों के कारण मित्रमण्डल के सदस्यों में अत्यधिक मतभेद होने लगा। वियना कांग्रेस के बाद भी यूरोप के बड़े राष्ट्रों के मध्य शांति स्थापना के लिये तथा राजनीतिक प्रश्नों पर विचार करने के लिये समय–समय पर इसकी बैठकें होती रहीं। चूँकि यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने यूरोप में शांति बनाये रखने का उत्तरदायित्व संयुक्त रूप से अपने ऊपर लिया था, अतः इस व्यवस्था को यूरोप को संयुक्त व्यवस्था की संज्ञा दी गई। इसके अन्तर्गत 1818, 20, 21 और 22 में बड़ी शक्तियों के सम्मेलन हुए। सन् 1818 में इन शक्तियों ने अन्तर्राष्ट्रीय विधि को राष्ट्रों के सम्बन्धों का आधार बताते हुए उसके अनुसार, आचरण करने की घोषणा की। यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के पश्चात् भी यूरोप की शक्तियाँ विशेष प्रश्नों पर सम्मेलन करती रहीं। 1955 में यह सम्मेलन पेरिस में हुआ जिसमें पूर्वी प्रश्नों के समाधान के साथ–साथ

अन्तर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी विषय भी स्वीकार किये गये। इसी प्रकार, बर्लिन सम्मेलन (Berlin Conference), 1878 में पूर्वी प्रश्न और 1905, 1908 और 1909 के सम्मेलनों में क्रमशः योरक्को, आस्ट्रिया और बाल्कन युद्धों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान करने का प्रयास किया। अन्तर्राष्ट्रीय कानून पर 1899 और 1907 में हेग सम्मेलन (Hague Conference हुए जिनमें क्रमशः 20 और 44 देशों ने भाग लिया और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिये मध्यस्थ निर्वय (Arbitration) का प्रबल समर्थन किया गया।

दूसरे हेग सम्मेलन द्वारा स्थापित की गई 13 सन्धियों में 11 युद्ध के अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों पर थी। हेग के इस सम्मेलन में यह भी निश्चित किया गया कि तृतीय सम्मेलन सन् 1915 में होगा तथा प्रति 8 वें वर्ष सम्मेलन का आयोजन होता रहेगा परन्तु प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ हो जाने से तृतीय सम्मेलन नहीं हो सका और साथ ही साथ हेग व्यवस्था भी समाप्त हो गई। हेग व्यवस्था अपनी व्यापकता की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को विश्व व्यापी बनाने की दिशा में एक ठोस कदम था। इसने यह सिद्ध कर दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिये कोई भी व्यवस्था तभी सफल हो सकती है, जब वह विश्वव्यापी हो। यद्यपि हेग व्यवस्था के अन्तर्गत आयोजित सम्मेलनों ने समस्याओं का पूर्ण निराकरण नहीं किया, तथापि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के इतिहास के विकास में इन सम्मेलनों का विशेष योगदान है, क्योंकि मम्मेलनों में भाग लेने वाले राज्यों ने मध्यस्थता को स्थाई साधनों और अभिकरणों की आवश्यकता का अनुभव किया।

(3) अराजनैतिक संगठन (Non-political Organisation)—इसी समय ऐसे संगठन भी बनने लगे जो सदस्यता की दृष्टि से विश्वव्यापी थे। 1856 में अन्तर्राष्ट्रीय टेलीग्राफ यूनियन बनी और 1874 में 'यूनिवर्सल पोस्टल यूनियन'। इसी प्रकार स्वास्थ्य, व्यापारक, ट्रेडमार्क और कॉपीराइट पर भी अराजनैतिक संगठन बनान गये। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात इनमें से अधिकतर संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.) के आर्थिक व सामाजिक परपिद् से न्यायिक समझौतों के द्वारा सम्बन्धित कर दिये गये। ऐसे संगठन आज संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट समितियों की श्रेणियों में गिने जाते हैं। इनमें से अन्तर्राष्ट्रीय संघ, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा—कोप. खाद्य और कृषि संगठन, विश्व स्वास्थ्य संघ, अन्तर्राष्ट्रीय तार संघ आदि मुख्य है।

कुछ विशेष प्रयोजनार्थ संगठन गैर—सरकारी या अर्द्ध—सरकारी आधार पर भी बनाये गये अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास, जिसकी स्थापना 1863 में जेनेवा में हुई, एक ऐसी ही संगठन था। गैर—सरकारी होते हुए भी ऐसे संगठन अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को आवश्यकताओं की पूर्ति में हाथ बंटाते रहे। 1873 में स्थापित 'इन्टीट्यूट ऑफ इन्टरनेशनल लॉ और इन्टरनेशनल लॉ एसोसियेशन' दोनों ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय संगठन—राष्ट्र संघ (International Organisation-League of Nations)—राष्ट्र संघ (League of Nations)— प्रथम महायुद्ध के बाद निर्मित किया गया प्रथम राजनीतिक संगठन था। यह अन्ततोगत्वा असफल रहा परन्तु राष्ट्र परिवार में इसने युगान्तरकारी परिवर्तन किये और अन्तर्राष्ट्रीय कानून में भी अनेक सुधार और संशोधन इसके कारण हुए। सके निर्माण के तुरन्त उपरांत 16 दिसम्बर, 1920 को अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय की स्थापना हुई और अन्तर्राष्ट्रीय कानून को एक नया सहारा मिला। अमेरिका घरेलू राजनीति के दबाव के कारण राष्ट्र संघ से अलग रहा, परन्तु 1928 का पेरिस समझौता (Paris Pact) उसके नेतृत्व के परिणामस्परूप हुआ। इस समझौते के द्वारा युद्ध को अवैध घोषित किया। राष्ट्र—संघ द्वितीय विश्व युद्ध की ज्वालाओं में भस्म हो गया, परन्तु उसकी राख से एक नया विश्व संगठन बनाया गया जो आज संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के रूप में हमारे सामने है।

<u>प्रश्न न0 6—</u> अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के संगठन एवं संरचना के विषय में संक्षेप में लिखिए।

<u>उत्तर—</u> लोक व्यवस्था बनाये रखने के लिये उचित कानून तथा उसे क्रियान्वित करने के लिये संस्था का होना अनिवार्य है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून अच्छी तरह परिभाषित होने पर ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा ही सुलझाया जा सकता है। जिसे राष्ट्र द्वारा League of Nations) स्थापित किया गया था। राष्ट्र संघ की समाप्ति के बाद स्थायी न्यायलय भी समाप्त कर दिया गया और इसके स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना हुई।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का गठन—संयुक्त राष्ट्र संघ की धारा 92 में इस न्यायालय की व्यवस्था की गई है। इस धारा में यह कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य स्वतः इस न्यायालय के सदस्य होंगे। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में 15 न्यायाधीश होते हैं। सामान्य परिषद तथा सुरक्षा परिषद द्वारा इन न्यायाधीशों का निर्वाचन होता है। न्यायाधीशों की कार्या विधि 9 वर्ष होती है। न्यायालय के निर्णय न्यायाधीशों के बहुमत द्वारा लिये जाते हैं। निर्णायक मत (Casting vote) डालने का अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अध्यक्ष को होता है। न्यायालय का मुख्यालय हेग (Hague) में है, किन्तु बैठक आवश्यकता पड़ने पर कहाँ भी हो सकती है। न्यायालय एक स्वायत्त संस्था है। यह अपने प्रेसीडेन्ट तथा वाइस प्रेसीडेन्ट चुनती है और रजिस्ट्रार की नियुक्ति करती है। न्यायाधीश इस न्यायालय के न्यायाधीश का चुनाव सामान्य सभा तथा सुरक्षा परिषद करती है।

वेतन—न्यायाधीशों को वेतन दिया जाता है तथा उनसे आशा की जाती है कि किसी भी राजनैतिक अथवा प्रशासनिक कार्य में भाग न लें जिसने कि उनकी कार्यक्षमता पर विपरीत प्रदभाव पड़े।

तदर्थ न्यायाधीश (Adhoc Judges)— न्यायालय के परिनियमों में तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति की भी व्यवस्था है। ये न्यायाधीश भी वैतनिक होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को तीन प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त है—

(1) ऐच्छिक (Voluntary) (2) अनिवार्य (Compulsory) (3) परामर्शी (Advsory)

1. ऐच्छिक क्षेत्राधिकार (Voluntary jurisdiction)– अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के इस प्रकार के क्षेत्राधिकार के अन्दर्गत के सभी वाद आ जाते हैं जिनको कि सम्बन्धित पक्षकार न्यायालय के समक्ष न्याय हेतु लाते हैं।

न्यायालय के परिनियम के अनुच्छेद 36 में व्यवस्था है कि उन सभी विवादों पर न्यायालय का क्षेत्राधिकार होगा जिसे कि सम्बन्धित पक्षकार परस्पर अनुबन्ध द्वारा न्यायालय को निर्णयार्थ सौंपते हैं।

किसी विवादग्रस्त मामले को दोनों पक्षकार अनुबन्ध द्वारा न्यायालयों को सौंप सकते हैं अथवा विवाद से सम्बन्धित एक पक्षकार सौंप सकता है और अन्य पक्षकार उस पर अपनी सहमति व्यक्त कर सकते हैं।

2. अनिवार्य क्षेत्राधिकार (Compulsory jurisdiction) – वे राष्ट्र जो वर्तमान संविधि के पक्षकार है किसी समय भी यह घोषणा कर सकते हैं कि वे न्यायालय के क्षेत्राधिकार को अनिवार्य स्वतः सिद्ध तथा उसी कर्तव्य को स्वीकार करने वाले किसी अन्य राज्य के सम्बन्ध में किसी 'विशेष' स्वीकारोक्ति के बिना निम्नलिखित से सम्बन्धित सब वैधिक झगड़ों में स्वीकार करते हैं–

(अ) किसी सन्धि की व्याख्या

(आ) अन्तर्राष्ट्रीय विधि का कोई प्रश्न

(इ) किसी तथ्य का अस्तित्व जिसके सिद्ध होने पर किसी अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्य का उल्लंघन समझा जाये।

(ई) किसी अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्य के उल्लंघन पर क्षतिपूर्ति का रूप तथा परिणाम।

राज्यों द्वारा की गई उपरोक्त घोषणा स्वीकारोक्ति द्वारा अनिवार्य क्षेत्राधिकार की व्यवस्था करती है क्योंकि न्यायालय क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल उसी दशा में कर सकता है जब झगड़े के दोनों पक्षकारों ने घोषणा की हो। जैसा कि अनुच्छेद 36 के खण्ड 2 में उपविन्धत है। इस समविधि में यह उपबन्धित है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय की संविधि के पुराने वैकल्पिक वाक्य खण्ड अन्तर्गत की गई घोषणाओं से यह समसा जायेगा कि वर्तमान न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्रधिकार की स्वीकृति कर ली गई है।

न्यायालय का महत्व– न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून के क्रमिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके महत्व तथा योगदान का संक्षिप्त उल्लेख निम्नवत है–

1. किसी सन्धि या अभिसमय की अनुपस्थिति में, किसी विवाद पर निर्णय देने के लिये न्यायालय सभ्य राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत कानून के सामान्य सिद्धान्तों की सहायता लेता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय विधि का विकास होता है।
2. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अस्पष्ट नियमों का स्पष्टीकरण करता है।
3. न्यायालय की संविधि का अनुच्छेद 59 पूर्वोक्ति के सिद्धान्त (Doctrine of precedent) का निषेध करता है, फिर भी इसके महत्व की ओर संकेत करता है।
4. न्यायालय के सलाहकारी मत भी अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। जैसे–संघ का सदस्य बनाने हेतु शर्ते, महासभा की सदस्यता प्राप्त करने हेतु अनिवार्यतायें, क्षति के लिये क्षतिपूर्ति सम्बन्धी नियम, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून (नियम) का निर्धारण आदि।

<u>प्रश्न न0 7–</u> संयुक्त राष्ट्र सचिवालय की संरचना का वर्णन कीजिए तथा महासचिव के कार्यों को समझाइए।

<u>उत्तर–</u> सचिवालय (The Secretariat)– प्रो. गुडरिच (L.M. Goodrich) के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय सिविल सेवा की धारणा नई नहीं है। इसका प्रारम्भ राष्ट्र संघ ने किया था। संयुक्त संघ द्वारा किये गये प्रयोग का और भी अधिक विस्तार कर लिया। सचिवालय संयुक्त राष्ट्र का एक प्रशासनिक अंग है। सचिवालय में महासचिव तथा उतने अन्य कर्मचारी होते हैं जितने कि संस्था की आवश्यकता होती है। महासचिव संस्था का मुख्य प्रशासनिक अधिकारी होता है। उसकी नियुक्ति सुरक्षा–परिषद् की संस्तुति पर महासभा द्वारा की जाती है (अनुच्छेद 97)। महासचिव बहुधा किसी छोटे तथा तटस्थ राज्य के विख्यात् व्यक्ति को बनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के पहले सचिव ट्रिग्वी ली (Trygve Lie), दूसरे डाग हेमरजोल्ड (Dag Hammarskjoeld), तीसरे बर्मा के यू–थांट (U- Thant) थे, चौथे महासचिव आस्ट्रिया के कुर्ट वालधाइम (Kurt Waldheim) थे। वर्तमान महासचिव पेरू के श्री ऐवियर पेरेज डि कूलर (Mr-Avier Perez De Cuellar) हैं। उन्होंने महासचिव का पद 1 जनवरी, 1982 को सँभाला है तत्पश्चात उन्हें दूसरी अवधि के लिये भी चुन लिया गया।

उनके दूसरे कार्यकाल की समाप्ति 31 दिसम्बर 1991 को ही गई। उनके अगले महासचिव मिस्र के बुतरस पाली (Boutros Ghali) चुने गये तथा उन्होंने जारी 1992 को कार्य भार ग्रहण कर लिया।

सचिवालय की अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति को बनाये रखने तथा उसे निष्पक्ष रखने के लिए चार्टर में यह प्रावधान रखा गया है कि महासचिव तथा उनके कर्मचारी किसी सरकदर के आदेशों का पालन नहीं करेंगे तथा संयुक्त राष्ट्र का प्रलोक सदस्य महासचिव तथा उनके अधीनस्थ कर्मचारियों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति का आदर करेगा (अनुच्छेद 100)

सचिवालय के कर्मचारियों की नियुक्ति महासचिव महासभा द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार करते हैं। चार्टर के अनुसार सचिवालय के कर्मचारियों की नियुक्ति के समय सीन गुण–कार्यकुशलता (efficiency), कार्यक्षमता (competency) तथा ईमानदारी (integrity) होनी चाहिये। उनकी सेवा की शर्त तथा वेतन आदि महासभा द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार निर्धारित होते हैं।

महासचिव के कार्य–महासचिव के कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) महासचिव संस्था के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी की हैसियत से महासभा, सुरक्षा परिषद्, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् तथा न्यास परिषद् के सभी मीटिंग में भाग लेता है तथा वह सारे कार्य सम्पादित करता है जो इन अंगों द्वारा उसे सौंपे जाते हैं।

(2) वह महासभा को संस्था के कार्य की एक वार्षिक रिपोर्ट भी प्रेषित करता है (अनुच्छेद 98)।
(3) यदि उसके मत के अनुसार किसी मामले से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा की खतरा है तो वह ऐसे मामले के प्रति सुरक्षा परिषद् का ध्यान आकर्षित करा सकता है (अनुच्छेद 99)।
(4) महासचिव पूरे विश्व की आर्थिक स्थिति के तथ्य तथा आँकड़े एकत्र करवाता है तथा इन्हें आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् को प्रेषित करता है।
महासचिव के कार्यों तथा उनके पद की स्थिति पर उन तीन लोगों के व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पड़ा है, जिन्होंने इस पद को सँभाला है। विशेषकर डाग हैमरजील्ड ने अपने पद की अत्यधिक प्रभावित किया। चार्ल्स विन्चमौर (Charles Winchmore) के शब्दों में– ''The Office of the Secretary&General has been shaped by the character of its three successive incumbents and more especially by the outstanding achievements of the Secretary General Dag Hammarskjoeld.''

शांति के लिये संगठित होने का प्रस्ताव (Uniting for Peace Resolutirn Nov- 3, 1950) के पारित होने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के सम्बन्ध में महासचिव की शक्तियों तथा कार्यों में काफी वृद्धि हुई है। इस प्रस्ताव के अन्तर्गत महासचिव को संघर्ष–क्षेत्रों में फौजें भेजने तथा उन पर अपना नियंत्रण रखने का अधिकार दिया जा सकता है। स्वेज–संकट के समय मिस्र (Egypt) में 1956 में तथा कांगो में 1961 में संयुक्त राष्ट्र फौजें भेजने के तथा उन पर नियंत्रण रखने के सम्बन्ध में डाग हैमरजोल्ड (Dag Hammarskjoeld) ने महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किये तथा अपने पद के गौरव तथा गरिमा में वृद्धि की। परन्तु कांगो के अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि महासचिव द्वारा शान्ति तथा सुरक्षा के कार्य सम्पादन तथा उनकी सफलता के लिए महाशक्तियों का सहयोग तथा एकता आवश्यक है। इसके अभाव में संयुक्त राष्ट्र आर्थिक संकट में पड़ गया तथा कार्य पूर्ण होने के पूर्व ही संयुक्त राष्ट्र को विवश होकर अपनी फौजों को वापस बुलाना पड़ा।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि महासचिव के कार्यों तथा शक्तियों की कुछ परिसीमाएँ हैं। महासचिव के कार्यों की सफलता के लिए आवश्यक है कि महाशक्तियों में परस्पर सहयोग हो।

प्रश्न न0 8– न्यास परिषद् की संरचना तथा कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– न्यास–परिषद्–यह न्यास क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के विकास के लिये कार्य करता है। न्याय परिषद् के निम्नलिखित सदस्य होते हैं–
(1) वे सदस्य जो न्याय क्षेत्रों का प्रशासन कर रहे हैं;
(2) संयुक्त राष्ट्र के वे स्थायी सदस्य जो न्याय क्षेत्रों का प्रशासन नहीं कर रहे हैं;
(3) इसके अतिरिक्त महासभा उतने सदस्यों का तीन वर्ष के लिए निर्वाचन करती है जिससे न्याय क्षेत्रों के प्रशासन करने वाले सदस्यों तथा प्रशासन न करने वाले सदस्यों की संख्या बराबर हो जाय।

मतदान–व्यास–परिषद् के प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार होता है। इसके निर्णय उपस्थित सदस्यों के बहुमत से लिए जाते हैं (अनुच्छेद 89)।

कार्य तथा शक्तियाँ–न्यास–परिषद् सामान्य परिषद् के अधीन अपने कार्य सम्पादित करती है। यह निम्नलिखित कार्य सम्पादित करती है–
(1) यह न्यास–क्षेत्र पर प्रशासन करने वाले क्षेत्र द्वारा प्रेषित रिपोर्ट पर विचार कर सकती है।
(2) यह याचिकाएँ (Petitions) स्वीकार कर सकती है तथा प्रशासन करने वाले राज्यों की सलाह से उनका निरीक्षण करा सकती है।
(3) यह प्रशासन न करने वाले अधिकारी की स्वीकृति से समय–समय पर न्याय क्षेत्रों में लोगों को निरीक्षण के लिए भेज सकती है।
(4) न्यास समझौतों के अनुसार उपर्युक्त तथा अन्य कार्यवाही की सकती है।
(5) न्यास–क्षेत्रों में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक उत्थान के लिए न्यास–परिषद् प्रश्नवाली (questionnaire) तैयारी करेगी और न्यास क्षेत्र पर प्रशासन करने वाली तथा उक्त प्रश्नवाली के आधार पर महासभा की रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी (अनुच्छेद 88)।
(6) न्यास–परिषद् आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् तथा विशिष्ट एजेनसयों से सहायता प्राप्त कर सकती है (अनुच्छेद 91)।

न्यास–क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की संख्या संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद से प्रत्येक वर्ष घटती जा रही है। न्यास–परिषद् का कार्य बहुत शीघ्रता से कम होता जा रहा है। कुछ वर्षों में कदाचित न्यास–परिषद् के पास विल्कुल काम नहीं रह जायेगा। संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंगों में यही एक अंग है जिसने अपना कार्य सफलतापूर्वक लगभग समाप्त कर दिया है। दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका के क्षेत्र की छोड़कर और सभी क्षेत्रों में इसने सफलतापूर्वक कार्य किया है। लिओनार्ड (Leonard के शब्दों में– "By the fall of 1966] virtually all colonial peoples had attained independence and membership in the U-N-Only three trust territories remain of the original eleven which means that the Trusteeship Conucil had almost completed its original mission of asserting these areas in their quest for self&government and independence."

1975 में पपुआ न्यू गिनी (Papua New Guine) की स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रशान्त द्वीपों का न्यास–क्षेत्र (The Trust Territory of the Pacific Islands) ही अन्तिम न्यास–क्षेत्र बचा है। इसे माइक्रोनिसिआ (Micronesia) भी कहते हैं। परिपद् इनकी न्यास स्थिति को समाप्त करने पर विचार कर रही है। यहाँ पर यह नोट करना आवश्यक है कि

दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका तथा नामीविया (जिसे दक्षिणी अफ्रीका ने अवैध रूप से हथिया लिया है) की जिम्मेदारी संयुक्त राष्ट्र ने स्वयं ली थी। उसके लिए एक परिषद् (U.N. Council for Namibia) स्थापित की गई थी।

संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों के परिणामस्वरूप नमीबिया अब स्वतन्त्र हो गया है तथा संयुक्त राष्ट्र का 160 वाँ सदस्य बन गया।

दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका को अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति (International status of South-West Africa] L.C.J. Rep. (1950),–न्यास क्षेत्रों से सम्बन्धित एक प्रमुख याद है। राष्ट्र संघ के मैन्डेट के अन्तर्गत दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका गणतन्त्र दक्षिणी अफ्रीका को प्रशासन हेतु सौंपा गया था। राष्ट्र संघ के ममाप्त होने पर दक्षिणी अफ्रीका ने दावा किया कि यह क्षेत्र उसके क्षेत्र का अभिन्न अंग हो गयाः अतः यह संयुक्त राष्ट्र न्यास–प्रणाली के नियन्त्रण से बाहर है। महासभा ने इस मामले पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से सलाहकारी मत माँगा। न्यायालय ने निर्णय दिया कि मैन्डेट के अन्तर्गत दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति थी जिसमें केवल दक्षिणी अफ्रीका परिवर्तन नहीं कर सकता है। न्यायालय ने अपने निर्णय में यह कहा कि संयुक्त राष्ट्र की महासभा को अधिकार है कि यह उसी प्रकार इम क्षेत्र पर नियन्त्रण रखे दिस प्रकार मैन्डेटरी कमीशन का या तथा दक्षिणी अफ्रीका का यह उत्तरदायित्य है कि न्यास–प्रणाली व्यवस्था के नियन्त्रण का आदर करे तथा महासभा के नियन्त्रण तया निरीक्षण को स्वीकार करे। इस निर्णय के बावजूद भी दक्षिणी अफ्रीका ने दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका गणतन्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र के नियन्त्रण का विरोध किया।

न्यास के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा महासभा के प्रस्तावों का दक्षिणी अफ्रीका पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने पर 1970 में सुरक्षा परिषद् ने एक प्रस्ताव दक्षिणी अफ्रीका के विरुद्ध पारित किया। दक्षियों अफ्रीका ने इसको भी कोई परवाह नहीं की। अतः इस स्थिति के विधि एक परिणामों के विषय में न्यास के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से एक बार फिर सलाहकारी मह देने की प्रार्थना की गई। न्यास के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने 1971 में सुरक्षा–परिषद् के बावजूद दक्षिगी अफ्रीका में दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका की निरन्तर उपस्थिति के विधि परिणाम सम्बन्धी मलाहकारी मत में निम्नलिखित निर्णय दिया–

(1) दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका में दक्षिणी अफ्रीका की निरन्तर उपस्थिति अवैध है तथा दक्षिणी अफ्रीका का दायित्व है कि वह दक्षिणी–पश्चिमी आफ्रीका में हटे तथा अपना आवेशन समाप्त करे।

(2) संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों का यह दायिन्त्र है कि दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका या नामीबिया में दक्षिणी अफ्रीका की उपस्थिति को अवैधता को स्वीकार करे तथा दक्षिणी अफ्रीका से सम्बन्ध न रखे।

(3) गैर–सदस्यों (वह राज्य जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं) का भी कर्मव्य है कि वे संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई कार्यवाही में सहायता प्रदान करें।

अतः दक्षिणी अफ्रीका दक्षिणी–पश्चिमी अफ्रीका के क्षेत्र पर अवैध रूप में अधिकार बनाये हुए था।

21 मार्च, 1990 की आधी रात को नामीबिया स्वतन्य हो गया। नमीबिया के लिए संयुक्त राष्ट्र परिषद् ने नामीबिया की राजधानी विनचोरेक (Winchock) में अपना अन्तिम सत्र 9 अप्रैल से ।। अप्रैल, 1990 तक किया तथा अपने विघटन के लिए प्रस्ताव पारित करके प्रस्तुति दी।

न्यास–प्रणाली तथा मैन्डेट–प्रणाली में अन्तर (Difference between Mandate System and Trusteeship System)– प्रो, गुडस्पीड के अनुसार न्यास प्रणाली राष्ट्र संघ द्वारा किये गये प्रयोग का उत्तराधिकारी है, परन्तु इसे उसका केवल एक बड़ा हुआ भाग मानना त्रुटिपूर्ण होगा।ष अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के इतिहास में राष्ट्र संघ की मैन्डेट प्रणाली प्रथम प्रयोग था जिसके द्वारा पराधीन लोगों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया गया। राष्ट्र संघ की प्रसंविदा के अनुच्छेद 22 के अनुसार ऐसे लोगों की दशा सुधारने का सबसे अच्छा उपाय इन क्षेत्रों को विकासशील देशों को प्रशासन के लिये सौंपना था। अतः कुछ विकासशील देशों को प्रशासन तथा विकसित करने हेतु ऐसे क्षेत्र मैन्डेट प्रणाली के अन्तर्गत सौंपे गये।

न्यास–प्रणाली का कार्य क्षेत्र मैन्डेट–प्रणाली के कार्य क्षेत्र से अधिक विस्तृत है। न्यास–व्यवस्था का क्षेत्रों पर नियन्त्रण भी अधिक प्रभावशाली है। न्यास–क्षेत्रों के सामरिक महत्व के क्षेत्रों की जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद् ने ली है। राष्ट्र संघ के मैन्डेट–प्रणाली के मुकाबले में सामरिक न्यासी क्षेत्रों पर प्रशासन करने वाली सत्ता पर सुरक्षा परिषद् का प्रभावशाली नियन्त्रण है। न्यास क्षेत्रों में रहने वाले निवासियों को सशस्त्र फौजों में भरती नहीं किया जा सकता है तथा ऐसी सत्ता को सामूहिक सुरक्षा के प्रावधानों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। मैन्डेट–प्रणाली के मुकाबले में न्यास–प्रणाली ने अधिक प्रभावशाली तथा सराहनीय कार्य किया है। इसका अधिकतर कार्य लगभग समाप्त हो गया है। केवल एक न्यास क्षेत्र बचा है जो निकट भविष्य में स्वतन्त्र हो जायेगा। यह इसकी सफलता का सबसे अच्छा प्रमाण है।

<u>प्रश्न न0 9</u>–राष्ट्र संघ का संक्षिप्त मूल्यांकन करे। राष्ट्र संघ की असफलता के क्या कारण थे?

<u>उत्तर</u>– –फिलिप नोयल बेकर के अनुसार ''राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीय समाज को एक स्थायी तथा जैव (Organic) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की प्रणाली देने के इतिहास में राष्ट्रसंघ प्रथम प्रयास है।'' यह प्रयास प्रथम विश्वयुद्ध का परिणाम था। प्रथम विश्व युद्ध के विध्वंसकारी परिणामों ने राज्यों को विवश कर दिया कि ये एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना के लिए प्रयास करें जो विधि के लिए आदर के भाव पर आधारित हो तथा विश्व में शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित कर सके। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान (1914–19) मित्र राष्ट्रों (Allied Nations) ने जहाजरानी, कच्चा माल, भोजन सामग्री, ईंधन आदि से सम्बन्धित कई समितियाँ स्थापित कीं। इन समितियों के सफल कार्यों को

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की दिशा में प्रोत्साहित किया। बहुधा राष्ट्रसंघ को श्युद्ध का बालकश (बेपसक वि ित) कहा जाता है। हेग के 1899 तथा 1907 के सम्मेलनों (Hague Conference of 1899 and 1907) में संघ के निर्माताओं ने हेग के उक्त सम्मेलनों को अपने सम्मुख राष्ट्रसंघ की सभा के मॉडल के रूप में रखा। उनका विश्वास था कि राष्ट्रसंघ की सभा द्वारा विधायिनी कार्यों का विकास किया जा सकता था।

प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त तक विश्व के राजनीतिज्ञों के राष्ट्रसंघ की स्थापना के विषय में विचार स्पष्ट थे। वह कम–से–कम इस बात पर एकमत थे कि एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की जाय जो विश्व के लोगों को भविष्य में युद्ध की विभीपिका से तथा इसके विध्वंसकारी प्रभावों से बचा सके। जनवरी, 1918 में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लायड जार्ज ने अपने एक महत्वपूर्ण भाषण में कहा– ''शस्त्रों के बोझ को सीमित करने तथा युद्ध की सम्भावनाएँ कम करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना करनी चाहिये।''

8 जनवरी, 1918 को अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने विश्व शान्ति के लिए चौदह–सूत्री प्रोग्राम की घोषणा की। चौदह–सूत्री प्रोग्राम में महाशक्तियाँ के प्रतिनिधियो के सम्मेलन स्थायी सचिवालय, निरस्त्रीकरण, अनिवार्य माध्यस्थम् (Compultorysbery arbitration) तथा युद्ध प्रारम्भ करने वाले तथा निर्मित होने वाले राष्ट्रसंघ के प्रावधानों का उल्लंघन करने वाले राष्ट्रों के विरुद्ध सैनिक शाक्ति के प्रयोग आदि शामिल थे। राष्ट्रपति विल्सन ने राष्ट्रसंघ की स्थापना को प्रोत्साहित किया तया उसकी स्वस्थता में सराहनीय योगदान दिया। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि संघ स्थापना का अधिक श्रेय राष्ट्रसंघ विल्सन को ही है।

1918 के अन्त तक लार्ड राबर्ट सोसिल ने एक ड्राफ्ट तैयार किया जो सोसित ड्राफ्ट के नाम से प्रसिद्ध है। दिसम्बर 1918 जेनरल स्मट्स ने राष्ट्रसंघ की स्थापना के लिए अपने विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने अपने प्रस्ताव में एक सामान्य सम्मेलन (General Conference), एक परिषद् (Council) तथा एक माध्यस्थम् न्यायालय (Arbiration Court) को व्यवस्था रखी। इसके उपरान्त अमेरिका के राष्ट्रपति ने द्वितीय तथा तृतीय ड्राफ्ट प्रस्तुत किये। ब्रिटिश सरकार ने भी एक ड्राफ्ट प्रस्तुत किया। अन्त में अमेरिका तथा ब्रिटेन के प्रस्तावों को एक संयुक्त ड्राफ्ट में रखा गया जिसे हर्स्ट–मिलर ड्राफ्ट कहते हैं। इस संयुक्त ड्राफ्ट को शान्ति सम्मेलन के राष्ट्रसंघ कमीशन के सम्मुख रखा गया। 28 अप्रैल, 1919 को शान्ति सम्मेलन ने इस प्रसंविदा (Covenant) को स्वीकार कर लिया जिसे कमीशन ने अन्तिम रूप दिया था। यह स्मरणीय है कि इस प्रसंविदा को वर्सलीज की सन्धि (Treaty of Verillecy) के एक अभिन्न भाग के रूप में रखा गया। इस प्रकार 10 जनवरी, 1920 को राष्ट्रसंघ की स्थापना हो गई।

राष्ट्रसंघ का उद्देश्य– राष्ट्रसंघ के मुख्य दो उद्देश्य निम्नलिखित थे–

(1) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखना, तथा

(2) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देना।

राष्ट्रसंघ के प्रमुख अंग–राष्ट्रसंघ के निम्नलिखित प्रमुख अंग थे–

(1) सभा,

(2) परिषद् तथा

(3) सचिवालय।

(1) सभा (Assembly)–सभा में राष्ट्रसंघ के सभी सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता था। प्रत्येक सदस्य अपने तीन प्रतिनिधि भेजने का अधिकारी था, परन्तु प्रत्येक सदस्य केवल एक वोट देने का अधिकारी था। सर जिमर्न (Sir A. E. Zemmem) ने उचित हो लिखा है– ''सभा न तो कोई सगदन धी अथवा न हो विश्व सरकार प्रणाली का ही कोई अन्य अंग थी। यह केवल विश्व में विधि के राज्य की स्थापना की सभा का सर्वप्रथम बाह्य तथा दर्शनीय प्रदर्शन था।'' यह स्मरणीय है कि राष्ट्रसंघ की संविदा में एक दोष यह था कि सभा तथा परिषद् के कार्यों का स्पष्ट विभाजन नहीं था। परन्तु कुछ कार्य ऐसे थे जिन्हें केवल सभा हो, करती थी। उदाहारण के लिए सभा दो–तिहाई बहुमत द्वारा नये राज्यों को सदस्य के रूप में स्वीकार करती थी, परिषद् के अस्थायी सदस्यों को मनोनीत करती थी तथा महसचिव की नियुक्ति का अनुमोदन करती थी।

(2) परिषद् (Council)– परिषद् के सदस्य मुख्य मित्र–राष्ट्र तथा सहयोगी शक्तियाँ (Principal Allied and Associated Powers), अर्थात् अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली तथा जापान थे। इसके अतिरिक्त चार सदस्य राष्ट्रसंघ की सभा द्वारा चुने जाते थे। दुर्भाग्यवश अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य कभी नहीं बना। यह यात निश्चयात्मक रूप से राष्ट्रसंघ के भविष्य के लिए घातक सिद्ध हुई। अमेरिका के स्थान की पूर्ति के लिए एक छोटे देश को चुना गया। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि सभा तथा परिषद् के कार्यों का स्पष्ट विभाजन नहीं था। परिषद् अनेक कार्य सभा के साथ मिलकर करती थी। परन्तु कुछ ऐसे कार्य थे जो केवल परिषद् ही करती थी। ऐसे कार्यों में अतिरिक्त स्थायी सदस्यों को मनोनीत करना, शस्त्रों को कम करने की योजना बनाना, बाहरी आक्रमण से रक्षा तथा क्षेत्रीय प्रभुत्वसम्पन्नता को बनाये रखने के लिए सदस्यों को सलाह आदि देना प्रमुख थे।

(3) सचिवालय (The Secretarial)– यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली में न तो अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय तथा न ही अन्तर्राष्ट्रीय सिविल सेवा की धारणा थी, फिर भी राष्ट्रसंघ को श्रेय है कि उसने सच्चे अर्थों अन्तर्राष्ट्रीय सिविल सेवा की स्थापना प्रदान की तथा यह राष्ट्रसंघ द्वारा किया हुआ प्रयोग था जिसका संयुक्त राष्ट्र ने विकास किया तथा पूर्णता की। राष्ट्रसंघ के सचिवालय में लगभग 600 अधिकारी तथा अधीनस्थ कर्मचारी थे। सचिवालय का प्रधान महा सचिव (Secretaty-General) था जिसकी नियुक्ति परिषद् को सर्वसम्मति के निर्णय से होती थी।

राष्ट्रसंघ के कार्य–राष्ट्रसंघ के निम्नलिखित मुख्य कार्य थे–(1) राष्ट्रीय शस्त्रीकरण को निम्नतम स्तर तक कम करना जिससे वह राष्ट्रीय सुरक्षा से संगतिपूर्ण हो (अनुच्छेद 8)।
(2) बाह्य आक्रमण के विरुद्ध राष्ट्रसंघ के सदस्यों को क्षेत्रीय अखण्डता तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता की रक्षा करना (अनुच्छेद 10)।
(3) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का शान्तिपूर्ण हल करना था (अनुच्छेद 12 तथा 16)। (4) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शान्तिपूर्ण परिवर्तन लाना था (अनुच्छेद 19)।
(5) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखना था।
प्रो. गुडस्पीड (Stephen S. Goodspeed) के मत में राष्ट्रसंघ के दो उद्देश्य थे– अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सुरक्षा एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग। उनके अनुसार श्राष्ट्रसंघ की संविदा एक बहुपक्षीय संधि थी जिसका दोहरा उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना था।
राष्ट्रसंघ की असफलता के कारण– राष्ट्रसंघ की निम्नलिखित दुर्बलताएँ तथा दोष थे जिसके कारण राष्ट्रसंघ असफल रहा–
(1) राष्ट्रसंघ को संविदा का यह प्रमुख दोष था कि परिषद् द्वारा केवल सर्वसम्मति से निर्णय लिया जा सकता था। राष्ट्रों के गुटों में घंटे रहने के कारण अनेक मामलों में सर्वसम्मति सन्भव नहीं थी। इस प्रकार सर्वसम्मति का सिद्धान्त, जो राष्ट्रसंघ की कार्यक्षमता में वृद्धि करने हेतु रखा गया था, वास्तव में घातक सिद्ध हुआ। इसने परिपद के कार्यों में अवरोध उत्पन्न कर दिया।
(2) दूसरा प्रमुख दोष था कि राष्ट्रसंघ की संविदा में युद्ध को पूर्णयता वर्जित नहीं किया गया था। संविदा के प्रावधानों के अन्तर्गत कुछ परिस्थितियों में राज्यों को युद्ध करने का अधिकार था। संविदा के अनुसार सदस्यों का उत्तरदायित्व था कि वे अपनी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का सर्वप्रथम हल माध्यस्थम् (arbitration) अथवा परिषद् की जाँच द्वारा करे। परन्तु यदि इन साधनों से समस्या का हल न हो तो 3 महीने की अवधि के उपरान्त युद्ध करने का अधिकार प्राप्त हो जाता था। विधि शास्त्रियों के अनुसार यह राष्ट्रसंघ की संविदा का एक प्रमुख संवैधानिक दोष था।
(3) अमेरिकी सेनेट ने राष्ट्रसंघ का अनुसमर्थन नहीं कियाय अतः अमेरिका संघ का सदस्य नहीं हो सका जबकि अमेरिका ने इसकी स्थापना में अत्यधिक योगदान दिया था।
(4) यदि राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा में हुआ कोई संशोधन किसी सदस्य को मान्य नहीं होता था अथवा वह उसका विरोध करता था, तो ऐसा राष्ट्र राष्ट्रसंघ से अपनी सदस्यता वापस ले सकता था।
(5) उपर्युक्त प्रावधानों के अतिरिक्त, दो वर्ष की नोटिस देकर कोई भी सदस्य राष्ट्रसंघ से अपनी सदस्यता वापस ले सकता था परिणामस्वरूप कालान्तर में राष्ट्रसंघ के सदस्यों की संख्या 62 से घटकर 32 रह गई।
(6) राष्ट्रसंघ को परिषद् में अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने की क्षमता नहीं थी।
(7) राष्ट्रसंघ में इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह महाशक्तियों को छोटे राज्यों पर आक्रमण करने तथा नाजायज लाभ उठाने से रोक सके।
(8) राष्ट्रसंघ एक सार्वभौमिक (universal) अन्तर्राष्ट्रीय संस्था नहीं थी। कंवल 62 राज्य इसके सदस्य थे तथा कालान्तर में यह संस्था घटकर केवल 32 रह गई थी।
(9) राष्ट्रसंघ महाशक्तियों तथा छोटे राज्यों के भेदभाव पर आधारित था।
(10) राष्ट्रसंघ की असफलता का एक प्रमुख कारण यह भी था कि राष्ट्रों ने (विशेषकर महाशक्तियों ने) अपने निजी स्वार्थों को सदैव सर्वोपरि रखा।
(11) राष्ट्रसंघ का अन्तिम दोष यह था कि विश्व में शान्ति बनाये रखने के अपने प्रमुख कार्य में युरो तरह असफल रहा।
राष्ट्रसंघ के विघटन (Dissolution) के कारण तथा घटनाएँ– उपर्युक्त वर्णित दोपों तथा दुर्बलताओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी घटनायें घटीं जिनसे राष्ट्रसंघ का पतन तथा विघटन अवश्यम्भावी हो गया। ये प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित थीं–
(1) सन् 1923 में इटली ने कार्फू (Corfu) नामक एक द्वीप पर आक्रमण कर दिया। ग्रीस ने राष्ट्रसंघ में यह मामला उठाया। राष्ट्रसंघ ने ग्रीस की सहायता न करके अपनी सलाह इटली के पक्ष में दी।
(2) सन् 1931 में जापान ने मन्चूरिया पर आक्रमण करके अपना अधिकार कर लिया। राष्ट्रसंघ भी कई प्रभावशाली कार्य करने में असमर्थ रहा।
(3) राष्ट्रसंघ का महत्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय शस्त्रीकरण को निम्नवत स्तर तक रकने का प्रयास करना था, जिससे वह राष्ट्रीय सुरक्षा के संगतिपूर्ण हो। 1932 में राष्ट्रसंघ के प्रयासों के परिणामस्वरूप एक निरस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी, क्योंकि अपनी तरह का यह पहला सम्मेलन था, परन्तु इसमें कोई सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। असफलता राष्ट्रसंघ के लिए सिद्ध हुई।
(4) सन् 1935 में इटली ने इथोपिआ पर आक्रमण कर दिया। राष्ट्रसंघ इटली के विरुद्ध कार्यवाही करने में असमर्थ रहा।
(5) सन् 1939 में रूस ने फिनलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। इस बार भी राष्ट्रसंघ एक दर्शक मात्र रहा तथा कुछ भी कार्यवाही नहीं कर सका।

उपर्युक्त घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया था कि राष्ट्रसंघ एक दुर्बल अन्तर्राष्ट्रीय संस्थां थी तथा विश्व–शांति तथा सुरक्षा को बनाये रखने में असमर्थ थी। **प्रसिद्ध विधिशास्त्री प्रो, ई. कारबेट (ferey E. Corvoit) ने** उचित ही लिखा है– ''राष्ट्रसंघ की असफलतायें इतनी स्पष्ट तथा बड़े पैमाने पर थीं कि उन्होंने इसके अन्तर्गत हुई उपलब्धियों को छिपा दिया। इसके सारे दोषों के बावजूद कुल अनुभव विश्व को प्रभावशाली विधिक व्यवस्था की दिशा में एक उन्नति थी। यदि इसने केवल विश्व के पैमाने पर सामूहिक कार्यवाही की समस्याओं को विविधता तथा विषमताओं को अभिदर्शित कर दिया होता तो यह एक सकारात्मक उपलब्धि (Positive achievements) होती। वास्तव में इसने ऐसी संस्थाएँ तथा प्रक्रियायें प्रारम्भ की जिसका आज भी लाभकारी प्रयोग होता है।'' **प्रो. गुडस्पीड ने भी लिखा है–** ''राष्ट्रसंघ के अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के सभी पहलुओं को प्रारम्भ किया। जिस्सन्देह सबसे नवीन नवाचारों (novel innovationes) में एक समाचार सच्चे अर्थों में अन्तर्राष्ट्रीय सिविल सेवा को अपनाया था।'' वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के विकास (जिसका प्रारम्भ राष्ट्रसंघ के प्रयास द्वारा हुआ) के परिणामस्वरूप ही आधुनिक प्रशासन को प्रस्तुत स्वरूप तथा प्रक्रिया मिली है।

प्रश्न न0 10– निम्नलिखित में से तीन पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

उत्तर– (1) अन्तर्राष्ट्रीय धनकोष (आई0एम0एफ0) तथा पुनः निर्माण विकास हेतु अन्तर्राष्ट्रीय या विश्व बैंक (आई0बी0आर0डी) – विश्व बैंक की विवेचना के पूर्व कुछ शब्द विश्व बैंक दल (World Bank Group) के बारे में कहना वांछनीय होगा।

विश्व बैंक दल (The World Bank Group)– विश्व बैंक दल के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें हैं–

(i) पुनः निर्माण तथा विकास हेतु अन्तर्राष्ट्रीय बैंक या विश्व बैंक (I.B.R.D.);

(ii) अन्तर्राष्ट्रीय विकास निगम (I.D.A.);

(iii) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (I.F.C.);

(iv) बहुराष्ट्रीय निवेश गारंटी एजेन्सी (M.I.G.A.)

उपर्युक्त प्रथम तीन संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट एजेन्सियाँ हैं परन्तु चौथी विशिष्ट एजेन्सी नहीं है।

इसकी स्थापना जुलाई 1944 के ब्रेटन वुड्स सम्मेलन के परिणामस्वरूप हुई तथा इस संस्था का संविधान उक्त सम्मेलन के अन्तिम अधिनियम के परिशिष्ट श्कश में अपनाया गया था। तत्पश्चात् एक विशेष करार द्वारा इसका सम्बन्ध संयुक्त राष्ट्र से हुआ जिसे महासभा ने 14 नवम्बर, 1947 की अनुमोदित कर दिया। इसका उद्देश्य उत्पादन के उद्देश्यों में पूँजी लगाकर सदस्य राज्यों को अपने क्षेत्र में पुनःनिर्माण तथा विकास में सहायता देना है। यह गारन्टी देकर विदेशी व्यक्तिगत पूँजी लगाने को प्रोत्साहित करता है। इसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलित विकास को भी प्रोत्साहित करना है। इसकी सदस्यता उन राज्यों के लिए खुली है जो 31 दिसम्बर, 1945 से पहले अन्तर्राष्ट्रीय धनकोष (International Monetary Fund) के सदस्य थे। अन्य राज्यों को गवर्नर के बोर्ड के बहुमत से सदस्य बनाया जा सकता है। जून 1992 में रूस औपचारिक रूप से विश्व बैंक का सदस्य घन गया। विश्व बैंक ने रूस तथा अन्य पूर्व रूसी गणतंत्रों की सदस्यता के प्रार्थनापत्र पर स्वीकृति अप्रैल 1992 में ही प्रदान कर दी थी। रूस के समान, 12 अन्य पूर्व रूसी गगतंत्र भी विश्व बैंक के सदस्य हो गये। इस प्रकार बैंक सही अर्थों में विश्व बैंक हो गया।

इसके प्रमुख अंग तीन हैं– (क) गवर्नरों को परिषद् (Board of Governors); (3) कार्यकारी डाइरेक्टर (Executive Directors); (ग) एक सभापति (President)। परिषद् में एक गवर्नर तथा एक वैकल्पिक (Alternative) सदस्य होता है। इसका कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। इसका अधिवेशन प्रतिवर्ष होता है। बैंक की परिषद् की सभी शक्तियाँ परिषद् में केन्द्रित होती हैं। परिषद् ने अपनी शक्तियों 18 कार्यकारी डाइरेक्टर्स को प्रदान कर रखी है तथा ये बैंक के सामान्य कार्य सम्पादित करते हैं। कार्यकारी संचालक अपना एक सभापति चुनते है जो संस्था के प्रति जिम्मेदार होता है तथा कार्यकारी संचालकों की मीटिंग का सभापतित्व करता है।

23 तथा 24 मई, 2005 को बैंक का विकास अर्थव्यवस्थाओं (Development Economics पर वार्षिक सम्मेलन हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय धनकोष (International Monetary Fund or I.M.F.)– इसकी स्थापना ब्रेटन वुड्स सम्मेलन (जुलाई 1994) के परिणामस्वरूप हुई तथा नवम्बर, 1947 को एक करार द्वारा इसका सम्बन्ध संयुक्त राष्ट्र से हो गया। अन्तर्राष्ट्रीय धनकोष की प्रतिज्ञा के अनुच्छेद । के अनुसार इसके मुख्य उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग को प्रोत्साहन देना, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलित विकास को प्रोत्साहित करना, सदस्यों के मध्य विनिमय में स्थिरता को बढ़ाना तथा उस सम्बन्ध में पारस्परिक प्रतियोगिता को हटाना, विदेशी विनिमय प्रतिबन्धों को हटाना, सदस्यों की धन उपलब्ध कराकर उनमें विश्वास उत्पन्न करना तथा सदस्यों के मध्य भुगतान से अन्तर्राष्ट्रीय संतुलन में असमानताओं को न्यून करना आदि है।

मौखिक सदस्यों के अतिरिक्त अन्य राज्य, गवर्नरों की परिषद् के साधारण बहुमत से सदस्य बनाये जा सकते हैं। प्रत्येक सदस्य को उसके द्वारा कोप में धन दिये जाने के अनुसार मत देने का अधिकार होता है। प्रत्येक सदस्य को 250 मत के अतिरिक्त तथा प्रत्येक 1,00,000 स्टर्लिंग पौड के धन पर एक अतिरिक्त मत देने का अधिकार है। जून 1992 में रूस औपचारिक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय धनकोप का सदस्य हो गया। 12 अन्य पूर्व रूसी गणतंत्र भी सदस्य हो गये। इस प्रकार कोप के 184 राज्य सदस्य है। इसके चार मुख्य अंग होते हैं (क) गवर्नरों को परिषद् (ख) कार्यकारी संचालक (Executive Director); (ग) एक प्रवन्ध संचालक (Managing Director); तथा (घ) कर्मचारी।

कोष की सभी शक्तियाँ परियद् में केन्द्रित होती हैं। परिषद् अपना एक चेयरमैन निर्वाचित करती है तथा इसका अधिवेशन प्रतिवर्ष होता है। कार्यकारी संचालकों की संस्था 18 होती है तथा ये कोप के सामान्य कार्य सम्पादित करते हैं। कार्यकारी संचालक प्रबन्ध–संचालक का निर्वाचन करते हैं जो कार्यकारी संचालकों के चेयरमैन की भाँति कार्य करता है। कोष का मुख्य कार्यालय वाशिंगटन में है।

(2) नाकाबन्दी का अर्थ तथा परिभाषा–स्टार्क के अनुसार, नाकाबन्दी तब होती है जब कोई युद्धरत देश शगु–देश के समुद्री किनारे या उसके किसी हिस्से में जलयानों के आने–जाने पर रोक लगा देता है।

ओपेनहीम के मतानुसार, नाकाबन्दी युद्धपोतों द्वारा शत्रु के समुद्रतट अथवा उसके किसी भाग पर राय राज्यों के जहाजों अधवा हवाई जहाजों का प्रवेश तथा निकास रोकने के प्रयोजन से प्रतिवन्ध अथवा अवरोध लगाना है।

हाल के अनुसार, नाकाबन्दी युद्धस्थित राज्य द्वारा युद्ध के समय में शत्रु के अधिकार में स्थित किसी क्षेत्र अथवा स्थान में प्रवेश अथवा पहुँच को रोकना है। यह युद्ध का एक कार्य है जो युद्धस्थित के युद्धपोतों द्वारा किया जाता है जिसका उद्देश्य शत्रु के तटस्थ किसी सीमांकित बन्दरगाह में प्रवेश अथवा उसके प्रस्थान को रोकना है।

नाकाबन्दी के लक्षण–प्रथम नाकाबन्दी युद्धपोतों द्वारा होनी चाहिये चाहे वह अन्य साधनों द्वारा अधिक प्रबल की जाय। द्वितीय, केवल शत्रु का समुद्रतट अथवा उसका भाग अथवा शत्रु के बन्दरगाह ही नाकावन्दी के लक्ष्य होने चाहिये। तृतीय, नाकाबन्दी से प्रवेश अथवा निर्गमन दोनों रोके जा सकते हैं। चतुर्थ नाकाबन्दी ग्राह्य मानने के लिए सब राज्यों के जहाजों अथवा हवाई जहाजों के विरुद्ध निष्पक्षता से लगानी चाहिये। अन्त में नाकावन्दी एक युद्ध–सदृश क्रियाशीलता है।

नाकाबन्दी का भ्रमात्मक अर्थ घेरा डालने से नहीं लगाना चाहिये जिसका लक्ष्य घिरे हुये स्थान का अभिग्रहण करने का होता है। नाकावन्दी समुद्र द्वारा प्रत्येक पारस्परिक संसर्ग को रोकती है।

पेरिस की घोषणा, 1856 (Declaration of Paris,1856)–1856 की पेरिस की घोषणा के चौथे अनुच्छेद में यह निर्धारित किया गया है कि नाकावन्दी बाध्यकारी होने के लिए प्रभावपूर्ण होनी चाहिये अर्थात् ऐसे बल से स्थापित की जानी चाहिये जो शत्रु के समुद्रतट में पहुँच को रोकने के लिए वस्तुतः पर्याप्त हो।

कीमिया के युद्ध (1854) में यह माना गया कि ब्रिटेन के समुद्र में इधर–उधर चक्कर लगाने वाले केवल एक युद्धपोत ने 120 मील की दूरी नापकर नाकाबन्दी संगठित किया। दूसरी और फारमोसा की नाकाबन्दी अपूर्ण समझी गयी जी फ्रांस द्वारा 1884 में अधिसूचित की गई थी। जब ब्रिटेन ने उसके विरुद्ध यह आपत्ति की कि फ्रांसीसी नौसेना–नायक के अधिकार में जो सैनिक बल था, वह अपर्याप्त था, परिणामस्वरूप नाकाबन्दी उस समय त्याग दी गई जब तक उसको पुष्ट करने वो लिए और अधिक बल नहीं पहुँचा।

ह्वीवीटन (Wheaton) का कथन है कि नाकाबन्दी के प्रभाव को तटस्थ के अधिकारों का अतिलंघन होने के कारण प्रसंगगत मामले की परिस्थितियों में जितना आवश्यक है उससे अधिक नहीं बढ़ाना चाहिये।

लन्दन की घोषणा, 1990– लन्दन की असत्यापित घोषणा ने पेरिस की घोषणा (1856) द्वारा स्थापित इस नियम की पुष्टि की कि बन्धनकारी होने के लिए नाकाबन्दी प्रभावपूर्ण होनी चाहिए। इसमें आगे यह भी कहा गया कि नाकाबन्दी घोषित तया अधिसूचित होनी चाहिए। लन्दन की घोषणा के अनुसार नाकावन्दी की घोषणा या तो युद्ध–स्थित सरकार द्वारा अथवा उसके राज्य की ओर से कार्य करने वाले नौसेना दल के समादेशक द्वारा नाकाबन्दी आरम्भ होने वाले दिनांक, नाकाबन्दी के अधीन समुद्र तट की सीमाएं तथा अवधि जिसके भीतर तटस्थ जहाज निकाल सकें उनका विशेष रूप से निर्देश करते हुए की जानी चाहिए। यह नियम तटस्थों के हित पर आधारित है कि उनकी अपने दायित्व की सीमा सम्यक रूप से विदित हो जाय

नाकाबन्दी के प्रकार–नाकाबन्दी के कई ढंग हो सकते हैं जैसे प्रभावकारी नाकाबन्दी (Effective Blockade), मध्यतः नाकावन्दी (Blockade de facto), विज्ञाप्ति द्वारा नाकावन्दी (Blockade by Notification), कागजी नाकाबन्दी (Paper Blockade), सैनिक नाकाबन्दी (Strategic Blockade), व्यापारिक नाकाबन्दी या पैसिफिक नाकाबन्दी (Commercial Blockade or Pacific Blockade), साधारण और सार्वजनिक नाकावन्दी (Simple and Public Blockades) आदि।

(3) सत्प्रयत्न और वार्तालाप– सत्प्रयत्न (Good Offices)– जब दो राष्ट्र अपने झगड़ों का आपस में निपटारा नहीं कर पाते हैं तो एक तीसरा मित्र देश या कोई व्यक्ति उनके झगड़ों को सुलझाने में सहायता कर सकता है। यह तीसरा राष्ट्र इस विषय में अपने सत्प्रयत्न अर्पित कर सकता है। ये सेवाएँ किसी राज्य द्वारा, किसी व्यक्ति द्वारा या अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा अर्पित की जा सकती है। परन्तु इस ढंग द्वारा तीसरा व्यक्ति या राष्ट्र केवल ऐसा वातावरण उपस्थित कर देता है तथा सामान्य सुझाव प्रस्तुत करता है। किन्तु स्वयं क्रियाशील रूप में वातां आदि में भाग नहीं लेता। 1947 में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने इण्डोनेशिया तथा नीदरलैण्ड के झगड़े में अपने सत्प्रयत्न प्रस्तुत किये। इसी प्रकार हाल ही में फ्रांस ने अमेरिका तथा उत्तरी विषतनाम तथा दक्षिणी वियतनाम को अपने सत्प्रयत्न प्रस्तुत किये। यह स्मरणीय है कि वियतनाम में शान्ति स्थापित करने की जितनी भी वार्ताएँ हुई हैं उनमें से अधिकतर पेरिस में हुई थी।

उदहारण के लिये दो दशकों से अधिक साईप्रस (Cyprus) विवाद में सत्प्रयत्न, रेनबो वारियर विवाद (The Rainbow Warrier Dispute,1986) में सत्प्रयत्न, अफगानिस्तान में पक्षकारों को वार्ता के सत्प्रयत्न के साथ–साथ समस्या के समाधान के लिये सुझाव देना आदि द्वारा महासचिव ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

वार्तालाप (Negotiatons)– वार्तालाप या बातचीत द्वारा भी अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को निपटाने का प्रयास किया जाता है। यह विवाचन अथवा न्यायिक निर्णय से कम औपचारिक ढंग है। कभी–कभी केवल वातां द्वारा ही झगड़ों का निपटारा हो जाता है, परन्तु कभी–कभी वार्ता के साथ अन्य ढंगों का भी प्रयोग होता है, जैसे सेवाएँ, मध्यस्थता आदि का प्रयोग वार्ता के साथ किया जाता है। झगड़ों के शांतिपूर्ण निस्तारण में बार्ता सबसे सरल ढंग है, क्योंकि इसकी प्रक्रिया में केवल झगड़े के पक्षकार ही सम्मिलित होते हैं। झगड़ों के पक्षकारों के अनुसार वार्ता द्विपक्षीय अथवा बहुपक्षीय हो सकती है। झगड़ों के निस्तारण में वार्ता का सदेव महत्य रहा है तथा भविष्य में भी रहेगा। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 233 में, जिसमें झगड़ों के शांतिपूर्ण निस्तारण के डंगों का उल्लेख किया गया है, सर्वप्रथम वार्ता का उल्लेख है।

8 दिसम्बर, 1998 को एक प्रस्ताव (प्रस्ताव 53/101) पारित करके संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अन्तर्राष्ट्रीय वार्तालाप (International Negotiations) के सम्बन्ध में निर्देशक सिद्धान्त घोषित किये। महासभा ने विवादों के निस्तारण के शांतिपूर्ण ढंग तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि से संगतपूर्ण वार्ता के महत्व को पुष्ट किया तथा यह स्पष्ट किया कि वार्ता निम्नलिखित निर्देशक सिद्धान्तों के अनुरूप होनी चाहिये–

(क) वार्तालाप सद्भाव में की जानी चाहिये।

(ख) राज्यों को अन्तर्राष्ट्रीय वार्तालाप में उपयुक्त ढंग से उन राज्यों को सम्मिलित करना चाहिये जिनके महत्वूपर्ण हित सम्बन्धित मामले से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुये हैं।

(ग) वार्तालाप के प्रयोजन तथा उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियमों तथा सिद्धान्तों, जिनमें संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रावधान भी सम्मिलित है, से संगतपूर्ण या अनुरूप होने चाहिये।

(घ) राज्यों को पारस्परिक रूप से तय किये हुये वार्ता करने हेतु तय वाँचे का अनुपालन करना चाहिये।

(ङ) राज्यों को वार्तालाप के दौरान एक निर्माणात्मक वातावरण बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये तथा ऐसे आचरण से प्रतिवरत रहना या बचना चाहिये जिससे वार्ता या उसकी प्रगति पर बुरा असर पड़े।

(च) वार्तालाप के निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु राज्यों को अपना ध्यान पूरे समय ऐसो वार्ता के मुख्य उद्देश्यों पर केन्द्रित करना चाहिये।

(छ) वार्तालाप में बाधा आने पर पारस्परिक रूप से स्वीकृत तथा उचित हल के लिये प्रयास. जारी रखना चाहिये।

(4) शान्ति प्रस्ताव–

संयुक्त राष्ट्र के स्थायी सदस्यों के आपस में असहयोग के कारण सुरक्षा– परिषद् शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित करने के सम्बन्ध में असमर्थ सिद्ध हुई। अनुच्छेद 43 में राज्यों द्वारा संयुक्त राष्ट्र को सशस्त्र शक्ति दिये जाने के प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सका, क्योंकि इस सम्बन्ध में विशेष समझौतों की आवश्यकता थी। महाशक्तियों के आपस में सहयोग तथा संघर्ष के कारण ऐसा करना सम्भव न हो सकाय अतः सुरक्षा परिषद् को शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित करने के लिए आवश्यक शक्ति नहीं प्राप्त हो सकी। 1950 के कोरिया–संघर्ष के प्रारम्भ में सुरक्षा परिषद् ने दक्षिणी कोरिया के आक्रमण को रोकने का निर्णय लिया था। उसके विषय में आवश्यक कार्यवाही की गई। यह कार्यवाही इसलिए सम्भव हो सकी कि जब यह निर्णय लिया जा रहा था, उस समय रूस का प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद् में उपस्थित्त नहीं था। 1 अगस्त, 1950 को जब वह रूस का प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद् में वापस आया तो सुरक्षा–परिषद् कोरिया के मामले में निर्णय लेने में असमर्थ हो गई। अमेरिका ने फ्रांस, ब्रिटेन आदि के समर्थन से यह चेष्टा की कि संयुक्त राष्ट्र को इस प्रकार के संघर्षों से निपटने के लिए उचित अधिकार प्रदान किये जायें। अमेरिका के प्रयास तथा अन्य पश्चिमी देशों के समर्थन से 3 नवम्बर, 1950 में संयुक्त राष्ट्र को महासभा ने शान्ति के लिए संगठित होने का प्रस्ताव पारित किया।

इस प्रस्ताव में निम्नलिखित बातें मुख्य है–

(1) सुरक्षा–परिषद् के 9 सकारात्मक मत द्वारा अथवा सुरक्षा–परिषद् के सदस्यों के बहुमत से महासभा का विशेष संकटकालीन सत्र 24 घण्टे के अन्दर बुलाया जा सकता है।

(2) यदि सुरक्षा परिषद् शान्ति के उल्लंघन या आक्रमण आदि को रोकने में असमर्थ रही है तो महासभा उस पर विचार कर सकती है।

(3) महासभा सामूहिक कार्यवाही के लिए सुझाव दे सकती है जिसमें आवश्यकता होने पर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखने के लिए सशस्त्र शक्ति का प्रयोग शामिल है।

(4) 14 सदस्यों का एक शान्ति–निरीक्षण कमीशन बनाया गया जिसका कार्य संघर्ष वाले क्षेत्र का निरीक्षण करना तथा वहाँ के विषय में महासभा को रिपोर्ट देना था। परन्तु यह कमीशन संघर्ष क्षेत्र में तभी जा सकता था जब कि सम्बन्धित राज्य की इस विषय में सहमति मिल जाय।

(5) प्रत्येक सदस्य–राज्य से यह कहा गया कि वह अपनी सेना में कुछ ऐसी शिक्षित सेना सदैव तैयार रहोगा जो संयुक्त राष्ट्र की माँग पर दी जा सके।

(6) एक 14 सदस्यीय सामूहिक कार्यवाही कमेटी बनाई गई जिसका मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा स्थापित करने के लिए अध्ययन करना तथा रिपोर्ट देना था।

प्रो. ड्यूराज एण्डासी ने उचित ही लिखा है कि शान्ति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र को शान्ति और सुरक्षा करने की मशीनरी का सुधार करना था। **अन्य विधिशास्त्री कुन्ज (Josef L. Kunz) के अनुसार** यह सुरक्षा परिषद् से कुछ शक्तियाँ लेकर महासभा को देने का प्रस्ताव था जिससे निपेधाधिकार (Veto) से बचा जा सके

तथा संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने के कार्य में कुछ संशोधन लाया जाय। **डॉ. नगेन्द्र सिंह के शब्दों** में ''शान्ति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव का वास्तव में महासभा के संयुक्त राष्ट्र के समय शक्तिशाली अंग के रूप में विकास के इतिहास में एक महतवपूर्ण स्थान है।''

शान्ति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव की वैधता (Validity of the Uniting for Peace Resolution-1950)—शान्ति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव की वैधता को कुछ विधिशस्त्रियों तथा साम्यवादी देशों ने आलोचना की है—रूस ने इस प्रस्ताव का आरम्भ से ही विरोध किया था। एक रूसी लेखक के अनुसार ष्सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों की विश्वशान्ति को सुरक्षित तथा सुदृढ़ करने की विशेष जिम्मेदारी चार्टर के अनुसार, सुरक्षा—परिषद् ऐसा अंग है जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही करने हेतु सक्षम है। इस मामले में संयुक्त राष्ट्र संस्था राष्ट्रसंघ से भिन्न है, संयुक्त राष्ट्र संस्था में सतुक्षा—परिषद् ही एक अंग है जो इस प्रकार की कार्यवाही कर सकती है।'' एक अन्य रूसी लेखक, **प्रो. किलोय (Krylov) के अनुसार** ''महासभा के निर्णय केवल अल्पसंख्यकों के मन के विरुद्ध बहुमत के आधार पर विधिक शक्ति से हीन समझे जाने चाहिये, यदि अल्पसंख्यकों के हित संयुक्त राष्ट्र चार्टर के उद्देश्यों तथा सिद्धान्त के अनुकुल है। अल्पसंख्याकों को इन निर्णयों को अस्वीकार करने का अधिकार है। रूस के अनुसार यह प्रस्ताव चार्टर के प्रावधान से असंगत है। क्योंकि चार्टर में शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने को जिम्मेदारी सुरक्षा—परिषद् को है तथा यही इस विषय में सैनिक शान्ति का प्रयोग कर सकती है। रूस का मत उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि अनुच्छेद 10 के अन्तर्गत महासभा को अधिकार प्राप्त है कि वह चार्टर से सम्बन्धित किसी भी प्रश्न पर विचार कर सकती है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 24 के अनुसार, शांति तथा सुरक्षा बनाये रखने की प्राथमिक जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद् को है। प्राथमिक जिम्मेदारी का तात्पर्य यह नहीं है कि सुरक्षा परिषद् शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने में असमर्थ होती है तो संयुक्त राष्ट्र संस्था की सम्पूर्ण जिम्मेदारी समाप्त हो सकती है।'' **प्रो. जगज एन्ड्रासी के अनुसार** ''चार्टर के किसी भी प्रावधान यहाँ तक कि अनुच्छेद 24 से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि यदि सुरक्षा परिषद् फौरन तथा प्रभावशाली कार्यवाही नहीं कर पाती या अयोग्य अथवा असमर्थ रहती है तो पूरी संस्था की जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है।'' **एक अन्य विधिशास्त्री मिस गटरिज (Miss Gutteridge) ने यह विचार प्रकट किया है** कि संयुक्त राष्ट्र में वैधानिक रूप से आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुसार विकास करने की क्षमता है। उन्होंने इस विषय में दो मापदण्ड (tests) बताये हैं— (1) ऐसा विकास चार्टर के व्यक्त प्रावधानों के विरुद्ध नहीं होना चाहिये, तथा (2) ऐसा विकास चार्टर के अनुच्छेद । में वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए होना चाहिये। अतः निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शान्ति के लिए संगठित होने का प्रस्ताव एक ऐसा विकास है जी उपर्युक्त मापदण्डों के ऊपर खरा उतरता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि शान्ति के लिए संगठित होने का प्रस्ताव एक वैध प्रस्ताव है तथा यह चार्टर के प्रावधानों से असंगत नहीं है।

LL.B.-6th Sem. Paper-V Intellectual Property Law

प्रश्न न0 1– बौद्धिक सम्पत्ति क्या है? बौद्धिक सम्पत्ति की प्रकृति एवं विवेचना कीजिए।

उत्तर– बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर) किसी व्यक्तिध्कंपनी के स्वामित्व वाली अमूर्त संपत्ति से जुड़े अधिकार हैं और बिना सहमति के उपयोग के खिलाफ संरक्षित हैं। इस प्रकार, बौद्धिक संपदा के स्वामित्व से संबंधित अधिकारों को बौद्धिक संपदा अधिकार कहा जाता है। इन अधिकारों का उद्देश्य ट्रेडमार्क, पेटेंट या कॉपीराइट किए गए कार्यों के रचनाकारों को उनकी रचनाओं से लाभ उठाने की अनुमति देकर बौद्धिक संपदा (मानव बुद्धि की रचनाएँ) की रक्षा करना है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (UDHR) भी अनुच्छेद 27 के तहत बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लेख करती है जिसमें कहा गया है कि ''प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक उत्पादन से उत्पन्न नैतिक और भौतिक हितों की सुरक्षा का अधिकार है, जिसका वह लेखक है।''

बौद्धिक संपदा का अर्थ और प्रकृति

बौद्धिक संपदा (आईपी) एक अमूर्त संपत्ति है जो मानव बुद्धि के माध्यम से अस्तित्व में आती है। यह मन की रचनाओं या मानव बुद्धि के उत्पादों जैसे आविष्कारों, डिजाइनों, साहित्यिक और कलात्मक कार्यों, वाणिज्य में उपयोग किए जाने वाले प्रतीकों, नामों और छवियों को संदर्भित करता है।

विश्व बौद्धिक संपदा संगठन की स्थापना करने वाले अभिसमय में कहा गया है कि 'बौद्धिक संपदा' में निम्नलिखित से संबंधित अधिकार शामिल होंगेः –

(1) साहित्यिक, कलात्मक और वैज्ञानिक कार्य,
(2) प्रदर्शन कलाकारों के प्रदर्शन, फोनोग्राम और प्रसारण,
(3) मानव प्रयास के सभी क्षेत्रों में आविष्कार,
(4) वैज्ञानिक खोजें,
(5) औद्योगिक डिजाइन,
(6) ट्रेडमार्क, सेवा चिह्न, वाणिज्यिक नाम और पदनाम,
(7) अनुचित प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध संरक्षण, और
(8) औद्योगिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक क्षेत्रों में बौद्धिक गतिविधि से उत्पन्न सभी अन्य अधिकार।

बौद्धिक संपदा की अन्य श्रेणियों में भौगोलिक संकेत, तकनीकी जानकारी या अघोषित सूचना के संबंध में अधिकार, तथा एकीकृत सर्किट के लेआउट डिजाइन शामिल हैं।

सामण्ड के अनुसार बौद्धिक सम्पदा वे भौतिक वस्तुएँ है जो विधि द्वारा मानव प्रवीणता और श्रम के अभौतिक उत्पाद के रूप में मान्यता प्राप्त करती है।

लॉक का कथन कि शरीर, शारीरिक श्रम और हस्त कौशल व्यक्ति के सम्पूर्ण विश्व के विरूद्ध अपवर्जी स्वतत्व है। लॉक के सिद्धान्त जिन वस्तुओं को रेखांकित करना चाहते है, वे है–

(1) मनुष्य का शरीर उसकी सम्पत्ति है, और
(2) उसके शरीर के श्रम तथा हाथों किये गये कार्य उचित रूप से उसी के हैं।

चूँकि बुद्धि व्यक्ति के शरीर और व्यक्ति अपजर्जी स्वतत्व माना जा सकता है।

ब्लैकस्टोन के अनुसार ''अन्य मूर्त सम्पतियों की भाँति बौद्धिक सम्पदा, जिसका स्वरूप अमूर्त होता है, को राज्य ने राज्य ने विधि के माध्यम से सम्पत्ति की सामान्य व्याख्या के अन्तर्गत मान्याता प्रदान की है। जब कोई व्यक्ति अपनी विवेकशील क्षमता के प्रयोग से किसी मौलिक कृति का उत्पादन करता है तो वह अपनी इच्छानुसार उस मौलिक कृति के व्ययन का अधिकार रखना चाहता है और उसके द्वारा की गई व्यवस्था से भिन्न कोई प्रयत्न उसके अधिकारों पर अतिक्रमण प्रतीत होता है।''

प्रकृति– बौद्धिक संपदा (आईपी)संपत्ति की एक श्रेणी जिसमें मानव बुद्धि की अमूर्त रचनाएँ शामिल हैं, जैसे कि आविष्कार, साहित्यिक और कलात्मक कार्य, डिजाइन, प्रतीक, नाम और वाणिज्य में उपयोग की जाने वाली छवियाँ. प्च को पेटेंट, कॉपीराइट और ट्रेडमार्क के माध्यम से कानून द्वारा संरक्षित किया जाता है, जो लोगों को उनकी रचनाओं से मान्यता या वित्तीय लाभ अर्जित करने की अनुमति देता है। प्च प्रणाली का उद्देश्य ऐसे माहौल को बढ़ावा देकर नवोन्मेषकों के हितों को सार्वजनिक हित के साथ संतुलित करना है जहाँ रचनात्मकता और नवाचार पनप सकें।

आईपी को आम तौर पर गैर–भौतिक संपत्ति के रूप में परिभाषित किया जाता है जो मूल विचार का उत्पाद है। आईपी अधिकार अमूर्त गैर–भौतिक इकाई के बजाय विचारों की भौतिक अभिव्यक्तियों या अभिव्यक्तियों के नियंत्रण को घेरते हैं। उदाहरण के लिए, ट्रेडमार्क स्वामी की एक विपणन योग्य और वाणिज्यिक संपत्ति है जो उन्हें हमेशा के लिए उपलब्ध है, कॉपीराइट के विपरीत जिसकी एक सीमित समय अवधि होती है।

अलग–अलग देश अलग–अलग तरह के आईपी को अलग–अलग तरीकों से पहचानते और संरक्षित करते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में ट्रेडमार्क से जुड़े किसी भी मुद्दे को ट्रेडमार्क अधिनियम, 1999 के तहत निपटाया जाता है।

बौद्धिक सम्पदा का वर्गीकरण– बौद्धिक संपदा से तात्पर्य ऐसे कानूनी अधिकारों से है जो साहित्यिक, कलात्मक, वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्रों में बौद्धिक गतिविधि से उत्पन्न होते हैं। सामान्यतः, कार्यक्षेत्र की दृष्टि से बौद्धिक संपदा को निम्नलिखित दो वर्षों में विभाजित किया जाता है

(1) कॉपीराइट और संबंधित अधिकार–साहित्यिक, कलात्मक और वैज्ञानिक कार्य कॉपीराइट के अंतर्गत आते हैं। कॉपीराइट अधिनियम, 1957 की धारा 13(1) के अनुसार, कॉपीराइट निम्नलिखित वर्षों के कार्यों में विद्यमान है–

(क) साहित्यिक, नाटकीय, संगीतमय और कलात्मक कार्य।

(ख) चलचित्र फिल्मय और

(ग) मूल्यांकन।

संबद्ध अधिकार उन अधिकारों को कहते हैं जो कॉपीराइट के समान होने के साथ–साथ कॉपीराइट से संबंधित भी होते हैं। कॉपीराइट अधिनियम, 1957 की धारा 37 और 38 के अंतर्गत क्रमशः प्रसारण संगठन और प्रस्तुतकर्ता के अधिकारों के संबंध में प्रावधान किया गया था, जो संबद्ध अधिकारों की श्रेणी में आते हैं।

(2) औद्योगिक संपत्ति– औद्योगिक संपत्ति की श्रेणी में निम्नलिखित आते हैं–

(i) पेटेंट

(ii) औद्योगिक डिजाइन

(iii) ट्रेडमार्क

(iv) भौगोलिक संकेत

अनुचित प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध औद्योगिक संपत्ति के संरक्षण के लिए पेरिस कन्वेंशन के अनुच्छेद। खंड (2) के अंतर्गत अनुचित प्रतिस्पर्धा के दमन को औद्योगिक संपत्ति संरक्षण के क्षेत्र में शामिल किया गया है। कोई भी प्रतिस्पर्धी कार्य जो औद्योगिक और वाणिज्यिक मामलों में निष्पक्ष व्यवहार के विपरीत हो, अनुचित प्रतिस्पर्धा कहलाता है।

इस प्रकार, 'औद्योगिक संपत्ति' शब्द में मुख्य रूप से आविष्कार और औद्योगिक डिजाइन शामिल हैं। इसके अलावा, ट्रेडमार्क, सेवा चिह्न, वाणिज्यिक नाम और पदनाम जिसमें स्रोत और मूल नाम का संकेत और अनुचित प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध सुरक्षा शामिल है, को भी शामिल किया गया है।

औद्योगिक संपत्ति के विषय–वस्तु के अंतर्गत शामिल किया गया है।

इसके अलावा कला, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा संचार क्रांति के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति के परिणामस्वरूप बौद्धिक संपदा के अंतर्गत नए विषय– कम्प्यूटर प्रोग्राम, भौगोलिक संकेत, नई पादप किस्मों की सुरक्षा एवं कृषकों के अधिकार, जैव विविधता का संरक्षण, गोपनीय सूचना एवं सूचना प्रौद्योगिकी आदि से संबंधित अधिकार अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की संस्तुतियों के आधार पर शामिल किए गए हैं। कॉपीराइट एवं गोपनीय सूचना बौद्धिक संपदा की विशिष्ट प्रकृति को और अधिक स्पष्ट करते हैं। ट्रेडमार्क का बौद्धिक सृजनात्मकता से कोई निकट संबंध नहीं है, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि पेटेंट, डिजाइन एवं कॉपीराइट अनुप्रयुक्त कला, प्रौद्योगिकी एवं ललित कला के क्षेत्र में बौद्धिक प्रयास एवं सृजनात्मक गतिविधि का परिणाम हैं। एक ओर लेखकों, आविष्कारकों, वैज्ञानिकों आदि के माध्यम से नए मौलिक विचार एवं आविष्कार अस्तित्व में आ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर बौद्धिक संपदा के प्रकार एवं दायरा निरंतर बढ़ रहा है।

<u>प्रश्न न0 2–</u> बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के संरक्षण में विश्व बौद्धिक सम्पत्ति संगठन के योगदान की व्याख्या कीजिए।

<u>उत्तर–</u> सामान्य अर्थ में अधिकार का तात्पर्य कतिपय क्षेत्र के अन्तर्गत अनुज्ञात कार्य के मानक से है। विधिक तौर पर इसका अर्थ विधि द्वारा अनुज्ञात कार्य के मानक से लिया जाता है।

आस्टिन के अनुसार, एक व्यक्ति का अधिकार तब उत्पन्न होता है जब कोई दूसरा या दूसरे लोग उसके सम्बन्ध में कुछ करने या कुछ न करने से विरत रहने के लिए विधि द्वारा बाध्य या दायित्वाधीन हों। **हालैण्ड के अनुसार,** विधिक अधिकार राज्य की अनुमति तथा सहयोग द्वारा दूसरे कार्यों को नियंत्रित करने की किसी व्यक्ति में निहित क्षमता है। **ग्रे के अनुसार,** समाज द्वारा एक या अधिक व्यक्तियों पर विधिक अधिकार कर्तव्य लागू करने के फलस्वरूप जब किसी व्यक्ति को दूसरे या दूसरों को कोई कार्य करने या न करने पर बाध्य करने की क्षमता प्राप्त होती है तो ऐसी क्षमता को विधिक अधिकार कहते है। अधिकार हितों से सम्बन्धित होते है।

सामण्ड के अनुसार, मनुष्य के साम्पत्तिक अधिकारों का समुच्चय उसकी सम्पत्ति निर्मित करती है। जिसमें उसकी आस्तियाँ और विभिन्न अर्थों में कोई सम्पति सम्मिलित माने जाते है, दूसरी ओर मनुष्य के व्यक्तिगत हितों का योग उसकी प्रास्थिति और व्यक्तिगत दशाओं का निर्माण करता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति द्वारा अपने स्वामित्व में रखी गई भूमि या चल सम्पत्ति या पेमेन्ट अधिकार या व्यवसाय का गुडविल या कम्पनी में अंशपूंजी और अपने प्रति वर्ष के देनदारी सभी उसकी सम्पत्ति या सम्पदा से सम्बनिधत है। साम्पत्तिक अधिकार को निकाल देने के बाद जो बच जाता है, वह सब अधिकार है। कुछ लोगों का विचार है कि साम्पत्तिक अधिकार अन्तरणीय होते है,

जबकि व्यक्ति अधिकार अन्तरणीय नहीं होते है। वर्तमान समय में यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि व्यक्ति अधिकारों के संरक्षण के लियें सम्पत्ति के तत्व पर बल दिया जाए, जिस पर संरक्षण को आधारित किया जा सके।

विधिक अर्थ में, बौद्धिक सम्पदा से तात्पर्य अधिकारों के समूह से है जिसे विधि द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। बौद्धिक सम्पदा के स्वामी को सम्पदा के रूप में इन अधिकारों का प्रयोग करने का अनन्य अधिकार प्राप्त हो।

विधिक अर्थ में बौद्धिक सम्पदा से तात्पर्य अधिकारों के समूह से है जिसे विधि द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। बौद्धिक सम्पदा के स्वामी को सम्पदा के रूप में इन अधिकारों का प्रयोग करने का अनन्य अधिकार प्राप्त होता है। जिस प्रकार मूर्त सम्पति के स्वामी को सम्पति पर अधिकार प्राप्त होते है, उसी प्रकार बौद्धिक सम्पदा के स्वामी को भी वही अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार बौद्धिक सम्पदा का स्वामी बौद्धिक को समनुदेशित, अभ्यर्पित, अन्तरित या वसीयत करने का अधिकार रखता है। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की विशिष्ट प्रकृति होती है इस कारण इसको पृथक विधान द्वारा मान्यता एवं संरक्षण प्रदान किया जा सकता है। विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन को स्थापित करने वाले अभिसमय के अनुच्छेद (VII) के अनुसार बौद्धिक सम्पदा में निम्न से सम्बन्धित है–

(1) साहित्यिक, कलात्मक और वैज्ञानिक कृतियाँ,
(2) वैज्ञानिक खोजें, औद्योगिक डिजाइन
(3) ट्रेडमार्क, सेवा चिह्न, वाणिज्यिक नाम और पदनाम,
(4) मानवीय प्रयासों के सभी क्षेत्रों में आविष्कार,
(5) अनुचित प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध संरक्षण, और
(6) औद्योगिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक क्षेत्रों में बौद्धिक गतिविधि से उत्पन्न सभी अन्य अधिकार।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार वे विधिक अधिकार होते है जो मानवीय बुद्धि के उत्पादों के उपयोग को विनिमित करते है। यह अधिकार स्वामी के स्पष्ट अनुमोदन के बिना किसी अन्य व्यक्ति किसी किसी अन्य व्यक्ति को विषय–वस्तु का लाभ उठाने को निषेध करती है। बौद्धिक सम्पदा अधिकार लेखकों, आविष्कारों आदि की बौद्धिक रचनात्मकता और आविष्कारशीलता को प्रोत्साहित, सम्बधिति एवं संरक्षित करता है और गुणवत्तायुक्त माल और सेवाओं के विपणन को सरल बनाते हुए उपभोक्ताओं के हितों का भी संरक्षण करता है।

इस तरह बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के अन्तर्गत उन विचारों, व्यवहार–ज्ञान, गोपनीय जानकारी आदि को संरक्षण प्रदान किया जाता है जो वाणिज्यिक तौर पर मूल्यांकन होते है।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की प्रकृति– बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की प्रकृति प्राथमिक तौर पर नकारात्मक होती है। बौद्धिक सम्पदा अधिकार ऐसे अधिकार है जिनके आधार पर प्रतिलिप्यधिकार स्वामी के अतिरिक्त अन्य के द्वारा बौद्धिक सम्पदा अधिकार चूँकि विचार का स्वतत्वाधिकार है, इसलिए यह विचार के साथ ही गतिमान रहता है और जिस वस्तु को विचार आच्छदित करता है उसे यह अधिकार भी आच्छदित करता है अर्थात यह विचार, जो एक बौद्धिक सम्पदा अधिकार की विषय–वस्तु है, किसी मूर्त वस्तु पर अनुप्रयुक्त होता है, तो ऐसी वस्तु प्रश्नगत बौद्धिक सम्पदा अधिकार से आच्छदित होगी। यदि एक बौद्धिक सम्पदा अधिकार को एक भौतिक वस्तु में निहित माना जाय तो इसके इस तरह निहित होने का कारण सिर्फ यह है कि जिस विचार को यह अधिकार अपनी विषय–वस्तु के रूप में आच्छछित किये है वही विचार इस भौतिक वस्तु में अनप्रयुक्त है।

इस प्रकार देखते है भले ही एक बौद्धिक सम्पदा अधिकार एक भौतिक वस्तु में निहित हो, इसे उस भौतिक वस्तु के रूप में नही पहचाना जा सकता, बल्कि इसे उस विचार से जाना जा सकता है अर्थात वह विचार जो इस अधिकार की विषय–वस्तु है। कुछ सकारातमक अधिकार अधिकार भी विधि द्वारा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों गये ह, जैसे–अधिनियम द्वारा अपेक्षित शर्तों का पालन किये जाने पर प्रतिलिप्यधिकार को समनुदेशित या अनुज्ञापित करने का अधिकार, पेटेन्ट प्राप्त करने का अधिकार, ट्रेडमार्क के रजिस्ट्रीकरण का अधिकार तथा अतिलंघन की स्थिति में उपचार प्राप्त करने का अधिकार आदि।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन– विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (डब्ल्यूआईपीओ) का घटक दस्तावेज, डब्ल्यूआईपीओ कन्वेंशन, 14 जुलाई 1967 को स्टॉकहोम में हस्ताक्षरित किया गया था, जो 1970 में लागू हुआ और 1979 में संशोधित किया गया। डब्ल्यूआईपीओ एक अंतर–सरकारी संगठन है, जो 1974 में संयुक्त राष्ट्र संगठन प्रणाली की विशेष एजेंसियों में से एक बन गया।

WIPO की शुरुआत 1883 और 1886 में हुई थी, जब औद्योगिक संपत्ति के संरक्षण के लिए पेरिस कन्वेंशन और साहित्यिक और कलात्मक कार्यों के संरक्षण के लिए बर्न कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए गए थे। दोनों कन्वेंशन में एक 'अंतर्राष्ट्रीय ब्यूरो' की स्थापना का प्रावधान था। 1893 में दोनों ब्यूरो को एकीकृत कर दिया गया और 1970 में WIPO कन्वेंशन के आधार पर विश्व बौद्धिक संपदा संगठन द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया।

डब्ल्यूआईपीओ के दो मुख्य उद्देश्य हैं–

(i) विश्व भर में बौद्धिक संपदा के संरक्षण को बढ़ावा देना; और

(ii) डब्ल्यूआईपीओ द्वारा प्रशासित संधियों द्वारा स्थापित बौद्धिक संपदा संघों के बीच प्रशासनिक सहयोग सुनिश्चित करना। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, डब्ल्यूआईपीओ, यूनियनों के प्रशासनिक कार्यों को करने के अलावा, कई गतिविधियों को भी अंजाम देता है, जिनमें शामिल हैं–

(i) मानक गतिविधियां, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय संधियों के समापन के माध्यम से बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण और प्रवर्तन के लिए मानदंडों और मानकों को निर्धारित करना शामिल है;

(ii) कार्यक्रम गतिविधियां, जिसमें बौद्धिक संपदा के क्षेत्र में राज्यों को कानूनी और तकनीकी सहायता शामिल हैय

(iii) अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण और मानकीकरण गतिविधियां, जिसमें पेटेंट, ट्रेडमार्क और औद्योगिक डिजाइन प्रलेखन के संबंध में औद्योगिक संपत्ति कार्यालयों के बीच सहयोग शामिल है; और

(iv) पंजीकरण और दाखिल गतिविधियां, जिसमें आविष्कारों के लिए पेटेंट के लिए अंतर्राष्ट्रीय आवेदनों और चिह्नों और औद्योगिक डिजाइनों के पंजीकरण से संबंधित सेवाएं शामिल हैं।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन के कार्य–डब्ल्यूआईपीओ के मुख्य कार्यों में शामिल हैं–

(1) पूरे विश्व में आईपी संरक्षण में सुधार लाने तथा इस क्षेत्र में राष्ट्रीय कानून को सुसंगत बनाने के लिए अभियान विकास में सहायता करना,

(2) बौद्धिक संपदा संरक्षण पर अंतर्राष्ट्रीय समझौतों पर हस्ताक्षर,

(3) पेरिस और बर्न यूनियनों के प्रशासनिक कार्यों को लागू करना ,

(4) बौद्धिक संपदा के क्षेत्र में तकनीकी और कानूनी सहायता प्रदान करना,

(5) जानकारी एकत्रित करना और उसका प्रसार करना, अनुसंधान करना और उनके परिणाम प्रकाशित करना,

(6) अंतर्राष्ट्रीय आईपी संरक्षण को सुविधाजनक बनाने वाली सेवाओं के काम को सुनिश्चित करना,

(7) कोई अन्य उपयुक्त कार्रवाई लागू करना।

बहुपक्षीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का प्रशासन करना डब्ल्यूआईपीओ द्वारा किया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण कार्य है, जिसमें संधियों को जमा करना, राज्यों के संघर्ष निपटान के साधन, संधियों की समीक्षा सुनिश्चित करना आदि शामिल हैं। WIPO वर्ल्डवाइड अकादमी 1998 से आईपी सुरक्षा के क्षेत्र में मानव संसाधन तैयार कर रही है। यह अकादमी एक दूरस्थ शिक्षा केंद्र प्रदान करती है जहाँ आप इंटरनेट की मदद से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। WIPO मध्यस्थता और मध्यस्थता केंद्र 1994 में बनाया गया था, यह विवादों को निपटाने/समाधान करने में मदद करता है।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन की सदस्यता–विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (WIPO) संयुक्त राष्ट्र की एक विशेष एजेंसी है जिसका उद्देश्य एक संतुलित अंतर्राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा (IP) प्रणाली विकसित करना है। WIPO का मिशन यह सुनिश्चित करके नवोन्मेषकों और रचनाकारों का समर्थन करना है कि उनके विचार सुरक्षित रूप से बाजार तक पहुँच सकें और जीवन में सुधार हो सके। WIPO ने193 सदस्य देश, जिनमें 190 संयुक्त राष्ट्र सदस्य देश, कुक आइलैंड्स, होली सी और नियू शामिल हैं फलिस्तीन को स्थायी पर्यवेक्षक का दर्जा प्राप्त है, तथा अन्य संगठनों को डब्ल्यूआईपीओ बैठकों में आधिकारिक पर्यवेक्षक का दर्जा प्राप्त है।

सदस्य बनने के लिए, किसी राज्य को महानिदेशक के पास अनुसमर्थन या परिग्रहण का एक दस्तावेज जमा करना होगा। सदस्य राज्य निर्णय लेने वाले निकायों के माध्यम से संगठन की दिशा, बजट और गतिविधियों को निर्धारित करते हैं। अधिकांश संयुक्त राष्ट्र संगठनों के विपरीत, WIPO सदस्य राज्यों से स्वैच्छिक योगदान पर बहुत अधिक निर्भर नहीं है, और इसके बजाय अपने बजट का 95ः अपनी वैश्विक सेवाओं से संबंधित शुल्क से प्राप्त करता है।

<u>प्रश्न न0 3–</u> पेटेन्ट प्राप्त करने की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए। पेटेन्ट अतिलंघन की कार्यवाही में प्रतिवादी को कौन–कौन से बचाव उपलब्ध है?

<u>उत्तर–</u> पेटेन्ट अधिनियम में पेटेन्ट प्राप्त करने की प्रक्रिया निम्न चरणों में व्यवस्थित है–

(1) आवेदन निवेदित करना

(2) आवेदन का परीक्षण करना

(3) पूर्ण विनिर्देश के प्रतिगृहीत करने पर विरोध

(4) पक्षकरों की सुनवाई

(5) पेटेन्ट का अनुदान एवं मुद्रण

अधिनियम की धारा 6 वर्णन करती है कि कौन–कौन व्यक्ति पेटेन्ट हेतु आवेदन कर सकते है–

(1) ऐसे व्यक्ति जो स्वयं को सत्य एवं प्रथम आविष्कारक होने का दावा करते है।

(2) अथवा उनका समनुदेशिनी

(3) किसी मृतक व्यक्ति के विधिक प्रतिनिधि जो स्वयं आवेदन कर सकता है अपना मृत्यु के पूर्व

1.आवेदन सम्बन्धी उपबन्ध– (धारा 7)– (1) पेटेंट के लिए प्रत्येक आवेदन केवल एक आविष्कार के लिए होगा और निर्धारित प्रपत्र में किया जाएगा तथा पेटेंट कार्यालय में दाखिल किया जाएगा।

(क) पेटेंट सहयोग संधि के अधीन पेटेंट के लिए प्रत्येक अंतरराष्ट्रीय आवेदन, जो भारत को नामित करते हुए फाइल किया जा सकता है, इस अधिनियम के अधीन आवेदन समझा जाएगा, यदि भारत में नियंत्रक के समक्ष भी एक तत्स्थानी आवेदन फाइल किया गया है।,

(ख) उपधारा (1क) में निर्दिष्ट आवेदन की फाइलिंग तारीख और पेटेंट कार्यालय द्वारा अभिहित कार्यालय या निर्वाचित कार्यालय के रूप में संसाधित इसकी पूर्ण विशिष्टता, पेटेंट सहयोग संधि के अधीन दी गई अंतर्राष्ट्रीय फाइलिंग तारीख होगी।,

(2) जहां आवेदन आविष्कार के लिए पेटेंट के लिए आवेदन करने के अधिकार के समनुदेशन के आधार पर किया जाता है, वहां आवेदन के साथ, या आवेदन भरने के पश्चात् विहित अवधि के भीतर, आवेदन करने के अधिकार का सबूत प्रस्तुत किया जाएगा।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक आवेदन में यह कहा जाएगा कि आवेदक के पास आविष्कार है और वह उस व्यक्ति का नाम बताएगा जो सच्चा और प्रथम आविष्कारक होने का दावा करता हैय और जहां ऐसा दावा करने वाला व्यक्ति आवेदक या आवेदकों में से एक नहीं है, वहां आवेदन में यह घोषणा होगी कि आवेदक का मानना है कि इस प्रकार नामित व्यक्ति सच्चा और प्रथम आविष्कारक है।

(4) प्रत्येक ऐसे आवेदन के साथ (जो अभिसमय आवेदन या भारत को नामित करने वाली पेटेंट सहयोग संधि के अधीन दाखिल आवेदन नहीं है) अनंतिम या पूर्ण विनिर्देश संलग्न किया जाएगा।

प्रक्रिया– पेटेन्ट प्राप्त करने के लिए आवेदन पत्र विहित फार्म वर विहित फीस के साथ उचित कार्यालय में जमा किया जाना चाहिए। यदि इस आवेदन–पत्र के साथ पूर्ण विनिर्देश नहीं जमा किया गया है तो आवेदन देने के 12 महीने के अन्दर पूर्ण विनिर्देश जमा कर देना चाहिए यदि ऐसा नही किया जाता तो आवेदन पत्र रद्द मान लिया जायेगा।

आवेदन की परीक्षा– (1) जब धारा 11ख की उपधारा (1) या उपधारा (3) के अधीन निर्धारित तरीके से पेटेंट के लिए आवेदन के संबंध में जांच का अनुरोध किया गया है , तो आवेदन और विनिर्देश तथा उससे संबंधित अन्य दस्तावेजों को नियंत्रक द्वारा यथाशीघ्र परीक्षक को निम्नलिखित विषयों के संबंध में रिपोर्ट देने के लिए भेजा जाएगा, अर्थात–

(क) क्या आवेदन पत्र और विनिर्देश तथा उससे संबंधित अन्य दस्तावेज इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए किसी नियम की अपेक्षाओं के अनुरूप हैं;

(ख) क्या आवेदन के अनुसरण में इस अधिनियम के अधीन पेटेंट प्रदान करने पर आपत्ति का कोई विधिपूर्ण आधार है;

(ग) धारा 13 के अधीन की गई जांच का परिणाम; और

(घ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जा सके।

(2) वह परीक्षक, जिसे उपधारा (1) के अधीन आवेदन और विनिर्देश तथा उससे संबंधित अन्य दस्तावेज निर्दिष्ट किए गए हैं, सामान्यतया नियंत्रक को ऐसी अवधि के भीतर रिपोर्ट देगा, जो विहित की जाए।

एक बार जब पेटेंट आवेदन दाखिल और प्रकाशित हो जाता है, तो अगला कदम पेटेंट आवेदन की जांच करना होगा। आवेदक को आवेदन दाखिल करने की तारीख या प्राथमिकता तिथिश जो भी पहले हो, से ष्अड़तालीसष महीने के भीतर जांच के लिए अनुरोध दायर करना होगा ।

आपत्ति (धारा 9 25(1)– (1) जहां पेटेंट के लिए आवेदन प्रकाशित किया गया है, किन्तु पेटेंट प्रदान नहीं किया गया है, वहां कोई भी व्यक्ति नियंत्रक के समक्ष पेटेंट प्रदान किए जाने के विरुद्ध लिखित रूप में निम्नलिखित आधार पर विरोध प्रस्तुत कर सकता है–

(क) कि पेटेंट के लिए आवेदक या वह व्यक्ति जिसके अधीन या जिसके माध्यम से वह दावा करता है, ने आविष्कार या उसके किसी भाग को उससे या ऐसे व्यक्ति से जिसके अधीन या जिसके माध्यम से वह दावा करता है, गलत तरीके से प्राप्त किया है;

(ख) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में जहां तक दावा किया गया है, आविष्कार दावे की प्राथमिकता तिथि से पूर्व प्रकाशित हो चुका है–

(i) 1 जनवरी, 1912 को या उसके पश्चात भारत में किए गए पेटेंट के लिए आवेदन के अनुसरण में दायर किसी विनिर्देश में; या

(ii) भारत में या अन्यत्र किसी अन्य दस्तावेज में–

बशर्ते कि उप–खंड (ii) में निर्दिष्ट आधार उपलब्ध नहीं होगा, जहां ऐसा प्रकाशन धारा 29 की उप–धारा (2) या उप–धारा (3) के आधार पर आविष्कार की प्रत्याशा का गठन नहीं करता है;

(ग) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में जहां तक दावा किया गया है, आविष्कार आवेदक के दावे की प्राथमिकता तिथि को या उसके पश्चात प्रकाशित पूर्ण विनिर्देश के दावे में दावा किया गया है और भारत में पेटेंट के लिए आवेदन के अनुसरण में दायर किया गया है, जो ऐसा दावा है जिसकी प्राथमिकता तिथि आवेदक के दावे की प्राथमिकता तिथि से पहले की है;

(घ) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में जहां तक दावा किया गया है, वह आविष्कार उस दावे की प्राथमिकता तिथि से पूर्व भारत में सार्वजनिक रूप से ज्ञात था या सार्वजनिक रूप से प्रयुक्त था।

स्पष्टीकरण– इस खंड के प्रयोजनों के लिए, किसी प्रक्रिया से संबंधित आविष्कार, जिसके लिए पेटेंट का दावा किया गया है, दावे की प्राथमिकता तिथि से पहले भारत में सार्वजनिक रूप से ज्ञात या सार्वजनिक रूप से प्रयुक्त माना जाएगा, यदि उस प्रक्रिया द्वारा बनाया गया उत्पाद उस तारीख से पहले ही भारत में आयात किया जा चुका है, सिवाय इसके कि ऐसा आयात केवल युक्तियुक्त परीक्षण या प्रयोग के प्रयोजन के लिए किया गया हो;

(ई) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी भी दावे में जहां तक दावा किया गया है, आविष्कार स्पष्ट है और इसमें स्पष्ट रूप से कोई आविष्कारात्मक कदम शामिल नहीं है, खंड (बी) में उल्लिखित प्रकाशित मामले को ध्यान में रखते हुए या आवेदक के दावे की प्राथमिकता तिथि से पहले भारत में क्या उपयोग किया गया था, इसे ध्यान में रखते हुए;

(च) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे का विषय इस अधिनियम के अर्थ में कोई आविष्कार नहीं है, या इस अधिनियम के अधीन पेटेंट योग्य नहीं है;
(छ) कि पूर्ण विनिर्देशन आविष्कार या उस विधि का पर्याप्त और स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं करता है जिसके द्वारा इसे निष्पादित किया जाना है;
(ज) आवेदक नियंत्रक को धारा 8 द्वारा अपेक्षित सूचना प्रकट करने में असफल रहा है या उसने ऐसी सूचना दी है जो किसी भी महत्वपूर्ण विवरण में उसके ज्ञान के अनुसार मिथ्या थी;
(2) पेटेंट प्रदान किए जाने के पश्चात् किसी भी समय, किन्तु पेटेंट प्रदान किए जाने के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष की अवधि की समाप्ति के पूर्व, कोई भी हितबद्ध व्यक्ति, निम्नलिखित में से किसी भी आधार पर नियंत्रक को विहित तरीके से विरोध की सूचना दे सकेगा, अर्थात–
(क) कि पेटेंटधारक या वह व्यक्ति जिसके अधीन या जिसके माध्यम से वह दावा करता है, ने आविष्कार या उसके किसी भाग को उससे या ऐसे व्यक्ति से जिसके अधीन या जिसके माध्यम से वह दावा करता है, गलत तरीके से प्राप्त किया ह
(ख) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में जहां तक दावा किया गया है, आविष्कार दावे की प्राथमिकता तिथि से पूर्व प्रकाशित हो चुका है।
(3) (क) जहां उपधारा (2) के अधीन विरोध की ऐसी कोई सूचना विधिवत् दी जाती है, वहां नियंत्रक पेटेंटधारक को अधिसूचित करेगा।
(4) विरोध बोर्ड की सिफारिश प्राप्त होने पर तथा पेटेंटधारक और विरोधी को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात नियंत्रक पेटेंट को बनाए रखने या संशोधित करने या रद्द करने का आदेश देगा।
(5) उपधारा (2) के खंड (घ) या खंड (ङ) में उल्लिखित आधार के संबंध में उपधारा (4) के अधीन आदेश पारित करते समय नियंत्रक किसी व्यक्तिगत दस्तावेज या गुप्त परीक्षण या गुप्त उपयोग को ध्यान में नहीं रखेगा।
(6) यदि नियंत्रक उपधारा (4) के अधीन आदेश जारी करता है कि पेटेंट विनिर्देश या किसी अन्य दस्तावेज में संशोधन के अधीन बनाए रखा जाएगा, तो पेटेंट तदनुसार संशोधित माना जाएगा।
पक्षकारों को सुनवायी– नियंत्रक द्वारा विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग। इस अधिनियम में निहित किसी प्रावधान पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जिसके अंतर्गत नियंत्रक को उसके अधीन कार्यवाही में किसी पक्षकार को सुनने या किसी ऐसे पक्षकार को सुनवाई का अवसर देने की आवश्यकता है, नियंत्रक किसी पेटेंट के लिए या किसी विनिर्देश के संशोधन के लिए किसी आवेदक को (यदि आवेदक निर्धारित समय के भीतर ऐसी मांग करता है) इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन नियंत्रक में निहित किसी विवेकाधिकार का आवेदक के विरुद्ध प्रतिकूल रूप से प्रयोग करने से पहले सुनवाई का अवसर देगा।
बशर्ते कि सुनवाई की इच्छा रखने वाला पक्ष, कार्यवाही के संबंध में विनिर्दिष्ट समय–सीमा की समाप्ति से कम से कम दस दिन पूर्व नियंत्रक से ऐसी सुनवाई के लिए अनुरोध करेगा।
प्रश्न न0 4– प्रतिलिप्याधिकार का स्वामी कौन होता है? प्रतिलिप्याधिकार की अनुज्ञप्ति से आप क्या समझते है स्पष्ट कीजिए।
उत्तर– कॉपीराइट अधिनियम, 1957 की धारा 17, लेखक के कॉपीराइट का प्रथम स्वामी होने के सामान्य नियम का अपवाद है। यह धारा केवल यह निर्धारित करती है कि जो व्यक्ति किए जाने वाले कार्य के लिए प्रतिफल का भुगतान करता है, वह कॉपीराइट का प्रथम स्वामी बन जाएगा। आइए इस धारा के बारे में विस्तार से जानें।
कॉपीराइट अधिनियम, 1957 की धारा 17 (ए)– साहित्यिक, नाटकीय और कलात्मक कार्य
धारा 17 का यह खंड साहित्यिक, नाटकीय और कलात्मक कार्यों के बारे में बात करता है। इसमें कहा गया है कि जब भी कोई लेखक किसी समाचार पत्र, पत्रिका, पुस्तक आदि के मालिक के साथ रोजगार या सेवा के दौरान ऐसे काम को प्रकाशित करने के लिए अनुबंध के तहत बनाता है, तो इसके विपरीत किसी समझौते के अधीन, ऐसे समाचार पत्र या पत्रिका का मालिक कॉपीराइट का पहला मालिक बन जाएगा।
चित्रण– यदि 'ए' मिरर नाउ नामक समाचार पत्र एजेंसी में कार्यरत पत्रकार है, तो उसे केवल उस लेख पर लेखकीय अधिकार प्राप्त होगा। लेख का पहला मालिक मिरर नाउ का मालिक होगा।
अधिनियम की धारा 17(बी) अनुसार, जहां किसी व्यक्ति के कहने पर मूल्यवान प्रतिफल के लिए कोई फोटोग्राफ लिया जाता है या कोई पेंटिंग या चित्र बनाया जाता है, या कोई उत्कीर्णन या सिनेमैटोग्राफ फिल्म बनाई जाती है, तो ऐसा व्यक्ति, इसके विपरीत किसी भी समझौते के अभाव में, उसमें कॉपीराइट का पहला मालिक होगा। चिदंबरे बनाम रेंगा में , जहां कोई व्यक्ति कुछ करने के लिए बाध्य होता है, और ऐसे दायित्व के निर्वहन में, वह कुछ हितों को हस्तांतरित करता है, ऐसा हस्तांतरण मूल्यवान प्रतिफल के लिए होता है।
धारा 17 (सी) में यह प्रावधान है कि सेवा या प्रशिक्षुता के अनुबंध के तहत लेखक के रोजगार के दौरान किए गए कार्य के मामले में, जिस पर खंड (ए) या खंड (बी) लागू नहीं होता है, नियोक्ता, इसके विपरीत किसी भी समझौते की अनुपस्थिति में, उसमें कॉपीराइट का पहला मालिक होगा। एक लेखक स्वतंत्र रूप से एक कार्य बना सकता है, या वह सेवा के अनुबंध या सेवा के लिए अनुबंध के तहत एक कार्य बना सकता है।
धारा 17(सीसी) में प्रावधान है कि सार्वजनिक रूप से दिए गए किसी संबोधन या भाषण के मामले में, वह व्यक्ति जिसने ऐसा संबोधन या भाषण दिया है या यदि ऐसे व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति की ओर से ऐसा संबोधन या

भाषण दिया है, तो ऐसा अन्य व्यक्ति उसमें कॉपीराइट का पहला मालिक होगा, भले ही वह व्यक्ति जो ऐसा संबोधन या भाषण देता है, या, जैसा भी मामला हो, वह व्यक्ति जिसकी ओर से ऐसा संबोधन या भाषण दिया जाता है, किसी अन्य व्यक्ति द्वारा नियोजित है जो ऐसे संबोधन या भाषण की व्यवस्था करता है या जिसकी ओर से या जिसके परिसर में ऐसा संबोधन या भाषण दिया जाता है।

कॉपीराइट अधिनियम, 1957 की धारा 17 (डी) रू सरकार द्वारा सौंपा गया कार्य– मान लीजिए कि यदि कोई कॉपीराइट योग्य कार्य सरकार द्वारा प्रस्तुत किए जाने पर बनाया जाता है, तो ऐसी सरकार ऐसे कार्यों से उत्पन्न होने वाले कॉपीराइट की प्रथम स्वामी होगी, जब तक कि पक्षों के बीच इसके विपरीत कोई समझौता न हो।

चित्रण– यदि 'ए' नामक मूर्तिकार को राज्य सरकार द्वारा सड़क पर लगाए जाने वाले राष्ट्रीय नायकों की मूर्ति बनाने के लिए निविदा दी गई है, तो ऐसी मूर्ति से उत्पन्न कॉपीराइट का पहला स्वामित्व राज्य सरकार का होगा।

डंक बनाम जॉर्ज वालर, (1970) 2 डब्ल्यूएलआर 241, में यह माना गया कि प्रशिक्षु एक छात्र है जो अपने व्यापार को सीखने के उद्देश्य से दूसरे से बंधा हुआ है, अनुबंध इस तरह का है कि गुरु पढ़ाता है और दूसरा सीखने के इरादे से गुरु की सेवा करता है। इसलिए, काम शिक्षक का है।

धारा 2(डी) लेखक को परिभाषित करती है, इसमें कहा गया है कि 'लेखकष्'का अर्थ है,–

(1) साहित्यिक या नाटकीय कार्य के संबंध में, कार्य का लेखकय

(2) संगीत कार्य के संबंध में, संगीतकारय

(3) फोटोग्राफ के अलावा कलात्मक कार्य के संबंध में, कलाकारय

(4) फोटोग्राफ के संबंध में, फोटो लेने वाला व्यक्ति, कलाकारय

(5) सिनेमैटोग्राफ फिल्म या ध्वनि रिकॉर्डिंग के संबंध में, निर्माताय और

(6) किसी साहित्यिक, नाटकीय, संगीतमय या कलात्मक कार्य के संबंध में जो कंप्यूटर द्वारा निर्मित है, वह व्यक्ति जो उस कार्य का निर्माण कराता है।

प्रतिलिप्यधिकार द्वारा निम्नलिखित प्रकार के अधिकार का सृजन होता है–

(1) वैधानिक अधिकार– कॉपीराइट स्वामी को इन कार्यों के संबंध में कुछ कार्य करने का विशेष अधिकार देता है, जिसमें कार्य को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने का अधिकार भी शामिल है।

मालिक यह नियंत्रित कर सकता है कि काम को सार्वजनिक स्थान पर कब प्रदर्शित किया जाए, जैसे कि जब इसे टेलीविजन या रेडियो के माध्यम से कई स्थानों पर प्रसारित किया जाए। काम को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने का अधिकार निम्न प्रकार के कामों पर लागू होता हैरू

साहित्यिक कृतियाँ, संगीत कृतियाँ, नाट्य कृतियाँ, नृत्यकला कृतियाँ, पैंटोमाइम्स, चलचित्र और दृश्य–श्रव्य कृतियाँ।

कॉपीराइट अधिनियम स्वामी को अन्य अधिकार भी प्रदान करता है, जैसे कि कार्य को वितरित करने का अधिकार। हालाँकि, वितरण का अधिकार हर मामले में अलग–अलग होता है। उदाहरण के लिए, यदि स्वामी कोई पुस्तक बेचता है, तो पुस्तक को वितरित करने का अधिकार पहली बिक्री के बाद समाप्त हो जाता है, और खरीदार पुस्तक को सेकेंडहैंड सामग्री के रूप में फिर से बेच सकता है। दूसरी ओर, यदि स्वामी कोई पुस्तकालय स्थापित करता है और पुस्तकों को पढ़ने के लिए किराया लेता है, तो कानून इस पर रोक नहीं लगाता है, और समाप्ति का नियम लागू नहीं होता है।

(2) नकारात्मक अधिकार– कॉपीराइट एक नकारात्मक अधिकार है, जिसका अर्थ है लेखक या स्वामी का दूसरों को उसके मूल कार्यों की नकल करने से रोकने का अधिकार। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि किसी कार्य का लेखक हमेशा उसका स्वामी नहीं हो सकता है।

(3) बहुविध अधिकार– पहला अधिकार कॉपीराइट किए गए कार्य को पुनः प्रस्तुत करने का है, दूसरा, कार्य के आधार पर व्युत्पन्न कार्य तैयार करने का अधिकार है, तीसरा, कार्य की प्रतियां जनता को वितरित करने का अधिकार है।

(4) आर्थिक अधिकार– आर्थिक अधिकार वे अधिकार हैं जो लेखक को आर्थिक लाभ प्राप्त करने में मदद करते हैं9. कॉपीराइट अधिनियम, 1957 (1957 का 14) की धारा 14 के अनुसार, कार्यों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए उनके लिए अलग–अलग अधिकार मान्यता प्राप्त हैं। धारा में प्रावधान है कि इसके तहत दिए गए कार्यों को करना या करने के लिए अधिकृत करना लेखक का एकमात्र अधिकार है। भारतीय कानून के तहत सभी प्रकार के कार्यों द्वारा आम तौर पर मान्यता प्राप्त महत्वपूर्ण अधिकार, जिन्होंने बहुत न्यायिक व्याख्या को आकर्षित किया, उनमें प्रजनन अधिकार, वितरण का अधिकार और जनता को कार्य संप्रेषित करने का अधिकार शामिल हैं।

(5) नैतिक अधिकार– नैतिक अधिकार व्यक्तिगत अधिकार हैं जो रचनाकार और उसके काम के बीच संबंध दर्शाते हैं। वे काम के निर्माण पर नियंत्रण देते हैं। नैतिक अधिकारों को फ्रेंच में ष ड्रोइट मोरल ष कहा जाता है। नैतिक अधिकारों से काम के लेखक को कोई सीधा वित्तीय लाभ नहीं मिलता है। वे सामग्री में संशोधन या परिवर्तन से बचने में मदद करते हैं। नैतिक अधिकार लेखक के काम की अखंडता को बनाए रखते हैं। नैतिक अधिकार न तो अनैतिक अधिकारों के विपरीत हैं और न ही कानूनी अधिकारों के।

अनुज्ञप्ति– अनुज्ञप्ति समनुदेशन से भिन्न होती है। अनुज्ञप्ति द्वारा अनुज्ञप्तिधारी अनुज्ञप्ति की शर्तो के अधीन कुछ विशेष अधिकारों को प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त करता है। अनुज्ञप्ति अनुज्ञप्तिधारी को प्रतिलिप्यधिकार में

स्वामित्व नहीं प्रदान करती है जबकि समनुदेशन समनुदेशिती को समनुदेशित हितों का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है। अनुज्ञप्ति और समनुदेशन लिखित और सम्पक रूप से हस्ताक्षरित होते है।

अधिनियम की धारा 2(जे) के अनुसार कॉपीराइट लाइसेंस अनन्य या गैर–अनन्य हो सकता है। कॉपीराइट अधिनियम की धारा 2(जे) में अनन्य लाइसेंस शब्द को परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है और इसमें वह लाइसेंस शामिल है जो लाइसेंसधारी और उसके द्वारा अधिकृत व्यक्तियों को, अन्य सभी व्यक्तियों को छोड़कर, किसी कार्य के कॉपीराइट में शामिल कोई भी अधिकार प्रदान करता है।

अनिवार्य अनुज्ञप्ति का प्रदान किया जाना– यदि रचयिता के लिए अपनी कृति का प्रकाशन रोक लेता है तो ऐसी परिस्थिति में अनिवार्य अनुज्ञप्ति प्रदान की जा सकती है। अनुवार्य अनुज्ञप्ति लोकहित में प्रदान की जाती है।

प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम 1957 की धारा 31 जनता से रोके गए कार्यों में अनिवार्य लाइसेंस–(1) यदि किसी भी समय किसी भी कार्य में कॉपीराइट की अवधि के दौरान, जो सार्वजनिक रूप से प्रकाशित या प्रदर्शित किया गया हो, कॉपीराइट बोर्ड को शिकायत की जाती है कि कार्य में कॉपीराइट का स्वामी–

(ए)कार्य को पुनः प्रकाशित करने या पुनः प्रकाशित करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया है या कार्य को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया है, और ऐसे इनकार के कारण कार्य को जनता से दूर रखा गया है; या

(बी) ऐसे कार्य या ध्वनि रिकॉर्डिंग के मामले में, ऐसी ध्वनि रिकॉर्डिंग में रिकॉर्ड किए गए कार्य को, शिकायतकर्ता द्वारा उचित समझी जाने वाली शर्तों पर, प्रसारण द्वारा जनता तक संप्रेषित करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया है, कॉपीराइट बोर्ड, कार्य में कॉपीराइट के स्वामी को सुनवाई का उचित अवसर देने के पश्चात् तथा ऐसी जांच करने के पश्चात् जिसे वह आवश्यक समझे, यदि वह इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि ऐसे इनकार के आधार उचित नहीं हैं, तो वह कॉपीराइट रजिस्ट्रार को शिकायतकर्ता को कार्य को पुनः प्रकाशित करने, कार्य को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने या कार्य को प्रसारण द्वारा जनता तक पहुंचाने के लिए, जैसा भी मामला हो, लाइसेंस देने का निर्देश दे सकता है, बशर्ते कि कॉपीराइट के स्वामी को ऐसा मुआवजा दिया जाए तथा ऐसे अन्य निबंधन और शर्तों के अधीन हों, जिन्हें कॉपीराइट बोर्ड निर्धारित करेय और उसके पश्चात् कॉपीराइट रजिस्ट्रार ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को लाइसेंस प्रदान करेगा, जो कॉपीराइट बोर्ड की राय में, कॉपीराइट बोर्ड के निर्देशों के अनुसार ऐसा करने के लिए योग्य है या हैं, ऐसे शुल्क का भुगतान करने पर, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।

<u>प्रश्न न0 5–</u> व्यापार चिन्ह से आप क्या समझते है? व्यापार चिनह के कार्य की विवेचना कीजिए। भारत में व्यापार चिन्ह को किस प्रकार संरक्षण प्राप्त है?

<u>उत्तर–</u> व्यापार चिन्ह की आवश्यकता निम्नलिखित प्रयोजनों हेतु है–

(1) उत्पाद की उत्पत्ति एवं उसके गुणों की जानकारी देने के प्रयोजन के लिए।
(2) उत्पाद के विज्ञापन के प्रयोजन के लिए।
(3) उपभोक्ताओं के मन में उत्पाद के प्रति आकर्षण पैदा करने के प्रयोजनों हेतु।
(4) उत्पाद की बिक्री की बढ़ोत्तरी के लिए।
(5) उत्पाद की गुणवत्ता की गारण्टी देने के प्रयोजन के लिए।
(6) एक उत्पाद की दूसरे उत्पाद से पृथक करने के लिए। (7) उत्पाद की गुडविल को संरक्षण प्रदान करने के प्रयोजन के लिए।

व्यापार चिन्ह अधिनियम, 1999 का उद्देश्य व्यापार चिन्हों के पंजीकरण और बेहतर सुरक्षा के लिए यह अधिनियम बनाया गया है। यह अधिनियम 30 दिसम्बर, 1999 से सम्पूर्ण भारत में लागू हो गया। व्यापार चिन्ह नियमावली, 2002 अधिनियमित की गई है। इसके अलावा ज्तंकम डंतो (Application and Appeals to the Intellectual Property Appellate Board) नियमावली 2003 एवं Intellectual Appelletate Board (Procedure) नियमावली 2003 भी पारित किया गया है। व्यापार चिन्ह अधिनियम, 1999 को काफी विस्तृत कर दिया गया है।

इस अधिनियम के निम्नलिखित उद्देश्य है–

(1) व्यापार चिन्ह के पंजीकरण की व्यवस्था।
(2) व्यापार चिन्ह के उपयोग के अधिकार को बेहतर बनाना।
(3) कपटपूर्ण व्यापार चिन्हों के स्वत्वधारी के व्यापार चिन्ह को सुरक्षा प्रदान करना।
(4) माल एवं सेवाओं के लिए व्यापार चिन्हों का रजिस्ट्रेशन करना।
(5) व्यापार चिन्हों से सम्बन्धित विधि का संशोधन एवं समेकन करना।
(6) व्यापार चिन्ह के रजिस्टर्ड स्वत्वधारी को रजिस्टर्ड व्यापार चिन्ह में एकाधिकार प्रदान करना।
(7) व्यापार चिन्ह के उल्लंघन को रोकने के लिए शास्ति (Pealty) का उपबंध करना
(8) पैकेज (Package),
(9) अनुज्ञात उपयोग (Permitted Package),
(10) सेवा (Service),
(11) पण्य विवरण (Trade Description)
(12) व्यापार चिन्ह (Trade marks)
(13) सुविख्यात व्यापार चिन्ह (Well known Trade marks)। सेवाओं की व्यवस्थ उस और सेवाओं।

विद्यमान रजिस्टर्ड व्यापार चिन्ह का अर्थ अधिनियम की धारा 2 (4)– इस सम्बन्ध में 2 (4) निम्नलिखित उपवन्ध करती है–

इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए श्विद्यमान रजिस्ट्रीकृत व्यापार चिन्हश से इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व, व्यापार और पण्य–वस्तु चिन्ह अधिनियम, 1958 (1958) का 43) के अधीन रजिस्ट्रीकृत व्यापार चिन्ह अभिप्रेरित है।

इस प्रकार व्यापार अधिनियम, 1999 के प्रयोजनार्थ विद्यमान रजिस्टर्ड व्यापार चिन्ह से तात्पर्य व्यापार चिन्ह अधिनियम लागू होने के ठीक पूर्व, व्यापार एवं पण्य–वस्तु चिन्ह अधिनियम, 1958 के अधीन

प्रश्न न0 6–व्यापार चिन्ह अधिनियम 1999 के अन्तर्गत अपीलेट बोर्ड के गठन, शक्तियाँ और कार्यों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर– 1999 के ट्रेडमार्क अधिनियम की धारा 83 बौद्धिक संपदा अपीलीय बोर्ड (IPAB) की स्थापना करती है। IPAB की संरचना, शक्तियाँ और कार्य इस प्रकार हैं–

संघटन

आईपीएबी में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्य होते हैं, जिन्हें केन्द्र सरकार नियुक्त कर सकती है।

पॉवर्स– आईपीएबी को ट्रेडमार्क अधिनियम और कॉपीराइट अधिनियम द्वारा क्षेत्राधिकार, शक्तियां और प्राधिकार प्राप्त हैं।

कार्य–आईपीएबी अपने अधिकार क्षेत्र, शक्तियों और अधिकारों का प्रयोग बेंचों के माध्यम से करता है। यदि बेंच के सदस्य किसी मुद्दे पर असहमत हैं, तो उन्हें अपने मतभेदों को बताना चाहिए और मामले को अध्यक्ष के पास भेजना चाहिए। अध्यक्ष या तो मामले की सुनवाई खुद कर सकते हैं या किसी अन्य सदस्य या सदस्यों से इसकी सुनवाई करवा सकते हैं। मामले की सुनवाई करने वाले सदस्यों की बहुमत की राय, जिसमें मूल सदस्य भी शामिल हैं, अंतिम निर्णय होगी।

1999 के ट्रेडमार्क अधिनियम की धारा 84 अपीलीय बोर्ड की संरचना, अधिकार क्षेत्र, शक्तियाँ और अधिकार स्थापित करती है। अपीलीय बोर्ड में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्य होते हैं जिन्हें केंद्र सरकार उचित समझती है। अपीलीय बोर्ड की बेंच भी अपने अधिकार क्षेत्र, शक्तियों और अधिकार का प्रयोग कर सकती हैं। एक बेंच में एक न्यायिक सदस्य और एक तकनीकी सदस्य होता है, और यह आधिकारिक राजपत्र में केंद्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर बैठता है।

अधिनियम की धारा 85 के अनुसार अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए योग्यताएं–

(1)कोई व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए तब तक योग्य नहीं होगा जब तक कि वह–

(ए)किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रह चुका है; या

(बी)कम से कम दो वर्षों तक उपाध्यक्ष का पद संभाला हो।

(2) कोई व्यक्ति उपाध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए तब तक योग्य नहीं होगा, जब तक कि वह–

(ए) कम से कम दो वर्षों तक न्यायिक सदस्य या तकनीकी सदस्य का पद धारण किया हो; या

(बी)भारतीय विधिक सेवा का सदस्य रहा हो तथा उस सेवा के ग्रेड–I या किसी उच्चतर पद पर कम से कम पांच वर्ष तक कार्य किया हो।

(3)कोई व्यक्ति न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तब तक योग्य नहीं होगा, जब तक कि वह–

(ए)भारतीय विधिक सेवा का सदस्य रहा हो तथा उस सेवा के ग्रेड–I में कम से कम तीन वर्ष तक पद पर रहा हो; या

(बी)कम से कम दस वर्षों तक सिविल न्यायिक कार्यालय में कार्य किया हो।

(4)कोई व्यक्ति तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तब तक योग्य नहीं होगा, जब तक कि वह–

(ए) इस अधिनियम के अधीन या व्यापार और पण्य वस्तु चिह्न अधिनियम, 1958 (1958 का 43) के अधीन या दोनों के अधीन कम से कम दस वर्ष तक न्यायाधिकरण के कार्य किए हों और कम से कम पांच वर्ष तक संयुक्त रजिस्ट्रार के पद से अन्यून पद पर कार्य किया हो; या

(बी) कम से कम दस वर्षों से ट्रेडमार्क कानून में सिद्ध विशेष अनुभव के समर्थक रहे हैं।

(5) उपधारा (6) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और प्रत्येक अन्य सदस्य की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी।

(6)किसी व्यक्ति की अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बिना नहीं की जाएगी।

अधिनियम की धारा 91 के तहत अपील बोर्ड को अपीलें.–

(1)इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन रजिस्ट्रार के किसी आदेश या निर्णय से व्यथित कोई व्यक्ति, उस तारीख से तीन महीने के भीतर अपील बोर्ड के समक्ष अपील कर सकेगा, जिसको वह आदेश या निर्णय, जिसके विरुद्ध अपील की जानी है, अपील करने वाले ऐसे व्यक्ति को संसूचित कर दिया गया हो।

(2) यदि कोई अपील उपधारा (1) के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के पश्चात प्रस्तुत की जाती है तो उसे स्वीकार नहीं किया जाएगा।

परन्तु यह कि कोई अपील, विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के पश्चात् भी स्वीकार की जा सकेगी, यदि अपीलकर्ता अपील बोर्ड को यह समाधान कर दे कि उसके पास विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर अपील न करने के लिए पर्याप्त कारण था।

(3) अपीलीय बोर्ड के समक्ष अपील निर्धारित प्रपत्र में की जाएगी और निर्धारित तरीके से सत्यापित की जाएगी तथा उसके साथ उस आदेश या निर्णय की प्रति संलग्न की जाएगी जिसके विरुद्ध अपील की गई है तथा निर्धारित शुल्क भी संलग्न किया जाएगा।

अधिनियम की धारा 92 के तहत. अपील बोर्ड की प्रक्रिया और शक्तियां।–

(1) अपील बोर्ड सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में अधिकथित प्रक्रिया से आबद्ध नहीं होगा, अपितु प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित होगा तथा इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अपील बोर्ड को अपनी सुनवाई के स्थान और समय नियत करने सहित अपनी स्वयं की प्रक्रिया विनियमित करने की शक्तियां होंगी।

(2)अपील बोर्ड को इस अधिनियम के अधीन अपने कार्यों के निर्वहन के प्रयोजन के लिए वही शक्तियां प्राप्त होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन निम्नलिखित विषयों के संबंध में किसी वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय में निहित होती हैं, अर्थात्–

(ए)साक्ष्य प्राप्त करना;

(बी) गवाहों की जांच के लिए कमीशन जारी करना;

(सी) किसी भी सार्वजनिक रिकॉर्ड की मांग करना; और

(डी) कोई अन्य विषय जो निर्धारित किया जा सकता है।

(3) अपील बोर्ड के समक्ष कोई कार्यवाही भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 और 228 के अर्थ में तथा धारा 196 के प्रयोजन के लिए न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी और अपील बोर्ड दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के सभी प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा।

ट्रेड मार्क्स अधिनियम, 1999 की धारा 92(2) में कहा गया है कि अपीलीय बोर्ड के पास सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत किसी मुकदमे की सुनवाई करते समय सिविल कोर्ट के समान अधिकार हैं। इन शक्तियों में शामिल हैंरू साक्ष्य प्राप्त करना, गवाहों की जांच करने के लिए कमीशन जारी करना, सार्वजनिक रिकॉर्ड का अनुरोध करना, और कोई अन्य मामले जो निर्धारित किए जा सकते हैं।

ट्रेड मार्क्स अधिनियम, 1999 में अपीलीय बोर्ड की संरचना के बारे में भी प्रावधान शामिल हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी बेंच के सदस्य किसी मुद्दे पर असहमत हैं, तो उन्हें उस मुद्दे को बताना चाहिए और उसे अध्यक्ष को संदर्भित करना चाहिए। अध्यक्ष या तो मुद्दों को सुन सकते हैं या मामले को सुनवाई के लिए किसी अन्य सदस्य या सदस्यों को सौंप सकते हैं। मामले की सुनवाई करने वाले सदस्यों की बहुमत की राय परिणाम निर्धारित करेगी।

(2) अपील बोर्ड को इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए वही शक्तियां प्राप्त होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय निम्नलिखित विषयों के संबंध में सिविल न्यायालय में निहित होती हैं, अर्थातरू– (क) साक्ष्य प्राप्त करनाय (ख) साक्ष्य के लिए कमीशन जारी करना।

ट्रेड मार्क्स अधिनियम, 1999 की धारा 92(3) में कहा गया है कि अपीलीय बोर्ड के समक्ष कोई भी कार्यवाही न्यायिक मानी जाएगी। अपीलीय बोर्ड के पास निम्नलिखित शक्तियाँ और कार्य हैंरू साक्ष्य प्राप्त करना, गवाहों की जांच के लिए कमीशन जारी करना और सार्वजनिक रिकॉर्ड की मांग करना।

यदि किसी बेंच के सदस्यों की किसी मुद्दे पर अलग–अलग राय है, तो उन्हें अपने मतभेदों को बताना चाहिए और मामले को अध्यक्ष के पास भेजना चाहिए। अध्यक्ष या तो खुद मुद्दों पर सुनवाई कर सकते हैं या किसी अन्य सदस्य से मामले की सुनवाई करवा सकते हैं। मामले की सुनवाई करने वाले सदस्यों की बहुमत की राय, जिसमें पहले सुनवाई करने वाले सदस्य भी शामिल हैं, निर्णय निर्धारित करेगी।

अधिनियम की धारा 93 के अन्तर्गत अधिनियम की धारा 91 (1) में वर्णित रजिस्ट्रार के आदेश या निर्णय के विरूद्ध अपील के सम्बन्ध में अपील बोर्ड के अतिरिक्त कोई न्यायालय या प्राधिकारी अपनी अधिकारिता, शक्तियों या प्राधिकार का प्रयोग करने के लिए अधिकृत नहीं होता है।

पद धारण न करने पर सभापति, उपसभापति या अन्य सदस्य अपील बोर्ड या रजिस्ट्रार के समक्ष हाजिर नहीं होते है। (धारा 94)

अपील बोर्ड के अन्तरिम आदेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है, लेकिन बोर्ड द्वारा अपील या इससे सम्बन्धित किसी कार्यवाही में व्यादेश या रोक या आदेश या किसी अन्य राति से कोई अन्तिम आदेश तक नहीं जारी किया जाता है जब तक कि ऐसी अपील और ऐसे अन्तरिम आदेश के अभिभावक के समर्थन में सभी दस्तावेजों की प्रतियाँ उस पक्षकार को नहीं दे दी जाती है, जिसके विरूद्ध अपील की गई है या किया जाना प्रस्तावित है। अन्तरिम आदेश जारी करने से पूर्व अपील बोर्ड द्वारा पक्षकार को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाता है।

<u>प्रश्न न0 7–</u> समनुदेशन क्या है? प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम, 1957 में प्रावधानित समनुदेशन के ढंग का वर्णन कीजिए।

<u>उत्तर–</u> प्रतिलिप्यधिकार का समकिसी भी व्यक्ति को निर्माता की अनुमति के बिना किसी मूल लेखन, पेंटिंग, नाटकीय उत्पादन, मूर्तिकला आदि की नकल करने, पुनरुत्पादन करने, प्रकाशित करने या बेचने का अधिकार नहीं

है। इस प्रकार, कानून कॉपीराइट के स्वामी (यानी निर्माता) को कॉपीराइट के स्वामित्व को किसी तीसरे पक्ष को हस्तांतरित करने का अधिकार प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, एक पूरी फिल्म बनाने के मामले में – सभी रचनात्मक व्यक्ति अपने विचार के साथ प्रासंगिक कार्यों में बदल कर निर्माता के पास आते हैं, रॉयल्टी के बदले में अपने काम में मौजूद अपने अधिकारों को सौंपते हैं। फिर इन कार्यों को एक पूरी फिल्म बनाने के लिए सारांशित किया जाता है। हाँ, यह प्रक्रिया इतनी आसान नहीं है और इसमें कई सवाल शामिल हैं जो असाइनमेंट के समय और खासकर उसके बाद उठते हैं।

प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम, 1957 की धारा 18 के अन्तर्गत किसी विद्यमान कार्य में कॉपीराइट का स्वामी या किसी भावी कार्य में कॉपीराइट का भावी स्वामी किसी व्यक्ति को कॉपीराइट पूर्णतः या आंशिक रूप से और सामान्य रूप से या सीमाओं के अधीन और कॉपीराइट की संपूर्ण अवधि या उसके किसी भाग के लिए कॉपीराइट सौंप सकता है। बशर्ते कि किसी भी भावी कार्य में कॉपीराइट के हस्तांतरण के मामले में, हस्तांतरण तभी प्रभावी होगा जब कार्य अस्तित्व में आ जाएगा।

चूंकि किसी कॉपीराइट का समनुदेशिती कॉपीराइट में समाविष्ट किसी अधिकार का हकदार हो जाता है, इसलिए समनुदेशिती को समनुदेशित किए जाने वाले अधिकारों के संबंध में, तथा समनुदेशक को स
मनुदेशित न किए जाने वाले अधिकारों के संबंध में, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए कॉपीराइट का स्वामी माना जाएगा और इस अधिनियम के उपबंध तदनुसार प्रभावी होंगे।

इस धारा में, किसी भावी कार्य में कॉपीराइट के हस्तांतरण के संबंध में 'असाइनी' पद में असाइनी के विधिक प्रतिनिधि भी शामिल हैं, यदि असाइनी की मृत्यु कार्य के अस्तित्व में आने से पहले हो जाती है।

खेमराय बनाम गर्ग कं. ए0आई0आर0 1975 दिल्ली 130 के मामले में कोर्ट ने स्पष्ट किया है कि अधिनियम की धारायें 17 और 18 यह सुनिश्चित करती है कि कॉपीराइट कहाँ निहित होता है। यदि लेखक द्वारा प्रतिफल के बदले प्रकाशक के लिए कृति की रचना की जाती है तो ऐसी कृति में कॉपीराइट, किसी तत्प्रतिकूल संविदा के अधीन प्रकाशक निहित होता है। धारा 18 के अनुसार यदि कॉपीराइट प्रकाशक को समनुदेशित किया जाता है तो समनुदेशित अधिकारों के बारे में प्रकाशक को प्रतिलिप्यधिकार का स्वामी माना जाता है और प्रतिलिप्यधिकार प्रकाशक में निहित होता है।

यदि किसी प्रतिलिप्यधिकार का समनुदेशिती उस प्रतिलिप्यधिकार में समाविष्ट किसी अधिकार का हकदार हो जाता है जो वहाँ ऐसे समनुदेशित अधिकारों के बारे में समनुदेशिती को और समनुदेशित न किये गये अधिकारों के बारे में समनुदेशक को कॉपीराइट का स्वामी माना जाता है।

इस धारा में अभिव्यक्त किसी भावी कृति में कॉपीराइट के समनुदेशन के बारे में 'समनुदेशिती के अन्तर्गत उस समनुदेशिती का विधिक प्रतिनिधि आता है, यदि समनुदेशिती उस कृति के अस्तित्व में आने से पहले मर जाता है।

समनुदेशन का ढंग– प्रतिलिप्यधिकार अधिकार, 1957 की धारा 19(1) के अनुसार, किसी कृति में प्रतिलिप्यधिकार के समनुदेशन को विधिमानय होने के लिए यह आवश्यक है कि यह लिखित और समनुदेशक या उसके द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत अभिकर्ता हस्ताक्षरित हो।

के0ए0 वेणुगोपाल बनाम सूर्यकान्त कामथ, ए0आई0आर0 (1992) कर्नाटक 1 अधिनियम के अन्तर्गत समनुदेशन विलेख में निम्नलिखित का अन्तर्विष्ट किया जाना अधिनियम द्वारा अपेक्षित है–

(1) धारा 19(2) में जिस कृति के बारे में समनुदेशन किया जाना है उसकी पहचान,

(2) समनुदेशित अधिकारों और ऐसे समनुदेशन का कालावधि तथा राज्यक्षेत्रीय विस्तार और

(3) समनुदेशन के चालू रहने के दौरान लेख या उसके विधिक वारिसों को संदेश स्वामित्वों की रकम,यदि कोई हो, और इस बात का उल्लेख होना चाहिये कि समनुदेशन पक्षकारों द्वारा पारम्परिक रूप से तय की गई शर्तों पर संशोधन (रिवीजन) आगे लागू करने या समाप्त करने की शर्त के अध्यधीन होगा।

जहाँ समनुदेशिती, समनुदेशन की तारीख के एक वर्ष की अवधि के भीतर इस धारा की अन्य उपधाराओं में से किसी के अधीन उसे समनुदेशित अधिकार का प्रयोग नहीं करता है, तो उन अधिकारों के सम्बन्ध में समनुदेशन को उक्त अवधि को समाप्ति के बाद रद्द हुआ समझा जाएगा जब तक कि उस समनुदेशन में अन्यथा विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है। (धारा 19(4)

धारा 19 (5) के अनुसार, यदि समनुदेशन की अवधि का अभिकथन नहीं किया गया है, तो वह समनुदेशन की तारीख से पाँच वर्ष होने के रूप में समझी जायेगी। यदि अधिकारों के समनुदेशन का राज्य क्षेत्रीय विस्तार विनिर्दिष्ट नहीं किया जाता है तो यह समझा जाएगा कि उसका विस्तार भारत के भीतर है। धारा 19(6), धारा 19 की उपधारा (7) के अनुसार, उपर्युक्त प्रावधान प्रतिलिप्यधिकार (संशोधन) अधिनियम, 1994 के प्रवृत्त होने के पूर्व किये भी किया जा सकता है।

स्मनुदेशन को बिना शर्त के भी किया जा सकता है। इसकी अवधि की कोई सीमा नहीं होती है, यह निश्चित अवधि के लिये भी किया जा सकता है तथा सम्पूर्ण अवधि के लिये भी किया जा सकता है।

अतः प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम की धारा 18 के अनुसार, किसी भावी कृति में प्रतिलिप्यधिकार का होने का स्वामी, प्रतिलिप्यधिकार को या पूर्णतः या भागतः और या तो सामान्यता या निर्बन्धनों के अधीन या तो प्रतिलिप्यधिकार की सम्पूर्ण अवधि या उसके किसी भाग के लिये, किसी व्यक्ति को समनुदेशित कर सकेगा लेकिन समनुदेशन कृति के अस्तित्व में आने पर ही प्रभावशील होगा।

प्रश्न न0 8– आविष्कार क्या है? पेटेन्ट अधिनियम 1970 (पेटेन्ट संशोधन) अधिनियम 2002 से यथा (संशोधित) के अन्तर्गत कौन से आविष्कार पेटेन्ट योग्य है? बताइए।

उत्तर– एक आविष्कार का किसी भी रूप में उपयोग करने हेतु पेटेन्ट जरूरी है। आविष्कार पेटेन्ट की विषय–वस्तु होता है जिसे पेटेन्ट के माध्यम से सरंक्षण प्रदान किया जाता है।

पेटेन्ट अधिनियम, 1970 की धारा 2(1) (ञ) या 2(जे) में आाविष्कार की परिभाषा इस प्रकार है– आविष्कार से अभिप्रेत है कोई नवीन और उपयोगी–

(1) कला, प्रक्रिया, विनिर्माण का ढंग,
(2) मशीन, उपकरण या अन्य वस्तु,
(3) विनिर्माण द्वारा उत्पादित पदार्थ,

और इनमें से किसी का कोई नवीन और उपयोगी सुधार और कथित आविष्कार सम्मिलित है।

आविष्कार की एक नयी परिभाषा पेटेन्ट (संशोधन) अधिनियम, 2002 ,द्वारा प्रतिस्थातित की गई है जिसमें आाविष्कार से तात्पर्य एक नवीन उत्पाद या प्रक्रिया जिसमें आविंष्कारशील उपाय अन्तर्ग्रस्स है और जो औद्योगिक उपयोग के योग्य है। अधिनियम की धरा 2(1) (ञ) (क) के अनुसार आविष्कारशील उपाय से आविष्कार से विशिष्टता में विद्यमान ज्ञान की तुलना जिसमें तकनीकी अभिवृद्धि सम्मिलित है या आर्थिक महत्व अथवा दोनों से सम्बद्ध है और आविष्कार की कला में दक्ष व्यक्ति को स्पष्ट नहीं होती है, अभिप्रेत है।

आविष्कार से सम्बन्धित वस्तु के सन्दर्भ में पेटेन्ट परिनियमावली 2003 के नियम 2 (ग) के अन्तर्गत प्रावधान किया गया है जिसके अनुसार वस्तु में कोई पदार्थ या सामान या कोई संयंत्र, मशीनरी या उपकरण चाहे भू–बद्ध हो या न हो, सम्मिलित है। इस प्रकार एक आविष्कार का सम्बन्ध कमात्र उत्पाद से न होकर प्रक्रिया से भी होता है, जिसका औद्योगिक उपयोग किया जा सके। किसी नवीन उत्पाद या उसके विनिर्माण की नवीन प्रक्रिया या किसी तकनीकी समस्या के समाधान को भी पेटेन्टकृत किया जा सकता है। आविष्कार को ही पेटेन्टकृत किया जाता है अतः इसके लिए जरूरी है कि आविष्कार पेटेन्ट योग्य हो, इसमें आविष्कारशील उपाय सम्मिलित होना चाहिए, अस्पश्ट या अप्रकट होना चाहिए, औद्योगिक उपयोग के योग्य होना चाहिए, और आविष्कार ऐसे विषय से जुड़ा हो जिसे अधिनियम द्वारा प्रतिषिद्ध हयिा गया हो।

विश्वनाथ प्रसादा राधेश्याम बनाम एच0एम0 इन्डस्ट्रीज, ए0आई0आर0 (1982) एस0सी0 1444 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया जाता कि ''कोई विचार या सिद्धान्त जिसकी प्रकृति अमूर्त होती है, पेटेन्ट योग्य नहीं होता है। पेटेन्ट के द्वारा आविष्कार का परिणामी उत्पाद संरक्षित किया जाता है। किसी ज्ञात उत्पाद या प्रक्रिया में सुधार यदि इसका परिणाम नवीन उत्पाद या प्रक्रिया के रूप में या अपेक्षाकृत अधिक सस्ता उत्पाद या प्रक्रिया के रूप में प्राप्त होता है तो पेटेन्ट द्वारा संरक्षण के योग्य होता है।

यह पेटेन्ट विधि का मौलिक सिद्धान्त है कि पेटेन्ट केवल आविष्कार को ही प्रदान किया जाता है जिसे नवीन और उपयोगी होना चाहिए।

थामसन बैन्ट बनाम कन्ट्रोलर ऑफ पेटेंट्स एण्ड डिजाइन्स, ए0आई0आर0 1989 दिल्ली 249 के मामले में तथा अन्य कई मामलों में न्यायालय ने सदैव यह दृष्टिकोण अपनाया है कि पेटेन्ट योग्य आविष्कार नवीन विनिर्माण होने के अलावा उपयोग भी होना चाहिए।

हंफसन बनाम सायर, (1887) 4 आर0पी0सी 407 के मामले में कोर्ट द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया कि यदि जनता को किसी भी तरीके से आविंष्कार के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती है तो वास्तविक या प्रथम आविष्कार या किसी अन्य व्यक्ति को पेटेन्ट अनुदत्त नही किया जा सकता है क्योंकि जनता को आविष्कार का उपयोग करने से रोका नही जा सका।

इस प्रकार पेटेन्ट योग्य होने के लिए आविष्कार का अर्थ नवीन उत्पाद या प्रक्रिया से, जिसमें आविष्कारशील उपाय सम्मिलित है और आविष्कार औद्योगिक उपयोग के योग्य होना चाहिए। आविष्कार ऐसे उत्पाद, वस्तु या प्रक्रिया से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए जो पेटेन्ट अधिनियम द्वारा प्रतिषिद्ध हो।

आविष्कार पेटेन्ट योग्य– भारतीय पेटेंट अधिनियम 1970 के अनुसार, कुछ आविष्कार धारा 3 और 4 के अंतर्गत पेटेंट योग्य नहीं हैं। इनमें शामिल हैं–

(1) तुच्छ या सार्वजनिक व्यवस्था के विपरीत
(2) नैतिकता, सार्वजनिक स्वास्थ्य या पर्यावरण के विपरीत
(3) वैज्ञानिक खोजें
(4)ज्ञात पदार्थों के नए रूप
(5) कृषि या बागवानी विधियाँ
(6) मनुष्यों या पशुओं के उपचार के लिए नैदानिक, चिकित्सीय या शल्य चिकित्सा पद्धतियाँ
(7) पौधे और जानवर, सूक्ष्मजीवों को छोड़कर
(8) गणितीय या व्यावसायिक विधियाँ, कंप्यूटर प्रोग्राम या एल्गोरिदम
(9) साहित्यिक, नाटकीय, संगीतमय या कलात्मक कार्य, जिनमें सिनेमैटोग्राफिक कार्य और टेलीविजन प्रोडक्शन शामिल हैं
(10) मानसिक कार्य करने या खेल खेलने के लिए योजनाएँ, नियम या विधियाँ

(11) सूचना प्रस्तुति
(12) एकीकृत परिपथों की स्थलाकृतियाँ
(13) पारंपरिक ज्ञान
(14) फार्मास्यूटिकल क्षेत्र में वृद्धिशील प्रगति
धारा 4 के अनुसार परमाणु शक्ति का पेटेन्ट नहीं हो सकता है।

पेटेन्ट अनुदान की शर्तें– आईपीए 1970 की धारा 47 जिसका शीर्षक है 'पेटेंट का अनुदान कुछ शर्तों के अधीन होना चाहिए' पेटेंट देने के लिए कुछ शर्तें बताती है। इस धारा के अनुसार, सरकार किसी भी पेटेंट उत्पाद या किसी प्रक्रिया द्वारा बनाए गए उत्पाद को श्केवल इसके उपयोगश के उद्देश्य से आयात कर सकती है या बना सकती है या बनवा सकती है ख्8,। इस धारा के अनुसार, सरकार सार्वजनिक सेवा के लिए सरकारी औषधालयों या अस्पतालों में शैक्षिक निर्देश और पेटेंट दवाओं का वितरण कर सकती है। प्रक्रिया और उत्पाद दोनों पेटेंट को सरकार द्वारा केवल अपने उपयोग के उद्देश्य से आयात किया जा सकता है।

पेटेन्टी के अधिकार– भारत में, पेटेंट अवधि के दौरान पेटेंटधारक को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं–

पेटेंट का उपयोग करने का अधिकार–पेटेंटधारक को व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए पेटेंट किए गए आविष्कार को बनाने, उपयोग करने, बेचने, वितरित करने या लाइसेंस देने का विशेष अधिकार है। इसमें पेटेंट की गई विधि या उत्पाद का उपयोग करने का अधिकार शामिल है। पेटेंटधारक अपने एजेंटों या लाइसेंसधारियों के माध्यम से इन अधिकारों का प्रयोग कर सकता है।

दूसरों को बाहर करने का अधिकार– पेटेंटधारक को दूसरों को उनकी सहमति के बिना आविष्कार बनाने, उपयोग करने, बेचने या आयात करने से रोकने का अधिकार है। यह अधिकार सीमित समय सीमा के लिए वैध है, आमतौर पर पेटेंट आवेदन दाखिल करने की तारीख से 20 साल तक। जब तक आवश्यक नवीनीकरण शुल्क का भुगतान किया जाता है, तब तक पेटेंट लागू रहता है।

कानूनी कार्रवाई करने का अधिकार– पेटेंटधारक अपने पेटेंट अधिकारों के किसी भी अनधिकृत उपयोग या उल्लंघन के खिलाफ कानूनी कार्रवाई कर सकता है।

पेटेंटधारक के दायित्व–पेटेंट के स्वामी के रूप में, पेटेंटधारक पर पेटेंट में अपने अधिकारों को बनाए रखने और लागू करने के लिए विशिष्ट दायित्व होते हैं। पेटेंटधारक के इन दायित्वों में शामिल हैं–

वैधानिक और रखरखाव शुल्क का भुगतान करने का कर्तव्य– पेटेंट प्राप्त करने के लिए पंजीकरण प्रक्रिया से जुड़ी सभी वैधानिक लागतों का भुगतान करना पेटेंटधारक के लिए अनिवार्य है। पेटेंट अधिनियम की धारा 142 में उल्लिखित इन शुल्कों का भुगतान न करने पर पेटेंट विचार के लिए अयोग्य हो जाता है।

पेटेंट का खुलासा करने का कर्तव्य– 1970 के पेटेंट अधिनियम की धारा 8 के अनुसार, पेटेंटधारक को समाज के समक्ष नवाचार का खुलासा करना चाहिए। पेटेंटधारक के इस दायित्व में पेटेंट के लिए आवेदन करते समय या आवेदन जमा करने के छह महीने के भीतर दूरस्थ अनुप्रयोगों में प्रलेखित समान नवाचारों के बारे में सभी आवश्यक जानकारी प्रकट करना शामिल है।

परीक्षा के लिए अनुरोध करने का कर्तव्य– भारतीय पेटेंट अधिनियम, 1970 की धारा 11बी के अनुसार, पेटेंटधारक को निर्धारित समय के भीतर जांच का अनुरोध करने का दायित्व है। किसी भी पेटेंट आवेदन की जांच तब तक नहीं की जाएगी जब तक कि आवेदक या किसी इच्छुक पक्ष द्वारा ऐसा अनुरोध न किया जाए।

आविष्कार पर काम करने का कर्तव्य–पेटेंटधारक को भारत में आविष्कार पर सक्रिय रूप से काम करने के लिए बाध्य किया जाता है, या तो उत्पाद का निर्माण करके या दूसरों को इसका लाइसेंस देकर। पेटेंटधारक के इस दायित्व का उद्देश्य पेटेंटधारक को आविष्कार को केवल अपने पास रखने से रोकना है, इसके विकास में योगदान दिए बिना। पेटेंट किए गए उत्पादों को जनता को उचित कीमतों पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए, जो जनता की उचित आवश्यकताओं को पूरा करते हों।

आपत्तियों का जवाब देने का कर्तव्य– यदि पेटेंट परीक्षक प्रथम परीक्षा रिपोर्ट (एफईआर) में आपत्ति उठाते हैं, तो इन आपत्तियों का जवाब देना पेटेंटधारक का दायित्व है। एफईआर की तिथि से एक वर्ष के भीतर स्पष्टीकरण न मांगने पर पेटेंटधारक का आवेदन स्वतः ही अस्वीकार हो सकता है।

पेटेंट का दुरुपयोग न करने का कर्तव्य– पेटेंटधारक को कानून या नियमों का उल्लंघन करने, सार्वजनिक हितों को नुकसान पहुंचाने या बाजार पर गलत तरीके से हावी होने के लिए पेटेंट का उपयोग करने से प्रतिबंधित किया गया है। इसके अतिरिक्त, विज्ञापन, विपणन या प्रचार सामग्री में आविष्कार के बारे में गलत या भ्रामक बयान देने की अनुमति नहीं है। पेटेंटधारक का यह दायित्व है कि वह अपने पेटेंट का नैतिक उपयोग सुनिश्चित करे।

पेटेंट अधिकारों की सीमाएं–यद्यपि पेटेंट अधिकार विशिष्ट विशेषाधिकार प्रदान करते हैं, वे निरपेक्ष नहीं हैं और भारतीय पेटेंट अधिनियम 1970 में उल्लिखित कुछ सीमाओं के अधीन हैं। प्रमुख सीमाएँ हैं–

सरकार द्वारा पेटेंट का उपयोग–भारतीय पेटेंट अधिनियम, 1970 की धारा 100 के अनुसार, केंद्र सरकार को सरकारी उद्देश्यों के लिए पेटेंट किए गए आविष्कार का उपयोग करने का अधिकार है। इसमें पेटेंट का अपने उपयोग के लिए उपयोग करना या प्राप्त करना शामिल है। सरकार उचित मुआवजा देकर भी पेटेंट प्राप्त कर सकती है और यह अधिकार पेटेंट किए गए आविष्कार को बेचने तक भी विस्तारित है।

अनिवार्य लाइसेंस– भारतीय पेटेंट अधिनियम की धारा 84 अनिवार्य लाइसेंस प्रदान करने से संबंधित है। पेटेंट प्रदान करने की तिथि से तीन वर्ष बाद, कोई भी इच्छुक व्यक्ति अनिवार्य लाइसेंस के लिए नियंत्रक के पास आवेदन कर सकता है।

लाइसेंस प्राप्त करने के लिए कुछ शर्तों को पूरा करना होगा, जिनमें जनता की उचित आवश्यकताओं की पूर्ति न होना, पेटेंट प्राप्त आविष्कार का किफायती मूल्य पर उपलब्ध न होना तथा आविष्कार का भारत के क्षेत्र में निर्माण न किया जाना शामिल है।

रक्षा प्रयोजनों के लिए आविष्कार का उपयोग– यदि किसी पेटेंट के लिए आवेदन को केन्द्रीय सरकार द्वारा रक्षा प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, तो नियंत्रक आविष्कार के बारे में सूचना के प्रकाशन को प्रतिबंधित करने या रोकने के लिए निर्देश जारी कर सकता है।

इससे आविष्कार पर गोपनीयता का प्रावधान लागू हो जाता है और नियंत्रक या केंद्र सरकार द्वारा गोपनीयता के संबंध में दिए गए किसी भी आदेश को अंतिम माना जाता है तथा उसे न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

पुनःस्थापित पेटेंट– पेटेंट की वैधता बनाए रखने के लिए, पेटेंटधारक को एक निश्चित समय अवधि के भीतर पेटेंट कार्यालय को नवीनीकरण शुल्क का भुगतान करना आवश्यक है। इस आवश्यकता को पूरा न करने पर पेटेंट समाप्त हो जाता है। हालाँकि, भारतीय पेटेंट अधिनियम 1970 के प्रावधानों में धारा 60 से 63 में उल्लिखित अनुसार समाप्त हो चुके पेटेंट की बहाली की अनुमति है।

जब कोई पेटेंट समाप्त हो जाता है और बाद में उसे बहाल किया जाता है, तो पेटेंटधारक के अधिकारों पर कुछ सीमाएँ लगाई जाती हैं। विशेष रूप से, यदि कोई पेटेंट समाप्त हो जाता है और बाद में उसे बहाल किया जाता है, तो पेटेंटधारक उस तिथि के बाद उल्लंघन के लिए मुकदमा दायर नहीं कर सकता है जिस दिन पेटेंट प्रभावी होना बंद हो गया था। यह प्रावधान पेटेंट की समाप्ति को रोकने और उल्लंघन के खिलाफ अपने अधिकारों को लागू करने की क्षमता बनाए रखने के लिए नवीनीकरण शुल्क के समय पर भुगतान के महत्व को रेखांकित करता है।

प्रश्न न0 9–पेटेन्ट अतिलघन क्या है? पेटेन्ट अतिलंघन की दशा में कौन से अनुतोष उपलब्ध है? बताइए।

उत्तर– पेटेंट अधिकार एक विशेषाधिकार है जो राज्य द्वारा उस व्यक्ति को दिया जाता है जो किसी नए उत्पाद का आविष्कार या निर्माण सबसे पहले करता है। ऐसे पूर्ण उत्पाद के आविष्कारक को उस उत्पाद पर एकाधिकार प्राप्त होता है। वह (पेटेंटधारक) उनका उपयोग करता है और उसे बेच सकता है। पेटेंट अधिकारों से उत्पन्न पेटेंट का उल्लंघन तब होता है जब कोई व्यक्ति किसी आविष्कार को उसके मालिक से लाइसेंस प्राप्त किए बिना एक निश्चित अवधि के भीतर बनाता है, उपयोग करता है या बेचता है। उल्लंघन निम्नलिखित मामलों में माना जाता है–

(i) आविष्कार की नकल करना

(ii) आविष्कार में अनुचित परिवर्तन करना

(iii) यांत्रिक समतुल्य

(iv) जांच की आवश्यक विशेषताओं को लेना

उत्पाद या प्रक्रिया पेटेंट उल्लंघन के दौरान उपर्युक्त सभी क्रियाएं अक्सर ओवरलैप होती हैं। जहां उल्लंघनकर्ता पेटेंट किए गए उत्पाद या प्रक्रिया को हल्का बनाता है लेकिन वास्तव में पेटेंटधारक के आविष्कार की आवश्यक विशेषताओं को अपनाता है, आविष्कार की समान नकल या अमूर्त भिन्नता उल्लंघन के बराबर होती है।

कोई उल्लंघन हुआ है या नहीं, इसका फैसला प्रत्येक मामले में अलग–अलग किया जाना चाहिए। किसी भी मामले में, कोई उल्लंघन हुआ है या नहीं, इसका निर्धारण मामले के तथ्यों से ही होगा।

उपचार– जब पेटेन्टधारक के पेटेन्ट अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो इसका समाधान न्यायिक हस्तक्षेप के माध्यम से किया जाता है। वादी अपने अधिकारों के उल्लंघन के लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त करने तथा निषेधाज्ञा की कार्यवाही करने का हकदार है। इसके अतिरिक्त, वादी उल्लंघन के परिणामस्वरूप हुई वास्तविक आर्थिक हानि के लिए क्षतिपूर्ति पाने का भी हकदार है। न्यायालय अन्तरवर्ती निषेधाज्ञा भी जारी कर सकता है, लेकिन ऐसा करते समय न्यायधीश को यह अवश्य देखना चाहिए कि जो कुछ भी किया गया है, उससे वादी के सम्पूर्ण आविष्कार पर प्रभाव पड़ा है या नहीं। यदि किसी व्यक्ति ने अपना पेटेन्ट नियंत्रक के पास पंजीकृत करा लिया है, तो उस उपयोग पर उसका एकाधिकार हो जाता है। पेटेन्टधारक निषेधाज्ञा तथा स्थायी निषेधाज्ञा की मांग कर सकता है, इसके अतिरिक्त वह अपनी हानि की भरपाई की मांग कर सकता है, जो दूसरे पक्ष को हुई है। यहां तक कि उल्लंघनकर्ता द्वारा निर्मित माल को भी नष्ट करना पड़ सकता है।

प्रश्न न0 10– निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–

उत्तर– (1) प्रतिलिप्याधिकार का स्वामित्व – कॉपीराइट स्वामित्व जटिल हो सकता है और कई कारकों पर निर्भर करता है, जिसमें काम का प्रकार, इसे कैसे बनाया गया और कानूनी समझौते शामिल हैं। सामान्य तौर पर,किसी कृति का निर्माता कॉपीराइट का प्रथम स्वामी होता हैहालाँकि , इसमें कई अपवाद हैं, जैसे कि जब काम रोजगार के दौरान बनाया गया था या जब इसे कमीशन किया गया था।

कॉपीराइट स्वामित्व के कुछ उदाहरण यहां दिए गए हैं–

किराये पर लिए गए कार्य–जब कोई कर्मचारी अपने रोजगार के दायरे में कोई काम करता है, तो नियोक्ता कॉपीराइट का मालिक होता है। यह सिद्धांत कुछ स्वतंत्र ठेकेदारों और कमीशन किए गए कामों पर भी लागू होता है।

सरकारी कार्य–किसी समझौते के अभाव में, सरकारी कार्यों का कॉपीराइट सरकार के पास होता है।
संयुक्त कार्य–जब दो या उससे ज्यादा रचनाकार मिलकर कोई ऐसा काम बनाते हैं जिसमें उनका योगदान शामिल होता है, तो वे कॉपीराइट के सह–स्वामी होते हैं। प्रत्येक योगदानकर्ता का योगदान स्वतंत्र रूप से कॉपीराइट योग्य होना चाहिए, और कॉपीराइट में उनकी समान रुचि होनी चाहिए।
कॉपीराइट स्वामित्व को असाइनमेंट, अनुबंध, वसीयत या वसीयत के माध्यम से भी स्थानांतरित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक नियोक्ता किसी कर्मचारी को लिखित, हस्ताक्षरित दस्तावेज के साथ किसी कार्य का कॉपीराइट दे सकता है।
(2) एक पेटेन्टी के अधिकार– भारत में, पेटेंट अवधि के दौरान पेटेंटधारक को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं–
पेटेंट का उपयोग करने का अधिकार– पेटेंटधारक को पेटेंट उत्पाद बनाने, उपयोग करने, बेचने या वितरित करने या पेटेंट विधि का उपयोग करने का विशेष अधिकार है। इसमें वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए आविष्कार को दूसरों को लाइसेंस देने का अधिकार शामिल है। पेटेंटधारक किसी अन्य व्यक्ति को उनकी अनुमति से प्रक्रिया भी सौंप सकता है।
दूसरों को बाहर करने का अधिकार– पेटेंटधारक तीसरे पक्ष को पेटेंटधारक की स्वीकृति के बिना आविष्कार बनाने, उपयोग करने, बेचने या आयात करने से रोक सकता है। यह अधिकार सीमित समय सीमा के लिए वैध है, आमतौर पर पेटेंट आवेदन दाखिल करने से 20 साल तक।
कानूनी कार्रवाई करने का अधिकार– पेटेंटधारक अपने पेटेंट अधिकारों के किसी भी अनधिकृत उपयोग या उल्लंघन के खिलाफ कानूनी कार्रवाई कर सकता है।
जब तक आवश्यक नवीकरण शुल्क का भुगतान किया जाता है, पेटेंट लागू रहता है।
(3) बौद्धिक सम्पदा और भू–सम्पदा अन्तर– बौद्धिक संपदा (आईपी) अमूर्त होती है और इसमें ब्रांड नाम, लोगो, उत्पाद डिजाइन, आविष्कार और रचनात्मकता से संबंधित अद्वितीय कार्य जैसी संपत्तियां शामिल हो सकती हैं। भू–संपत्ति एक भौतिक संपत्ति है जो मालिक के लिए आय उत्पन्न कर सकती है। आईपी और भू–संपत्ति के बीच कुछ अन्य अंतर इस प्रकार हैंरू–
परिभाषा–आईपी रचनात्मक विचारों की अभिव्यक्ति है, जबकि भू–संपत्ति एक भौतिक संपत्ति है, जैसे भूमि, बाड़, भवन आदि।
वास्तविकता–आईपी अमूर्त है, जबकि भू–संपत्ति मूर्त है।
सुरक्षा–आईपी अधिकार मूल रचना के उपयोग के अधिकार की रक्षा करते हैं, लेकिन विचार की नहीं। आईपी की तुलना में जमीनी संपत्ति की पहचान करना और उसे सुरक्षा प्रदान करना आसान हो सकता है।
मौद्रिक मूल्य–आईपी का मौद्रिक मूल्य परिवर्तनशील हो सकता है, जबकि भू–संपत्ति का मौद्रिक मूल्य सीमित होता है।
अवधि–कुछ आईपी अधिकार एक निश्चित समय तक चलते हैं, जबकि अन्य हमेशा के लिए चल सकते हैं। जमीनी संपत्ति मालिक के लिए आय उत्पन्न कर सकती है, बिना मालिक को संपत्ति का वास्तविक काम किए।

LL.B.-6th Sem. Paper-VI Women and the Law

प्रश्न न0 1– महिलाओ के विरूद्ध सभी प्रकार के विभेद निवारक अभिसमय, 1979 के प्रमुख प्रावधनों का वर्णन कीजिए।

उत्तर– जैसा कि संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेदों तथा अनुच्छेद 55 में वर्णित है, संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों में एक उद्देश्य लिंग आदि के भेदभाव के बिना मानव अधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं की सार्वभौमिक प्रोन्नति करनी है। मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में भी यह उद्घोषित किया गया है कि प्रत्येक घोषणा में वर्णित सभी अधिकारों एवं मौलिक स्वतन्त्रताओं का लिंग आदि भेदभावों के बिना प्राप्त होगा। महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव मानव गरिमा एवं समाज के कल्याण के विरूद्ध है तथा महिलाओं की समर्थताओं या संभाव्य शक्ति की पूर्ण प्राप्ति से बाधक है। 7 नवम्बर 1967 को महासभा ने महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव की समाप्ति पर घोषणा पारित की थी।

18 दिसम्बर 1979 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय को अंगीकार किया जिसके प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित प्रकार से हैं–

अभिसमय के अनुच्छेद 1 में महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव शब्द को परिभाषा किया गया है।

भाग प्रथम

अनुच्छेद 1– वर्तमान अभिसमय के प्रयोजनों के लिए, ष्महिलाओं के विरुद्ध भेदभावष् शब्द का अर्थ लिंग के आधार पर किया गया कोई भेद, बहिष्कार या प्रतिबंध होगा, जिसका प्रभाव या उद्देश्य महिलाओं द्वारा, उनकी वैवाहिक स्थिति पर ध्यान दिए बिना, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक या किसी अन्य क्षेत्र में पुरुषों और महिलाओं की समानता, मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रता के आधार पर मान्यता, आनंद या प्रयोग को क्षीण या निरस्त करना हो।

अनुच्छेद 2–राज्य पक्ष महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की निंदा करते हैं, सभी उपयुक्त साधनों द्वारा और बिना किसी देरी के महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव को समाप्त करने की नीति को आगे बढ़ाने पर सहमत होते हैं और इस उद्देश्य के लिए, निम्नलिखित दायित्व लेते हैं– (1) अपने राष्ट्रीय संविधानों या अन्य उपयुक्त कानूनों में पुरुषों और महिलाओं की समानता के सिद्धांत को शामिल करना, यदि अभी तक उनमें शामिल नहीं किया गया है और कानून और अन्य उपयुक्त साधनों के माध्यम से इस सिद्धांत का व्यावहारिक कार्यान्वयन सुनिश्चित करना;
(2) महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव को प्रतिबंधित करने के लिए, जहां उपयुक्त हो वहां प्रतिबंध लगाने सहित, उचित विधायी एवं अन्य उपाय अपनाना; (3) पुरुषों के समान आधार पर महिलाओं के अधिकारों की कानूनी सुरक्षा स्थापित करना तथा सक्षम राष्ट्रीय न्यायाधिकरणों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के माध्यम से भेदभाव के किसी भी कृत्य के विरुद्ध महिलाओं की प्रभावी सुरक्षा सुनिश्चित करना; (4) महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के किसी भी कार्य या व्यवहार में संलग्न होने से बचना तथा यह सुनिश्चित करना कि सार्वजनिक प्राधिकरण और संस्थाएं इस दायित्व के अनुरूप कार्य करेंगी; (5) किसी भी व्यक्ति, संगठन या उद्यम द्वारा महिलाओं के प्रति भेदभाव को समाप्त करने के लिए सभी उचित उपाय करना; (6) महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव करने वाले मौजूदा कानूनों, विनियमों, रीति–रिवाजों और प्रथाओं को संशोधित करने या समाप्त करने के लिए कानून बनाने सहित सभी उचित उपाय करना; (7) उन सभी राष्ट्रीय दंड प्रावधानों को निरस्त करना जो महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव करते हैं।

अनुच्छेद 3– राज्य पक्ष सभी क्षेत्रों में, विशेष रूप से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में, महिलाओं के पूर्ण विकास और उन्नति को सुनिश्चित करने के लिए कानून सहित सभी उपयुक्त उपाय करेंगे, ताकि उन्हें पुरुषों के साथ समानता के आधार पर मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रयोग और आनंद की गारंटी दी जा सके।

अनुच्छेद 4– 1. पुरुषों और महिलाओं के बीच वास्तविक समानता को बढ़ाने के उद्देश्य से अस्थायी विशेष उपायों को राज्य पक्षकारों द्वारा अपनाना वर्तमान कन्वेंशन में परिभाषित भेदभाव नहीं माना जाएगा, लेकिन इसके परिणामस्वरूप किसी भी तरह से असमान या अलग मानकों का रखरखाव नहीं होगाय अवसर और उपचार की समानता के उद्देश्यों को प्राप्त कर लेने पर ये उपाय बंद कर दिए जाएंगे। 2. मातृत्व की सुरक्षा के उद्देश्य से राज्य पक्षकारों द्वारा विशेष उपायों को अपनाना, जिनमें वर्तमान कन्वेंशन में निहित उपाय भी शामिल हैं, भेदभावपूर्ण नहीं माना जाएगा।

अनुच्छेद 5–राज्य पक्ष सभी उचित उपाय करेंगेरू (क) पुरुषों और महिलाओं के आचरण के सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिमानों को संशोधित करना, ताकि पूर्वाग्रहों और प्रथागत तथा अन्य सभी प्रथाओं को समाप्त किया जा सके जो किसी भी लिंग की हीनता या श्रेष्ठता के विचार पर या पुरुषों और महिलाओं के लिए रूढ़िबद्ध भूमिकाओं पर आधारित हैं; (ख) यह सुनिश्चित करना कि पारिवारिक शिक्षा में मातृत्व को एक सामाजिक कार्य के रूप में उचित रूप से समझना तथा अपने बच्चों के पालन–पोषण और विकास में पुरुषों और महिलाओं की सामान्य जिम्मेदारी को मान्यता प्रदान करना शामिल हो, यह समझते हुए कि बच्चों का हित सभी मामलों में प्राथमिक विचार है।

अनुच्छेद 6– राज्य पक्ष महिलाओं की तस्करी और महिलाओं के वेश्यावृत्ति के शोषण के सभी रूपों को रोकने के लिए कानून सहित सभी उचित उपाय करेंगे।

भाग द्वितीय

अनुच्छेद 7—राज्य पक्ष देश के राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को खत्म करने के लिए सभी उचित उपाय करेंगे और विशेष रूप से, महिलाओं को पुरुषों के साथ समान शर्तों पर अधिकार सुनिश्चित करेंगे— (क) सभी चुनावों और सार्वजनिक जनमत संग्रह में वोट देने का और सभी सार्वजनिक रूप से निर्वाचित निकायों के लिए चुनाव के लिए पात्र होने का; (ख) सरकारी नीति के निर्माण और उसके कार्यान्वयन में भाग लेना तथा सार्वजनिक पद धारण करना तथा सरकार के सभी स्तरों पर सभी सार्वजनिक कार्य निष्पादित करना; (ग) देश के सार्वजनिक और राजनीतिक जीवन से संबंधित गैर—सरकारी संगठनों और संघों में भाग लेना।

अनुच्छेद 8—राज्य पक्ष महिलाओं को पुरुषों के समान समान स्तर पर तथा बिना किसी भेदभाव के, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी सरकारों का प्रतिनिधित्व करने तथा अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के कार्यों में भाग लेने का अवसर सुनिश्चित करने के लिए सभी उचित उपाय करेंगे।

अनुच्छेद 9— 1. राज्य पक्ष महिलाओं को अपनी राष्ट्रीयता प्राप्त करने, बदलने या बनाए रखने के लिए पुरुषों के समान अधिकार प्रदान करेंगे। वे विशेष रूप से यह सुनिश्चित करेंगे कि न तो किसी विदेशी से विवाह और न ही विवाह के दौरान पति द्वारा राष्ट्रीयता बदलने से पत्नी की राष्ट्रीयता स्वतः बदल जाएगी, उसे राज्यविहीन बना देगी या उस पर पति की राष्ट्रीयता थोपी जाएगी। 2. राज्य पक्ष महिलाओं को उनके बच्चों की राष्ट्रीयता के संबंध में पुरुषों के समान अधिकार प्रदान करेंगे।

भाग तृतीय

अनुच्छेद 10, 11, 12, 13— राज्य पक्षकारों ने यह संकल्प किया कि वह महिलाओं के विरूद्ध सभी भेदभाव समाप्त करने के लिए सभी उपाय करेगें जिससे यह सुनिश्चित हो कि महिलाओं के पुरूषों के साथ शिक्षा, नियोजन, स्वास्थ्य, देखभाल तथा आर्थिक एवं सामाजिक जीवन के अन्य क्षेत्रों में समान अधिकार प्राप्त हो।

अनुच्छेद 14— राज्य पक्ष ग्रामीण महिलाओं के सामने आने वाली विशेष समस्याओं और ग्रामीण महिलाओं द्वारा अपने परिवारों के आर्थिक अस्तित्व में निभाई जाने वाली महत्वपूर्ण भूमिकाओं, जिसमें अर्थव्यवस्था के गैर—मौद्रिकीकृत क्षेत्रों में उनका कार्य भी शामिल है, को ध्यान में रखेंगे तथा ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं पर वर्तमान कन्वेंशन के प्रावधानों को लागू करने के लिए सभी उचित उपाय करेंगे।

भाग चतुर्थ—

अनुच्छेद 15—राज्य पक्षकारा महिलाओं को पुरूषो के साथ विधि के समक्ष समानता प्रदान करेगें।

अनुच्छेद 16—क. राज्य पक्ष विवाह और पारिवारिक संबंधों से संबंधित सभी मामलों में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को खत्म करने के लिए सभी उचित उपाय करेंगे और विशेष रूप से पुरुषों और महिलाओं की समानता के आधार पर यह सुनिश्चित करेंगे— (1) विवाह में प्रवेश करने का समान अधिकार; (2) स्वतंत्र रूप से जीवनसाथी चुनने तथा उनकी स्वतंत्र एवं पूर्ण सहमति से ही विवाह करने का समान अधिकार; (3) विवाह के दौरान और उसके विघटन पर समान अधिकार और जिम्मेदारियाँ; (4) बच्चों से संबंधित मामलों में माता—पिता के समान अधिकार और जिम्मेदारियां, चाहे उनकी वैवाहिक स्थिति कुछ भी होय सभी मामलों में बच्चों के हित सर्वोपरि होंगे; (5) अपने बच्चों की संख्या और अंतराल के बारे में स्वतंत्र और जिम्मेदारी से निर्णय लेने तथा इन अधिकारों का प्रयोग करने के लिए सूचना, शिक्षा और साधनों तक पहुंच रखने का समान अधिकार; (6) बच्चों की संरक्षकता, वार्डशिप, ट्रस्टीशिप और दत्तक ग्रहण, या इसी तरह की संस्थाओं के संबंध में समान अधिकार और जिम्मेदारियां, जहां ये अवधारणाएं राष्ट्रीय कानून में मौजूद हैंय सभी मामलों में बच्चों के हित सर्वोपरि होंगे; (7) पति—पत्नी के समान व्यक्तिगत अधिकार, जिसमें पारिवारिक नाम, पेशा और व्यवसाय चुनने का अधिकार शामिल है; (8) संपत्ति के स्वामित्व, अधिग्रहण, प्रबंधन, प्रशासन, उपभोग और निपटान के संबंध में दोनों पति—पत्नी के लिए समान अधिकार, चाहे वह निःशुल्क हो या किसी मूल्यवान वस्तु के लिए।

ख. किसी बच्चे की सगाई और विवाह का कोई कानूनी प्रभाव नहीं होगा, तथा विवाह के लिए न्यूनतम आयु निर्दिष्ट करने और आधिकारिक रजिस्ट्री में विवाह का पंजीकरण अनिवार्य बनाने के लिए कानून बनाने सहित सभी आवश्यक कार्रवाई की जाएगी।

अनुच्छेद 17— 1. वर्तमान कन्वेंशन के कार्यान्वयन में हुई प्रगति पर विचार करने के उद्देश्य से, महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के उन्मूलन पर एक समिति (जिसे आगे समिति कहा जाएगा) स्थापित की जाएगी, जिसमें कन्वेंशन के लागू होने के समय अठारह सदस्य होंगे और पैंतीसवें राज्य पक्ष द्वारा कन्वेंशन के अनुसमर्थन या अभिगम के बाद, कन्वेंशन द्वारा कवर किए गए क्षेत्र में उच्च नैतिक प्रतिष्ठा और क्षमता वाले तेईस विशेषज्ञ होंगे। विशेषज्ञों का चुनाव राज्य पक्ष अपने नागरिकों में से करेंगे और वे अपनी व्यक्तिगत क्षमता में काम करेंगे, जिसमें समान भौगोलिक वितरण और सभ्यता के विभिन्न रूपों के साथ—साथ प्रमुख कानूनी प्रणालियों के प्रतिनिधित्व पर विचार किया जाएगा। 2. समिति के सदस्यों का चुनाव सदस्य देशों द्वारा नामित व्यक्तियों की सूची में से गुप्त मतदान द्वारा किया जाएगा। प्रत्येक सदस्य देश अपने नागरिकों में से एक व्यक्ति को नामित कर सकता है। 3. प्रारंभिक चुनाव वर्तमान कन्वेंशन के लागू होने की तिथि के छह महीने बाद आयोजित किए जाएंगे। प्रत्येक चुनाव की तिथि से कम से कम तीन महीने पहले संयुक्त राष्ट्र के महासचिव राज्यों के दलों को एक पत्र लिखेंगे जिसमें उन्हें दो महीने के भीतर अपने नामांकन प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया जाएगा। महासचिव इस प्रकार नामित सभी व्यक्तियों की वर्णानुक्रम में एक सूची तैयार करेंगे, जिसमें उन राज्यों के नाम होंगे जिन्होंने उन्हें नामित किया है, और इसे राज्यों

के दलों को प्रस्तुत करेंगे। 4. समिति के सदस्यों का चुनाव महासचिव द्वारा संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में बुलाई गई सदस्य देशों की बैठक में होगा। उस बैठक में, जिसके लिए सदस्य देशों के दो तिहाई सदस्यों की उपस्थिति कोरम का गठन करेगी, समिति के लिए चुने गए व्यक्ति वे नामांकित व्यक्ति होंगे जिन्हें सबसे अधिक मत प्राप्त होंगे और उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्य देशों के प्रतिनिधियों के मतों का पूर्ण बहुमत प्राप्त होगा। 5. समिति के सदस्यों का चुनाव चार वर्ष की अवधि के लिए किया जाएगा। हालांकि, पहले चुनाव में चुने गए नौ सदस्यों का कार्यकाल दो वर्ष के अंत में समाप्त हो जाएगाय पहले चुनाव के तुरंत बाद इन नौ सदस्यों के नाम समिति के अध्यक्ष द्वारा लॉटरी के माध्यम से चुने जाएंगे। 6. समिति के पांच अतिरिक्त सदस्यों का चुनाव इस अनुच्छेद के पैराग्राफ 2, 3 और 4 के प्रावधानों के अनुसार, पैंतीसवें अनुसमर्थन या परिग्रहण के बाद होगा। इस अवसर पर चुने गए अतिरिक्त सदस्यों में से दो का कार्यकाल दो वर्ष के अंत में समाप्त हो जाएगा, इन दो सदस्यों के नाम समिति के अध्यक्ष द्वारा लॉटरी द्वारा चुने गए हैं। 7. आकस्मिक रिक्तियों को भरने के लिए, वह राज्य पक्ष, जिसके विशेषज्ञ ने समिति के सदस्य के रूप में कार्य करना बंद कर दिया है, समिति के अनुमोदन के अधीन, अपने नागरिकों में से एक अन्य विशेषज्ञ की नियुक्ति करेगा। 8. समिति के सदस्य, महासभा के अनुमोदन से, संयुक्त राष्ट्र के संसाधनों से ऐसे नियमों और शर्तों पर पारिश्रमिक प्राप्त करेंगे, जैसा कि महासभा समिति के उत्तरदायित्वों के महत्व को ध्यान में रखते हुए तय करेगी। 9. संयुक्त राष्ट्र के महासचिव वर्तमान कन्वेंशन के तहत समिति के कार्यों के प्रभावी निष्पादन के लिए आवश्यक स्टाफ और सुविधाएं प्रदान करेंगे।

अनुच्छेद 18

क. राज्य पक्ष समिति द्वारा विचारार्थ संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को विधायी, न्यायिक, प्रशासनिक या अन्य उपायों पर एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने का वचन देते हैं, जिन्हें उन्होंने वर्तमान कन्वेंशन के प्रावधानों को प्रभावी करने के लिए अपनाया है और इस संबंध में हुई प्रगति पर– (1) संबंधित राज्य के लिए लागू होने के एक वर्ष के भीतर; (2) उसके बाद कम से कम प्रत्येक चार वर्ष में तथा आगे भी जब भी समिति ऐसा अनुरोध करे।

ख. रिपोर्ट में वर्तमान कन्वेंशन के तहत दायित्वों की पूर्ति की डिग्री को प्रभावित करने वाले कारकों और कठिनाइयों का संकेत दिया जा सकता है।

अनुच्छेद 19–1. समिति अपनी प्रक्रिया के नियम स्वयं अपनाएगी। 2. समिति अपने पदाधिकारियों का चुनाव दो वर्ष की अवधि के लिए करेगी।

अनुच्छेद 20– 1. समिति वर्तमान कन्वेंशन के अनुच्छेद 18 के अनुसार प्रस्तुत रिपोर्टों पर विचार करने के लिए सामान्यतः प्रतिवर्ष दो सप्ताह से अधिक की अवधि के लिए बैठक करेगी। 2. समिति की बैठकें सामान्यतः संयुक्त राष्ट्र मुख्यालय में या समिति द्वारा निर्धारित किसी अन्य सुविधाजनक स्थान पर आयोजित की जाएंगी। (संशोधन , अनुसमर्थन की स्थिति)

अनुच्छेद 21– 1. समिति आर्थिक और सामाजिक परिषद के माध्यम से संयुक्त राष्ट्र महासभा को अपनी गतिविधियों पर प्रतिवर्ष रिपोर्ट देगी और राज्यों के दलों से प्राप्त रिपोर्टों और सूचनाओं की जांच के आधार पर सुझाव और सामान्य सिफारिशें कर सकती है। ऐसे सुझाव और सामान्य सिफारिशें समिति की रिपोर्ट में राज्यों के दलों की टिप्पणियों, यदि कोई हो, के साथ शामिल की जाएंगी। 2. संयुक्त राष्ट्र महासचिव समिति की रिपोर्ट को महिलाओं की स्थिति पर आयोग को उसकी जानकारी के लिए भेजेंगे।

अनुच्छेद 22– विशेषीकृत एजेंसियाँ वर्तमान कन्वेंशन के ऐसे प्रावधानों के कार्यान्वयन पर विचार–विमर्श के समय प्रतिनिधित्व पाने की हकदार होंगी जो उनकी गतिविधियों के दायरे में आते हैं। समिति विशेषीकृत एजेंसियों को उनकी गतिविधियों के दायरे में आने वाले क्षेत्रों में कन्वेंशन के कार्यान्वयन पर रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित कर सकती है।

भाग षष्ठम

अनुच्छेद 23–वर्तमान अभिसमय की कोई भी बात ऐसे किसी उपबंध को प्रभावित नहीं करेगी जो पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता की प्राप्ति के लिए अधिक अनुकूल हो, जो निम्नलिखित में निहित हो सकते हैंरू (क) किसी राज्य पक्ष के कानून में; (ख) उस राज्य के लिए लागू किसी अन्य अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, संधि या समझौते में।

अनुच्छेद 24–राज्य पक्ष वर्तमान कन्वेंशन में मान्यता प्राप्त अधिकारों की पूर्ण प्राप्ति के उद्देश्य से राष्ट्रीय स्तर पर सभी आवश्यक उपाय अपनाने का वचन देते हैं।

प्रश्न न0 2– प्राचीन भारत में महिलाओं की सामाजिक एवं वैधानिक स्थिति की विवेचना कीजिए।

उत्तर– हिन्दू समाज में स्त्रियों का सम्मान और आदर प्राचीन काल से ही आदर्शात्मक और मर्यादा युक्त रहा है। उनके प्रति समाज की स्वाभाविक निष्ठा और श्रद्धा रही है। परिवार और समुदाय में उनके द्वारा किये जाने वाले योगदान का सर्वदा महत्व और गौरव रहा है और नारी सर्वशक्तिमान सम्पन्न तथा विद्या, यश और सम्पत्ति का प्रतीक समझी गयी है। धीरे–धीरे उनका महत्व इतना अधिक बढ़ गया कि उसके बिना अकेला पुरूष अपूर्ण और अधूरा समझा जाने लगा। परन्तु स्त्री की स्थिति युग के अनुकूल परिवर्तित होती रहती है। वैदिक युग में उसकी अवस्था अत्यन्त उन्नत एवं परिपस्कृत थी।

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह प्रत्येक क्षेत्र में वह समान से अधिकृत थी। शिक्षा, धर्म, व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास में उसका महान योगदान रहा है।

पुरूषों की तुलना में वह किसी प्रकार से कम नहीं थी। वह पति के कार्य में सहयोग प्रदान करती थी। इस प्रकार वह पुरूष की तरह समाज की स्थायी और गौरवशाली अंग थी। वह सुसम्य होती थी। पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्यों का वह निष्ठापूर्वक पालन करती है तथा पति के साथ मिलकर गृह के सभी कार्य सम्पन्न करती थी। वस्तुतः स्त्री और पुरूष दोनों यज्ञ रूपी रथ में दो जुड़े हुए चाहिए है। यह युग में पत्नी ही परिचायक मानी जाती थी। गृह और पत्नी दोनों का अन्योयाश्रित सम्बन्ध माना जाने लगा और बिना पत्नी के गृह की कल्पना व्यर्थ मानी गयी।

उत्तर वैदिक युग में स्त्रियों का आदर ही सम्मानपूर्वक बना रहा। शिक्षा के क्षेत्र में उसका स्थान पुरूषों के समकक्ष था। शिक्षित कन्या के प्राप्ति के लिए विशेष अनुष्ठान का आयोजन किया जाता था। इस युग के जो स्त्री–पुरूष शिक्षित थे वे ही विवाह योग्य समझे जाते थे। ऐसी स्त्रियाँ थे जो जीवनभर विद्याध्ययन में लगी रहती थी और ब्रहमवादनी कही जाती थी। किन्तु धीरे–धीरे इस युग में वैदिक कर्मकांड की जटिलता बढ़ती गयी और याज्ञिक कार्यों से शुद्धता एवं पवित्रता के नाम पर आडम्बर बढ़ता गया जिसके फलस्वरूप स्त्रियों को याज्ञिक कार्यों से अलग रखने का उपक्रमण किया जाने लगा तथा उन्हें वैदिक मंत्रों के उच्चारण के उपर्युक्त नहीं माना गया उसका कारण यह लगता है कि इस युग तक अर्तजतीय विवाह का प्रचलन हो चुका था। जिसमें दूसरे वर्ग की ऐसी स्त्रियों होती थी जिनका वैदिक वाडमय से कोई परिचय नहीं होता था और वे वैदिक मंत्रों से भ्रष्ठ उच्चारण करती थी। अतः वैदिक साहित्य को शुद्ध और सही बनाये रखने के लिए स्त्रियों को अलग रखने का नियम बना, यही से स्त्रियों की दासता शुरू होती है।

सूत्रों एवं स्मृतियों के काल में आकर स्त्रियों की स्थिति और भी दयनीय हो गयी, उन पर तरह–तरह के बन्धन और आरोप लगाये गये। उनकी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं व्यक्तित्व सभी स्थितियों पर प्रतिबन्ध लगे। जन्म से मृत्यु तक उसे पुरूष के नियन्त्रण में रखने के लिए निर्देशित की गयी।

कन्या को घरोहर के रूप में माना जाने लगा जिसको पिता अथवा अभिभावक के लिए वह एक समस्या भी बनती गयी। कनया एवं पुत्र के आवागमन पर पुत्र का स्वागत होने लगा तथा दोनों के समारोह के कार्य अलग–अलग प्रकार के थे। पूर्व मध्य युग तक कन्या शक्ति के रूप में मानी जा चुकी थी। शक्त धर्म के प्रभाव के कारण ऐसे गौरी और भवानी का रूप दिया गया किन्तु उसके शक्ति के रूप को समझकर भी पिता उसके प्रति दायित्व के भाव से बोझिल होते रहे।

पूर्व मध्यकाल तक आकर उस पर कठोर नियंत्रण हो गये। धर्म और समाज की रक्षा के नाम पर उनके ऐसी व्यवस्थाओं का नियम हुआ जिससे स्त्रियों की दशा दिन–प्रतिदिन और भी दयनीय होती गयी। इस प्रकार अनेक बन्धनों के घेरे में उसका व्यक्तित्व सिमटकर रह गया।

स्त्री की स्वतंत्रता– वैदिक में स्त्री जितनी स्वतन्त्र और मुक्त थी उतनी पूर्ववर्ती काल में किसी भी युग में नहीं थी। सभी दृष्टियों से वह पुरूष समान थी। सभी ज्ञान, यज्ञ आदि विभिन्न क्षेत्रों में वह स्वतन्त्रतापूर्वक सम्मिलित होती थी। उस युग में बहुत से विदुषी स्त्रियाँ थी। जिन्होने ऋग्वेद की मृचाओं का प्रणयन किया था। ज्ञान और विद्वता के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि याज्ञिक कार्यों में भी वे अग्रणी थी। ब्रहमयज्ञ में जिन ऋषियों की गणना की जाती है उनमें सूलमा, गार्गी आदि विदुषियों के नाम लिये जाते है। जनक यज्ञ के अवसर पर जो धार्मिक शास्त्रार्थ आयोजित किया था उसमें गार्गी ने अपनी विलक्षण तर्कशील और सूक्ष्म विचार तन्तुओं के दुख्ः प्रश्न को ढूँढकर याज्ञावल्क्य ऋषि के दाँत खट्टे कर दिये। इन उदाहरणों से यह पता चलता है कि उस युग की में स्त्रियाँ स्वतन्त्रताओं पुरूषों के साथ सभी कार्यों में सम्मिलित होती थी। उसके मान और सम्मान में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। उत्तर वैदिक काल में ही नारी की दशा अवनति की ओर अग्रसर होनी लगी। उसके लिए निन्दनीय शब्दों का प्रयोग लगा। उसे असत्य भाषा कहा गया तथा पुरूष के साथ यज्ञ में समान भाग लेने से वंचित कर उसकी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाया गया। इस तरह उन पर सामाजिक और धार्मिक अनेक नियंत्रण लगाये गये जो आगे चलकर और भी विस्तृत हो गये।

नारी–शिक्षा– वैदिक युग में स्त्री की शिक्षा उच्चतम सीमा पर थी। बुद्वि और ज्ञान के क्षेत्र में अग्रणी थी। उसे यज्ञ सम्पादन और वेदाध्ययन करने का पूर्ण अधिकार था। दर्शन और तर्कशास्त्र में भी वे निपुण थी। पति के साथ समान रूप से वे यज्ञ में सहयोग करती थी। राम के युवराज पद अभिषेक के समय कौशल्या ने यज्ञ किया था।

महाभारत से ज्ञात होता है कि पांडवों की माँ कुन्ती अथर्ववेद में पारगंत थी। इससे पता चलता है कि उस युग की स्त्रियाँ पंडिता होती थी। उस युग की कन्याएँ ब्रहमचर्य का अनुगमन करते हुए उपनयन संस्कार भी कराती थी। कन्या के लिए विधान का उल्लेख मनु ने भी किया है। वैदिक युग छात्राओं के दो वर्ग थे, एक सधोवधू और ब्रहमवादिनी। सधोवधू वे छात्रायें थी जो विवाह के पूर्व तक कुछ पढ़ लेती थी तथा ब्रहमवादिनी वे जो शिक्षा समाप्त करने के बाद विवाद करती थी तथा कुछ ऐसी भी स्त्रियाँ थी जीवन भर अध्यान में लीन रहती थीं और विवाह नहीं करती थी।

सम्पति में अधिकार– हिन्दू समाज में स्त्री को सम्पति का अधिकार स्वीकार किया गया है तथा उन विशेष परिस्थितियों का भी विश्लेषण किया गया है जिनके कारण सम्पति में वह अपना हिस्सा प्राप्त करती थी, वैसे वैदिक काल में कुछ ऐसे विवरण है जो उसके इस अधिकार को स्वीकार नहीं करते है, जैसे– केवल वही कन्या जिसका भाई नहीं होता था पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी मानी जाती थी। किन्तु यह अपवाद ही है। धन में प्रायः उसका हिस्सा रहा ही है। वह पुत्र से किसी भी प्रकार कम नहीं समझी जाती है। अतः वैदिक युग में स्त्री का

सम्पत्ति का अधिकार स्वीकार किया जाता था। चौथी सदी ई.पू. तक यह व्यवस्था समाज में प्रचलित थी किन्तु दूसरी सदी ई.पू. में आकर स्त्री शिक्षा पद अनेक प्रतिबन्ध लग गये जिसके कारण उसकी सम्पत्ति विषयक अधिकार भी क्षतिग्रस्त हुआ।

पुत्र के रहते हुए कन्या का सम्पत्ति में अधिकार वैदिक युग से रहा है। धर्मशास्त्रों ने भी इसे स्वीकार किया है। कौटिल्य ने भी पुत्री के प्रति सदृश्यता करते हुए अभ्रर पुत्री को उत्तराधिकारी घोषित किया। चाहे उसे कम ही हिस्सा क्यों न मिले। विष्णु और नारद ने कन्या के हिस्से का समर्थन किया है। विधवा का भी सम्पत्ति में अधिकार माना गया है। पति की मृत्यु के बाद प्रायः विधवा ही उत्तराधिकारी होती थी।

स्त्रियों के प्रति समाज का व्यवहार– नारी के प्रति हिन्दू समाज का व्यवहार दिनों–दिन कठोर होता गया। उत्तर वैदिक काल से पुरूष का उसके प्रति अविश्वास तथा अनुत्तरदायित्व की भावना बढ़ती गयी। उसे दीन दृष्टि से देखा जाने लगा। कुछ शास्त्रकारों ने संसार के अवगुण से उसे आरोपित किया है। कहा गया है यदि कोई व्यक्ति स्त्री के दोषों को अपने सौ वर्षों के जीवन तक गिनता रहे तो भी चह उसके दोषों को परवाह किये बिना ही मर जाएगा। इस प्रकार स्त्रियों के प्रति समाज की दृष्टि अच्छी नहीं था।

लेकिन वैदिक साहित्य में यह स्पष्ट है कि इस काल में स्त्रियों में बहुत आदर था। परिवार में वे गुरूजनों का आदर करती थी तथा उनके विचार परिवार के सभी लोगों में मान्य थे। वे सभी सामाजिक तथा धार्मिक उत्सवों में अपने पति के साथ सम्मिलित होती थी।

प्रश्न न0 3– संयुक्त राष्ट्र के महिलाओं सभी प्रकार के भेदभाव निवारक अभिसमय, 1979 के विविध उपबन्धों की विवेचना कीजिए।

उत्तर– 8 दिसंबर 1979 को, महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा अपनाया गया था। बीसवें देश द्वारा इसकी पुष्टि किए जाने के बाद यह 3 सितंबर 1981 को एक अंतरराष्ट्रीय संधि के रूप में लागू हुआ। 1989 में कन्वेंशन की दसवीं वर्षगांठ तक, लगभग एक सौ राष्ट्र इसके प्रावधानों से बंधे होने के लिए सहमत हो गए थे।

अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों में, यह सम्मेलन मानवता के महिला आधे हिस्से को मानवाधिकार चिंताओं के केंद्र में लाने में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। सम्मेलन की भावना संयुक्त राष्ट्र के लक्ष्यों में निहित हैरू मौलिक मानवाधिकारों में विश्वास की पुष्टि करना, मानव व्यक्ति की गरिमा और मूल्य में, पुरुषों और महिलाओं के समान अधिकारों में। वर्तमान दस्तावेज समानता का अर्थ बताता है और यह कैसे प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा करने में, सम्मेलन न केवल महिलाओं के लिए अधिकारों का एक अंतर्राष्ट्रीय विधेयक स्थापित करता है, बल्कि उन अधिकारों के आनंद की गारंटी के लिए देशों द्वारा कार्रवाई के लिए एक एजेंडा भी स्थापित करता है।

अपनी प्रस्तावना में, कन्वेंशन स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि ष्महिलाओं के खिलाफ व्यापक भेदभाव अभी भी मौजूद है और इस बात पर जोर देता है कि ऐसा भेदभाव ष्समान अधिकारों और मानवीय गरिमा के सम्मान के सिद्धांतों का उल्लंघन करता हैष्। जैसा कि अनुच्छेद 1 में परिभाषित किया गया है, भेदभाव को षलिंग के आधार पर किया गया कोई भी भेद, बहिष्कार या प्रतिबंध... राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक या किसी अन्य क्षेत्र में के रूप में समझा जाता है। कन्वेंशन समानता के सिद्धांत को सकारात्मक पुष्टि देता है, जिसमें राज्यों के पक्षकारों से महिलाओं के पूर्ण विकास और उन्नति को सुनिश्चित करने के लिए कानून सहित सभी उचित उपाय करने की आवश्यकता होती है, ताकि उन्हें पुरुषों के साथ समानता के आधार पर मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं के प्रयोग और आनंद की गारंटी दी जा सके (अनुच्छेद 3)।

समानता के लिए एजेंडा चौदह बाद के लेखों में निर्दिष्ट किया गया है। अपने दृष्टिकोण में, कन्वेंशन महिलाओं की स्थिति के तीन आयामों को शामिल करता है। नागरिक अधिकारों और महिलाओं की कानूनी स्थिति को बहुत विस्तार से निपटाया गया है। इसके अलावा, और अन्य मानवाधिकार संधियों के विपरीत, कन्वेंशन मानव प्रजनन के आयाम के साथ–साथ लिंग संबंधों पर सांस्कृतिक कारकों के प्रभाव से भी चिंतित है।

महिलाओं की कानूनी स्थिति पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है। 1952 में महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों पर कन्वेंशन को अपनाने के बाद से राजनीतिक भागीदारी के बुनियादी अधिकारों पर चिंता कम नहीं हुई है। इसलिए, इसके प्रावधानों को वर्तमान दस्तावेज के अनुच्छेद 7 में फिर से बताया गया है, जिसके तहत महिलाओं को वोट देने, सार्वजनिक पद धारण करने और सार्वजनिक कार्यों का अभ्यास करने के अधिकारों की गारंटी दी गई है। इसमें महिलाओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर अपने देशों का प्रतिनिधित्व करने के समान अधिकार शामिल हैं (अनुच्छेद 8)। विवाहित महिलाओं की राष्ट्रीयता पर कन्वेंशन – जिसे 1957 में अपनाया गया था – को अनुच्छेद 9 के तहत एकीकृत किया गया है, जो महिलाओं की वैवाहिक स्थिति के बावजूद उन्हें राज्य का दर्जा प्रदान करता है। इस प्रकार, कन्वेंशन इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करता है कि अक्सर महिलाओं की कानूनी स्थिति को विवाह से जोड़ा जाता है, जिससे वे अपने पति की राष्ट्रीयता पर निर्भर हो जाती हैं, न कि अपने अधिकार में। अनुच्छेद 10, 11 और 13, क्रमशः शिक्षा, रोजगार और आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों में गैर–भेदभाव के महिलाओं के अधिकारों की पुष्टि करते हैं। इन मांगों पर ग्रामीण महिलाओं की स्थिति के संबंध में विशेष जोर दिया गया है, जिनके विशेष संघर्ष और महत्वपूर्ण आर्थिक योगदान, जैसा कि अनुच्छेद 14 में उल्लेख किया गया है, नीति नियोजन में अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। अनुच्छेद 15 नागरिक और व्यावसायिक मामलों में महिलाओं की पूर्ण समानता पर जोर देता है, यह मांग करते हुए कि महिलाओं की कानूनी क्षमता को प्रतिबंधित करने वाले सभी

साधन श्श्अमान्य और अमान्य माने जाएंगे।श्श अंत में, अनुच्छेद 16 में, कन्वेंशन विवाह और पारिवारिक संबंधों के मुद्दे पर लौटता है, जीवनसाथी की पसंद, माता–पिता, व्यक्तिगत अधिकारों और संपत्ति पर नियंत्रण के संबंध में महिलाओं और पुरुषों के समान अधिकारों और दायित्वों पर जोर देता है।

महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर कन्वेंशन

वर्तमान कन्वेंशन के पक्षकार राज्य,

यह देखते हुए कि संयुक्त राष्ट्र का चार्टर मौलिक मानव अधिकारों, मानव व्यक्ति की गरिमा और महत्व तथा पुरुषों और महिलाओं के समान अधिकारों में विश्वास की पुष्टि करता है, यह देखते हुए कि मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा भेदभाव की अस्वीकार्यता के सिद्धांत की पुष्टि करती है और यह घोषणा करती है कि सभी मनुष्य स्वतंत्र पैदा होते हैं और सम्मान और अधिकारों में समान होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति को लिंग के आधार पर भेदभाव सहित किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना, इसमें उल्लिखित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार है, यह देखते हुए कि मानवाधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय संधियों के पक्षकार राज्यों का दायित्व है कि वे पुरुषों और महिलाओं के सभी आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक और राजनीतिक अधिकारों का आनंद लेने के समान अधिकार सुनिश्चित करें, संयुक्त राष्ट्र और पुरुषों और महिलाओं के अधिकारों की समानता को बढ़ावा देने वाली विशेष एजेंसियों के तत्वावधान में संपन्न अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों को ध्यान में रखते हुए, संयुक्त राष्ट्र और पुरुषों और महिलाओं के अधिकारों की समानता को बढ़ावा देने वाली विशेष एजेंसियों द्वारा अपनाए गए प्रस्तावों, घोषणाओं और सिफारिशों को भी ध्यान में रखते हुए, हालांकि, इस बात पर चिंता व्यक्त की गई कि इन विभिन्न उपायों के बावजूद महिलाओं के खिलाफ व्यापक भेदभाव जारी है। यह स्मरण करते हुए कि महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव अधिकारों की समानता और मानव सम्मान के सम्मान के सिद्धांतों का उल्लंघन करता है, यह महिलाओं को अपने देशों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन में पुरुषों के साथ समान शर्तों पर भागीदारी करने में बाधा डालता है, समाज और परिवार की समृद्धि के विकास में बाधा डालता है तथा अपने देशों और मानवता की सेवा में महिलाओं की क्षमताओं के पूर्ण विकास को और अधिक कठिन बनाता है, उन्होंने इस बात पर चिंता व्यक्त की कि गरीबी की स्थिति में महिलाओं को भोजन, स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रशिक्षण और रोजगार के अवसरों तथा अन्य आवश्यकताओं तक सबसे कम पहुंच प्राप्त होती है। इस बात पर आश्वस्त होकर कि समता और न्याय पर आधारित नई अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण योगदान देगी, इस बात पर बल देते हुए कि रंगभेद, सभी प्रकार के नस्लवाद, नस्लीय भेदभाव, उपनिवेशवाद, नव–उपनिवेशवाद, आक्रामकता, विदेशी कब्जे और प्रभुत्व तथा राज्यों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप का उन्मूलन पुरुषों और महिलाओं के अधिकारों के पूर्ण आनंद के लिए आवश्यक है, इस बात की पुष्टि करते हुए कि अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को सुदृढ़ करना, अंतर्राष्ट्रीय तनाव में कमी, सभी राज्यों के बीच आपसी सहयोग, चाहे उनकी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था कुछ भी हो, सामान्य और पूर्ण निरस्त्रीकरण, विशेष रूप से सख्त और प्रभावी अंतर्राष्ट्रीय नियंत्रण के तहत परमाणु निरस्त्रीकरण, देशों के बीच संबंधों में न्याय, समानता और पारस्परिक लाभ के सिद्धांतों की पुष्टि और विदेशी और औपनिवेशिक प्रभुत्व और विदेशी कब्जे के तहत लोगों के आत्मनिर्णय और स्वतंत्रता के अधिकार की प्राप्ति, साथ ही राष्ट्रीय संप्रभुता और क्षेत्रीय अखंडता के लिए सम्मान, सामाजिक प्रगति और विकास को बढ़ावा देगा और इसके परिणामस्वरूप पुरुषों और महिलाओं के बीच पूर्ण समानता की प्राप्ति में योगदान देगा, इस बात पर आश्वस्त होकर कि किसी देश के सम्पूर्ण विकास, विश्व के कल्याण और शांति के लिए सभी क्षेत्रों में पुरुषों के साथ समान स्तर पर महिलाओं की अधिकतम भागीदारी आवश्यक है, परिवार के कल्याण और समाज के विकास में महिलाओं के महान योगदान को ध्यान में रखते हुए, जिसे अभी तक पूरी तरह से मान्यता नहीं मिली है, मातृत्व का सामाजिक महत्व और परिवार में तथा बच्चों के पालन–पोषण में माता–पिता दोनों की भूमिका, तथा यह जानते हुए कि प्रजनन में महिलाओं की भूमिका भेदभाव का आधार नहीं होनी चाहिए, बल्कि बच्चों के पालन–पोषण के लिए पुरुषों और महिलाओं तथा पूरे समाज के बीच जिम्मेदारी को साझा करने की आवश्यकता होती है, इस बात से अवगत होना कि पुरुषों और महिलाओं के बीच पूर्ण समानता प्राप्त करने के लिए समाज और परिवार में पुरुषों की पारंपरिक भूमिका के साथ–साथ महिलाओं की भूमिका में भी बदलाव की आवश्यकता है, महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव के उन्मूलन पर घोषणा में निर्धारित सिद्धांतों को लागू करने तथा इस प्रयोजन के लिए सभी रूपों और अभिव्यक्तियों में इस तरह के भेदभाव को समाप्त करने के लिए आवश्यक उपायों को अपनाने के लिए दृढ़ संकल्पित।

<u>प्रश्न न0 4–</u> राज्य के नीति निदेशक तत्व जो महिलाओं के कल्याण के लिए उन्नयन का आश्वासन देते है, की विवेचना कीजिए।

<u>उत्तर–</u> राज्य के नीति निदेशक तत्व भारतीय संविधान के भाग 4 वर्णित है। नीति–निदेशक तत्वों में वे उद्देश्य एवं लक्ष्य निहित है जिनका पालन करना राज्य का परम पुनीत कर्तव्य है। अर्थात संविधान की प्रस्तावना में परिकल्पित 'लोक–हितकारी राज्य' एवं –समाजवादी समाज, की स्थापना का आदर्श तभी प्राप्त किया जा सकता है जबकि सरकार नीति–निदेशक सिद्धान्त का लागू करने का प्रयत्न करे। आज हम एक कल्याणकारी राजय के नागरिक है, जिसका कर्तव्य जनसाधारण के सुख एवं समृद्धि की अभिवृद्धि करना है। इसी उद्देश्य से नीति–निदेशक सिद्धान्तों के कुछ आर्थिक और सामाजिक लक्ष्यों को निहित किया गया है, जिनका पालन राज्यों को करना अभीष्ट है।

नीति–निदेशक तत्वों में वे आदर्श निहित है जिनको प्रत्येक सरकार अपनी नीतियों के निर्धारण और कानून बढ़ाने में सदैव ध्यान रखेगी। इसमें वे आर्थिक, सामाजिक और प्रशासनिक सिद्धान्त अन्तनिर्हित है जो भारत जैसे देश की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुकूल है।

डॉ0 बी.आर. अम्बेडकरनगर ने कहा है कि ''ये भारतीय संविधान की अनोखी विशेषताएँ है। इसमें एक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य निहित है।''

भारतीय संविधान के राज्य के निर्धारित नीति निदेशक तत्व अर्थात अनुच्छेद 36 से 51 अध्याय 4 कल्याणकारी राज्य की स्थापना करते है। सभी क्षेत्रों के साथ महिलाओं के लिए कल्याणकारी योजना की बात की गयी है।

भारतीय संविधान के अन्तर्गत राज्य के नीति–निदेशक तत्व के अन्तर्गत अनुच्छेद 39,40,42,46,47 आदि अनुच्छेदों में महिलाओं के कल्याणकारी योजनाओं की चर्चा की गई है जिसके अनुसार अनुच्छेद 39 आर्थिक न्याय प्राप्त करने के सम्बन्ध में सिद्धान्त देता है अर्थात अनुच्छेद 39 राज्य को विशेषतया अपनी नीति इस प्रकार संचालन करने के निदेश देता है ताकि–

(क) पुरूष और स्त्री सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो।

(ख) समुदाय की भौतिक सम्पदा का स्वामित्व और नियन्त्रण इस प्रकार बाँटा हो जिससे सामूहिक हितों का सर्वोत्तम साधन बन सके। इस खण्ड के अधीन उद्देश्यो की पूर्ति करने के लिए राज्य उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण कर सकता है।

(ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन के साधन का सर्वसाधारण के अहित के लिए केन्द्रण न हो।

(घ) पुरूषों और स्त्रियों दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन हो।

(ड़) कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगार में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो।

(च) बालकों के स्वतन्त्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएँ दी जाए बालकों तथा अल्पवय व्यक्तियों को शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाये।

अनुच्छेद 39 (घ) के अनुसरण में संसद ने समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 पारित किया गया है। रणधीर सिंह बनाम भारत संघ के वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यद्यपि समान कार्य के लिए समान वेतन संविधान के अधीन एक मूल अधिकार नहीं है किन्तु एक निश्चय ही यह एक सांविधानिक लक्ष्य है और यदि राज्य इस मामले में विभेद करता है तो न्यायालय इसके पालन करने के लिए अनुच्छेद 32 के अधीन अपनी आधिकारिता का प्रयोग कर सकता है अर्थात समान कार्य के लिए वेतन का सिद्धान्त दैनिक मजदूरी पर नियुक्त व्यक्तियों पर भी लागू होता है। यदि वे स्थयी कर्मचारियों के समान कार्य करते हैं तो वे भी समान वेतन पाने के हकदार है।

संविधान का अनुच्छेद 40 निम्नलिखित में से एक को प्रतिष्ठापित करता है–राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांत इसमें प्रावधान है कि राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करने के लिए कदम उठाएगा तथा उन्हें ऐसी शक्तियां और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने में सक्षम बनाने के लिए आवश्यक हों।

पंचायती राज्य संस्थाओं में 73 एवं 74 वें संविधान संशोधन द्वारा महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान है।

अनुच्छेद 42 में मानवीय कार्य स्थितियों को सुनिश्चित करने और मातृत्व राहत प्रदान करने का प्रावधान है। इसमें कहा गया है कि ''राज्य काम की न्यायसंगत और मानवीय स्थितियों को सुनिश्चित करने और मातृत्व राहत के लिए प्रावधान करेगा।''

अनुच्छेद 46 में कहा गया है कि राज्य अपनी शक्ति का उपयोग समाज के कमजोर वर्गों के शैक्षिक और आर्थिक हितों को बढ़ावा देने के लिए करेगा, जिसमें अनुसूचित जनजातियों के साथ–साथ अनुसूचित जातियों के लोग भी शामिल हैं।

अनुच्छेद 47 में राज्य अपने लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर को बढ़ाने तथा लोक स्वास्थ्य में सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और विशेष रूप से राज्य मादक पेयों और मादक पेयों के औषधीय प्रयोजनों को छोड़कर अन्य प्रयोजनों के लिए उपभोग पर प्रतिषेध लगाने का प्रयास करेगा।

<u>प्रश्न न0 5–</u> दहेज हत्या के आपराधिक विषयक विधि की समीक्षा कीजिए एवं आवश्यक अवयवों का वर्णन कीजिए।

<u>उत्तर–</u> दहेज–मृत्यु–भारतीय दण्ड संहिता, 1860 की धारा 304ख में दहेज–मृत्यु के बारें में प्रावधान किया गया है। यह धारा 1986 के एक संशोधन द्वारा अन्तःस्थापित की गयी है। मूल पाठ इस प्रकार है–

धारा 304ख दहेज–मृत्यु–(1) जहाँ विवाह के सात वर्ष के भीतर किसी स्त्री की मृत्यु जल जाने से अथवा शारीरिक क्षति से अथवा सामान्य परिस्थितियों से भिन्न परिस्थितियों में हो जाती है और यह दर्शित किया जाता है कि मृत्यु से ठीक पहले उसे उसके पति द्वारा पति के रिश्तेदारों द्वारा दहेज के लिए माँग को लेकर परेशान किया गया था अथवा उसके साथ निर्दयतापूर्वक व्यवहार किया गया था तो इसे दहेज मृत्यु कहा जायेगा और उसकी मृत्यु का कारण उसके प्रति अथवा रिश्तेदारों को माना जायेगा।

स्पष्टीकरण– इस उपधारा के प्रयोजन के लिए दहेज से अभिप्राय वही है जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 की धारा में यथापरिभाषा है।

(2) जो कोई दहेज मृत्यु कारित करेगा वह उतनी अवधि तक के कारावास से दण्डित किया जायेगा जो सात वर्ष से कम नहीं होगी लेकिन जो आजीवन कारावास तक हो सकेगी।

दहेज–मृत्यु की बढ़ती हुई घटनाओं को देखते हुए 1986 में यह धारा भारतीय दण्ड संहिता में जोड़ी गई है। यह धारा एक नये अपराध का सृजन करती है।

कंस राज बनाम पंजाब राज्य , एआईआर 2000 एससी 2324 पति की गलती के लिए, ससुराल वालों या अन्य रिश्तेदारों को, सभी मामलों में, दहेज की मांग में शामिल नहीं माना जा सकता है। ऐसे मामलों में जहां ऐसा आरोप लगाया जाता है, पति के अलावा अन्य व्यक्तियों पर लगाए गए प्रत्यक्ष कृत्यों को उचित संदेह से परे साबित करना आवश्यक है। केवल अनुमान और निहितार्थों के आधार पर ऐसे रिश्तेदारों को दहेज हत्या से संबंधित अपराध के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। हालांकि दहेज हत्या के मामलों में मृतक पत्नियों के ससुराल वालों के सभी रिश्तेदारों को शामिल करने की प्रवृत्ति विकसित हुई है, जो अगर हतोत्साहित नहीं होती है तो वास्तविक दोषियों के खिलाफ भी अभियोजन पक्ष के मामले को प्रभावित कर सकती है। अधिक से अधिक लोगों को दोषी ठहराने के अपने अति उत्साह और बेचौनी में मृतक के माता–पिता अन्य रिश्तेदारों को शामिल करने का प्रयास करते पाए गए हैं जो अंततः वास्तविक आरोपियों के खिलाफ भी अभियोजन पक्ष के मामले को कमजोर करते हैं जैसा कि तत्काल मामले में हुआ प्रतीत होता है।

श्रीमती शांति और अन्य बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा एआईआर 1991 एससी 1226 के मामले में यह अभिनिर्धारित हुआ है कि अभियुक्तगण का मृतक के पिता तथा भाई से दहेज की मांग करना तथा पत्नी के साथ निर्दयता पूर्वक व्यवहार करना, मृतक का विवाह के 7 साल के भीतर मर जाना, मृतक के माता–पिता को सूचना दिए बिना जल्दीबाजी में मृतक का दाह संस्कार कर देना, यह सब अप्राकृतिक मृत्यु के संकेत हैं। धारा 304 बी के अंतर्गत अपराध का गठन करते हैं।

स्टेट ऑफ हिमाचल प्रदेश बनाम निक्कूराम एआईआर 1995 एससी 67 के मामले में उच्चतम न्यायालय ने धारा 304 बी के आवश्यक तत्व पर प्रकाश डाला है। उसमें एक मृतक रोशनी के पति राम उसकी माता वतथा बहन कमला देवी पर रोशनी की मृत्यु दहेज मृत्यु का आरोप था। यह कहा गया कि दहेज की मांग को लेकर रोशनी के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाता था। उसे दरांती से चोट पहुंचाई गई। अनंत रोशनी ने विषपान कर मृत्यु कारित कर ली। उच्चतम न्यायालय ने धारा 304 बी की परिधि में आने वाला अपराध नहीं माना क्योंकि ना तो रोशनी के शरीर पर से चोट पाई गई जो मृत्यु पारित करने वाली हो और ना ही दहेज के कारण निर्दयता पूर्वक व्यवहार करने की कोई साक्ष्य थी।

सरोजिनी बनाम स्टेट ऑफ मध्यप्रदेश एक महत्वपूर्ण मामला है।उसमें मृतक का शव उसके सुसराल के मकान के स्टोर रूम में पूर्ण रूप से जली हुई अवस्था में पाया गया। उसकी जीभ और आंखें बाहर निकल आयी थी और मुंह से खून रिस रहा था। पोस्टमार्टम रिपोर्ट और मेडिकल रिपोर्ट तथा अन्य प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर उच्चतम न्यायालय ने हत्या का मामला माना न कि आत्महत्या का।

आत्महत्या का दुष्प्रेरण–दहेज मृत्यु जैसे अपराध से जुड़ा हुआ ही यह एक और अपराध है जो सीधा महिलाओं से सम्बन्ध रखता है। कई का दहेज, उत्पीड़ना निर्दयतापूर्ण व्यवहार आदि से विवाहिता इतना परेशान हो जाती है कि उसके समक्ष आत्महत्या करने के अलावा और कोई उपाय नहीं रह जाता है।

धारा 206 आत्महत्या का दुष्प्रेरण– जो कोई व्यक्ति आत्महत्या करें तो जो कोई ऐसी आत्महत्या का दुष्प्रेरण करेगा, वह दोनों में से किसी भाँति के कारावास से, जिसकी अवधि दस वर्ष तक की हो सकेगी, दण्डित किया जायेगा और जुर्माने से भी दण्डनीय होगा।

स्टेट ऑफ पंजाब बनाम इकबाल सिंह 7 जून, 1983 की दोपहर को हुई दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बाद मृतका की मां ने पति इकबाल सिंह के खिलाफ प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराई। जांच के बाद पति, उसकी मां और बहन को मुकदमे के लिए पेश किया गया। अभियोजन पक्ष के साक्ष्य की जांच के बाद ट्रायल कोर्ट ने तीनों आरोपियों को धारा 306 , आईपीसी के तहत दोषी ठहराया और पति इकबाल सिंह को सात साल के सश्रम कारावास और 5,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई, और न देने पर एक साल के सश्रम कारावास की सजा सुनाई। जहां तक अन्य दो आरोपियों का सवाल है, उनकी भूमिका और इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि मां एक वृद्ध और कमजोर महिला थी, उन्होंने उन्हें तीन साल के सश्रम कारावास और प्रत्येक को 1,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई, और न देने पर तीन महीने के सश्रम कारावास की सजा सुनाई।

पवन कुमार बनाम स्टेट ऑफ हरियाणा का मामला। इस मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि दहेज मृत्यु के मामले में दहेज के लिए करार का होना आवश्यक नहीं है। मृतक और उसके पिता से निरंतर टीवी और स्कूटर की मांग करते रहना दहेज की परिधि में आता है।

दीपक शोहले बनाम स्टेट आफ मध्य प्रदेश के मामले में अभियुक्त द्वारा एक अविवाहित लड़की का शील भंग किया गया था। उस लड़की द्वारा आत्महत्या कर दी गयी। न्यायालय ने इसे आत्महत्या के दुष्प्रेरण का मामला नहीं माना। अधिक से अधिक यह शीलभंग का मामला था।

प्रश्न न0 6–दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 प्रमुख प्रावधनों की विवेचना कीजिए।

<u>उत्तर–</u> दण्ड लेने या देने पर प्रतिषेध करने के लिए अधिनियम।
भारत गणराज्य के बारहवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियम बनाया गया–
1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ.–
(1)इस अधिनियम को दंड प्रतिषेध अधिनियम, 1961 कहा जा सकता है।
(2) इसका विस्तार जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत पर है।
(3) यह उस तारीख को लागू होगा जिसे केंद्रीय सरकार आधिकारिक राजपत्र में प्रकाशन द्वारा नियत करेगी।
2. 'दहेज' की परिभाषा–इस अधिनियम में, ष्दहेजष से स्थायी किसी भी संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति से है जो प्रत्यक्ष या अनुचित रूप से दी गई हो या देने के लिए सहमति व्यक्ति की गई हो–
(क)विवाह के एक पक्ष द्वारा विवाह के दूसरे पक्ष को; या
(ख) विवाह के किसी भी पक्ष के माता–पिता या किसी अन्य व्यक्ति को, विवाह के किसी भी पक्ष या किसी अन्य व्यक्ति को,
उक्त पक्ष के विवाह के संबंध में विवाह के समय या तो उससे पहले या उसके बाद किसी भी समय होता है, लेकिन इसमें उन व्यक्तियों के मामले में मेहर या महर शामिल नहीं होता है जिन पर मुस्लिम व्यक्तित्व कानून (शरीयत) लागू होता है।
स्पष्टीकरण 2.– "मूल्यवान प्रतिभूति" का वही अर्थ है जो भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 30 में है।
3. दण्ड देने या लेने पर दण्ड–(1) यदि कोई व्यक्ति, इस अधिनियम के प्रारंभ में दहेज देगा या देने या लेने के लिए दुष्प्रेरित होगा, तो वह कम से कम पांच वर्ष के कारावास से, और कम से कम पंद्रह हजार रुपये या ऐसी दहेज की कीमत की राशि, जो भी अधिक हो, से दण्डित किया जाएगा– उस न्यायालय को पर्याप्त और विशेष परिस्थितियों से, जो निर्णय में अभिलिखित होंगे, पांच वर्ष से कम अवधि के कारावास का दंड दे।
(2) उपधारा (1) की कोई बात निम्नलिखित पर या उनके संबंध में लागू नहीं होगी,–
(1) विवाह के समय दुल्हन को दिए जाने वाले उपहार (उस संबंध में कोई मांग किए बिना)–
बशर्ते कि ऐसे उपहारों को इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार रखी गई सूची में दर्ज किया जाए;
(2) विवाह के समय दूल्हे को दिए जाने वाले उपहार (उस संबंध में कोई मांग किए बिना): बशर्ते कि ऐसे उपहारों को इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों के अनुसार रखी गई सूची में दर्ज किया जाए–
परन्तु यह और कि जहां ऐसे उपहार दुल्हन द्वारा या उसकी ओर से या दुल्हन से संबंधित किसी व्यक्ति द्वारा दिए जाते हैं, वहां ऐसे उपहार रूढ़िगत प्रकृति के होते हैं और उनका मूल्य उस व्यक्ति की वित्तीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए अत्यधिक नहीं होता है, जिसके द्वारा या जिसकी ओर से ऐसे उपहार दिए जाते हैं।
4. दहेज मांगने पर दंड.– यदि कोई व्यक्ति, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, दुल्हन या दूल्हे के माता–पिता या अन्य रिश्तेदारों या संरक्षक से, जैसा भी मामला हो, कोई दहेज मांगता है, तो उसे कम से कम छह महीने की कैद से, जिसे दो साल तक बढ़ाया जा सकता है और जुर्माने से, जो दस हजार रुपये तक हो सकता है, दंडनीय होगारू
बशर्ते कि न्यायालय पर्याप्त और विशेष कारणों से, जिनका उल्लेख निर्णय में किया जाएगा, छह माह से कम अवधि के कारावास का दण्ड दे सकेगा।
विज्ञापन पर प्रतिबंध.– यदि कोई व्यक्ति,
(1) किसी समाचार पत्र, पत्रिका, जर्नल या किसी अन्य मीडिया के माध्यम से विज्ञापन देकर अपने बेटे या बेटी या किसी अन्य रिश्तेदार की शादी के लिए किसी व्यवसाय या अन्य हित में अपनी संपत्ति में हिस्सा या धन या दोनों की पेशकश करता है;
(2) खंड (क) में निर्दिष्ट किसी विज्ञापन को मुद्रित या प्रकाशित या प्रसारित करता है,
वह कारावास से, जिसकी अवधि छह मास से कम नहीं होगी किन्तु जो पांच वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो पंद्रह हजार रुपए तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा– परन्तु न्यायालय पर्याप्त और विशेष कारणों से, जो निर्णय में अभिलिखित किए जाएंगे, छह मास से कम अवधि के कारावास का दण्ड दे सकेगा।
5. दहेज देने या लेने का करार शून्य होगा।
दहेज देने या लेने के लिए कोई भी समझौता शून्य होगा।
6. दहेज का पत्नी या उसके उत्तराधिकारियों के लाभ के लिए होना।
(1) जहां कोई दहेज उस स्त्री के अलावा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है जिसके विवाह के संबंध में वह दिया गया है, तो वह व्यक्ति उसे उस स्त्री को हस्तांतरित कर देगा–
(ए) यदि दहेज विवाह से पहले प्राप्त हुआ था, तो विवाह की तारीख से तीन महीने के भीतरय या
(बी) यदि दहेज विवाह के समय या उसके बाद प्राप्त हुआ हो, तो उसकी प्राप्ति की तारीख से तीन महीने के भीतर; या
(सी) यदि दहेज उस समय प्राप्त हुआ था जब महिला नाबालिग थी, तो उसके अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के तीन महीने के भीतर, और ऐसे हस्तांतरण तक, उसे महिला के लाभ के लिए ट्रस्ट में रखेगा।
(2) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) द्वारा निर्दिष्ट समय सीमा के भीतर या उपधारा (3) द्वारा अपेक्षित किसी संपत्ति को स्थानांतरित करने में असफल रहता है, तो वह कारावास से, जो छह महीने से कम नहीं होगा, लेकिन जो दो साल

तक बढ़ सकता है या जुर्माने से, जो पांच हजार रुपये से कम नहीं होगा, लेकिन जो दस हजार रुपये तक बढ़ सकता है या दोनों से, दंडनीय होगा।

(3) जहां उपधारा (1) के अधीन किसी संपत्ति की हकदार महिला उसे प्राप्त करने से पहले मर जाती है, वहां महिला के उत्तराधिकारी उसे उस समय धारण करने वाले व्यक्ति से दावा करने के हकदार होंगे–

परंतु जहां ऐसी स्त्री की मृत्यु उसके विवाह के सात वर्ष के भीतर, प्राकृतिक कारणों से नहीं, होती है, वहां ऐसी संपत्ति,–(ए) यदि उसकी कोई संतान नहीं है, तो उसे उसके माता–पिता को हस्तांतरित कर दिया जाएय या

(बी) यदि उसके बच्चे हैं, तो उसे ऐसे बच्चों को हस्तांतरित कर दिया जाएगा और ऐसे हस्तांतरण तक उसे ऐसे बच्चों के लिए ट्रस्ट में रखा जाएगा।

(3) जहां किसी व्यक्ति को उपधारा (1) या उपधारा (3) द्वारा अपेक्षित किसी संपत्ति को हस्तांतरित करने में विफलता के लिए उपधारा (2) के तहत दोषी ठहराया गया है, उस उपधारा के तहत अपने दोषसिद्धि से पहले, ऐसी संपत्ति उस महिला को हकदार है या, जैसा भी मामला हो, उसके उत्तराधिकारियों, माता–पिता या बच्चों को हस्तांतरित नहीं किया है, न्यायालय उस उपधारा के तहत दंड देने के अतिरिक्त, लिखित आदेश द्वारा निर्देश देगा कि ऐसा व्यक्ति संपत्ति को ऐसी महिला को या, जैसा भी मामला हो, उसके उत्तराधिकारियों, माता–पिता या बच्चों को आदेश में निर्दिष्ट अवधि के भीतर स्थानांतरित कर देगा, और यदि ऐसा व्यक्ति निर्दिष्ट अवधि के भीतर निर्देश का पालन करने में विफल रहता है, तो संपत्ति के मूल्य के बराबर राशि उससे वसूल की जा सकती है जैसे कि यह ऐसे न्यायालय द्वारा लगाया गया जुर्माना था और ऐसी महिला को या, जैसा भी मामला हो, उसके उत्तराधिकारियों, माता–पिता या बच्चों को भुगतान किया जा सकता है।

(4) इस धारा में निहित कोई भी बात धारा 3 या धारा 4 के प्रावधानों पर प्रभाव नहीं डालेगी।

7. अपराधों का संज्ञान.–

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी,–

(ए) महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट से निम्नतर कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का विचारण नहीं करेगाय

(बी) कोई भी न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं लेगा, जब तक कि– ऐसे अपराध का गठन करने वाले तथ्यों की अपनी जानकारी या पुलिस रिपोर्ट, या

(ii) अपराध से पीड़ित व्यक्ति या ऐसे व्यक्ति के माता–पिता या अन्य रिश्तेदार या किसी मान्यता प्राप्त कल्याण संस्था या संगठन द्वारा की गई शिकायत;

(सी) किसी महानगर मजिस्ट्रेट या प्रथम श्रेणी न्यायिक मजिस्ट्रेट के लिए इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किसी व्यक्ति पर इस अधिनियम द्वारा प्राधिकृत कोई दंडादेश पारित करना वैध होगा।

स्पष्टीकरण.कृइस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, "मान्यता प्राप्त कल्याण संस्था या संगठन" से केन्द्रीय या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त मान्यता प्राप्त सामाजिक कल्याण संस्था या संगठन अभिप्रेत है।

(2) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 36 की कोई बात इस अधिनियम के अधीन दण्डनीय किसी अपराध पर लागू नहीं होगी।

(3) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, अपराध से व्यथित व्यक्ति द्वारा दिया गया कथन ऐसे व्यक्ति पर इस अधिनियम के अधीन अभियोजन नहीं चलाया जाएगा।

8. अपराधों का कुछ प्रयोजनों के लिए संज्ञेय होना तथा उनका अजमानतीय एवं अशमनीय होना।

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) इस अधिनियम के अधीन अपराधों पर इस प्रकार लागू होगी मानो वे संज्ञेय अपराध हों –

(ए) ऐसे अपराधों की जांच के प्रयोजनों के लिएय और

(बी) अन्य विषयों के प्रयोजनों के लिए–

(सी) उस संहिता की धारा 42 में निर्दिष्ट विषयय और

(डी) किसी व्यक्ति को बिना वारंट या मजिस्ट्रेट के आदेश के गिरफ्तार करना।

(2) इस अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक अपराध गैर–जमानती और गैर–शमनीय होगा।

(ए) कुछ मामलों में सबूत का भार.– जहां किसी व्यक्ति पर धारा 3 के अधीन दहेज लेने या लेने के लिए दुष्प्रेरित करने, या धारा 4 के अधीन दहेज की मांग करने के लिए अभियोजन चलाया जाता है, वहां यह साबित करने का भार उस पर होगा कि उसने इन धाराओं के अधीन कोई अपराध नहीं किया है।

दहेज प्रतिषेध अधिकारी–

(1) राज्य सरकार उतने दहेज प्रतिषेध अधिकारी नियुक्त कर सकेगी, जितने वह ठीक समझे तथा उन क्षेत्रों को विनिर्दिष्ट कर सकेगी, जिनके संबंध में वे इस अधिनियम के अधीन अपने अधिकार क्षेत्र और शक्तियों का प्रयोग करेंगे।

(2) प्रत्येक दहेज प्रतिषेध अधिकारी निम्नलिखित शक्तियों और कार्यों का प्रयोग और पालन करेगा, अर्थात–

(ए) यह देखना कि इस अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन किया जा रहा हैय

(बी) जहां तक संभव हो दहेज लेने या लेने के लिए उकसाने या दहेज की मांग करने को रोकनाय

(सी) अधिनियम के अंतर्गत अपराध करने वाले व्यक्तियों के अभियोजन के लिए आवश्यक साक्ष्य एकत्र करनाय तथा

(डी) ऐसे अतिरिक्त कृत्यों का पालन करना, जो राज्य सरकार द्वारा उसे सौंपे जाएं या जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

(3) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, दहेज प्रतिषेध अधिकारी को पुलिस अधिकारी की ऐसी शक्तियां प्रदान कर सकेगी, जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट की जाएं। अधिकारी ऐसी शक्तियों का प्रयोग, ऐसी सीमाओं और शर्तों के अधीन रहते हुए करेगा, जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएं।

(4) राज्य सरकार, इस अधिनियम के अधीन दहेज प्रतिषेध अधिकारियों को उनके कार्यों के कुशल निष्पादन में सलाह देने और सहायता देने के प्रयोजन के लिए, एक सलाहकार बोर्ड नियुक्त कर सकेगी जिसमें उस क्षेत्र के पांच से अधिक सामाजिक कल्याण कार्यकर्ता (जिनमें से कम से कम दो महिलाएं होंगी) शामिल होंगे जिसके संबंध में ऐसा दहेज प्रतिषेध अधिकारी उपधारा (1) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करता है।

9. नियम बनाने की शक्ति.–

(1) केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए नियम बना सकेगी।

(2) विशेष रूप से, तथा पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित के लिए प्रावधान कर सकते हैं–

(ए) वह प्ररूप और रीति जिससे तथा वे व्यक्ति जिनके द्वारा धारा 3 की उपधारा (2) में निर्दिष्ट उपहारों की सूची रखी जाएगी तथा उससे संबंधित अन्य सभी बातें; और

(बी) इस अधिनियम के प्रशासन के संबंध में नीति और कार्रवाई का बेहतर समन्वय है।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक नियम बनाया गया है, बनाए जाने के पश्चात यथाशीघ्र, संसद के प्रत्येक सदन की विशेषताएं, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा। यह अवधि एक सत्र में या दो या अधिक उपयोगी पृष्ठों में पूरी हो जाती है। यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त उपयोगी पंक्तियों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदनों के नियम में कोई परिवर्तन करने पर सहमत हो जाएं तो वह ऐसे संशोधित रूप में ही प्रभावी होगा। यदि अन्यथा वह प्रभावी नहीं होगा, तो भी नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की रीति पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

10. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति.–

(1) राज्य सरकार, राजपत्र में प्रकाशित द्वारा, इस अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने के लिए नियम बनाया गया।

(2) विशिष्ट, तथा पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन विषयों के लिए उपबंधित कर सकते हैं, अर्थात–

(ए) धारा 8बी की उपधारा (2) के अधीन दण्ड प्रतिषेध अधिकारियों द्वारा कार्यान्वित जाने वाले अतिरिक्त कार्यय

(बी) वे दशा और दायित्व अधीन दष प्रतिषेध अधिकारी धारा 8ख की उपधारा (3) के अधीन अपने व्यक्तित्व का प्रयोग कर सकते हैं।

(3) इस धारा के अधीन राज्य सरकार द्वारा निर्मित प्रत्येक नियम बनाए जाने के पश्चात यथाशीघ्र राज्य विधान–मंडल की विशेषताएं रखी जाएंगी।

<u>प्रश्न न0 7–</u> जेन्डर–जस्टिस एवं उच्चतम न्यायालय पर एक निबन्ध लिखिए।

<u>उत्तर–</u> हमारा संविधान सामाजिक अवधारणा की लोकहित भावनाओं को आत्मसात किये हुए है। इसका मुख्य उद्देश्य निर्धनता, अज्ञानता, रोग एवं समानता का निवारण करना है। संविधान के अनुच्छेद 14 में निहित समता के मूल अधिकार का हनन संविधान के आधारभूत ढाँचे का अतिक्रमण है।

संविधान के अनुच्छेद 14 में विधि के समक्ष समता एवं अनुच्छेद 15 में धर्म, मूलवंश,जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध किया गया है। अनुच्छेद 14 में यह कहा गया है कि–''राज्य भारत के राज्य क्षेत्र में किसी व्यक्ति के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।'' अनुच्छेद 15 में यह व्यवस्था की गयी है कि–(1) राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इसमें से किसी के आधार पर–(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश या (ख) पूर्णतः या भागतः राज्य निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागत के स्थानों के उपयोग के सम्बन्ध में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व निर्बन्धन या शर्त के अधीन नहीं होगा।

इस प्रकार अनुच्छेद 14 एवं अनुच्छेद 15(1) व (2) से यह स्पष्ट होता है कि केवल लिंग के आधार पर अर्थात पुरूष अथवा महिला होने के आधार पर उपरोक्त प्रकार का विभेद नहीं किया जायेगा। विधि के समक्ष पुरूष एवं महिलायें समान होगी तथा उन्हें विधियों का समान संरक्षण प्राप्त होगा। साथ ही केवल महिला होने के आधार पर किसी को दुकान, सार्वजनिक भोजनाल, होटल अाविा सार्वजनिक मनोरंजन के स्थान पर प्रवेश से नहीं रोका जायेगा। इसी प्रकार केवल महिला होने के आधार किसी को राज्य निधि से पूर्णतः या भागतः पोषित साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नानघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागत के स्थानों के उपयोग से वंचित नही किया जायेगा।

काठ रनिंग बनाम सौराष्ट्र राज्य ए.आई.आर. 1952 ए.सी. 123 के मामले में विभेद का अर्थ स्पष्ट करते हुए उच्चतम न्यायालय द्वारा यह गया है कि'' विभेद शब्द का तात्पर्य किसी व्यक्ति के साथ दूसरों की तुलना में प्रतिकूल व्यवहार करना है।'' यदि कोई विधि धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर असमानता का व्यवहार करती है तो वह शून्य होगी।

श्रीमती ए. क्रेकनेल बनाम स्टेट ए.आई.आर. 1952 इलाहाबाद 746 के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित गया कि किसी महिला को मात्र महिला होने के कारण सम्पति धारण करने अथवा उसका उपभोग–उपयोग करने से वंचित नहीं किया जा सकता है। यदि कोई विधि मात्र इस आधार पर सम्पति से वंचित करने वाली व्यवस्था करती है तो वह असंवैधानिक मानी जायेगी।

महिलाओं के लिए विशेष उपबन्ध– उल्लेखनीय है कि संविधान के अनुच्छेद 15(3) में महिलाओं एवं बालकों के लिए विशेष उपबन्ध किया गया है। इसमें यह कहा गया है कि''अनुच्छेद 15 की बात राज्य को स्त्रियाँ और बालकों के लिए कोई विशेष करने से निवारित नहीं करेगी।'' इस प्रकार अनुच्छेद 15(3), अनुच्छेद 15(1) एवं 15(2) का एक अपवाद प्रस्तुत करता है। इसके अनुसार राज्य स्त्रियों और बालकों के लिए विशेष उपबन्ध कर सकता है। इसे अनुच्छेद 15 के अर्थान्तर्गत विभेद नहीं माना जायेगा।

मूलर बनाम ओरेगन 2 एलए.एसएस के मामले में अमरीकी न्यायालय द्वारा यह कहा गया है कि ''अस्तित्व के संघर्ष में स्त्रियों की शारीरिक बनावट तथा उनके स्त्रीजन्य कार्य उन्हें दुःखद स्थिति में कर देते हैं। अतः उनकी शारीरिक कुशलता का संरक्षण जनहित का उद्देश्य हो जाता है जिससे जाति, शक्ति और निपुणता को सुरक्षित रखा जा सके।''

यही कारण है कि महिलाओं के लिए कई विशेष विधियाँ बनाई गई हैं। संविधान के अनुच्छेद 42 में महिलाओं के लिए विशेष प्रसूति सहयता का उपबन्ध किया गया है। यह संविधान के अनुच्छेद 15 (1) का अतिक्रमण नहीं है।

दत्तात्रेय बनाम स्टेट ए.आई.आर. 1953 बम्बई 311 के मामले में बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा यह कहा गया है कि राज्य केवल स्त्रियों के लिए शिक्षण संस्थाओं की स्थापना कर सकता है तथा अन्य ऐसी संस्थाओं में उनके लिए स्थान भी आरक्षित कर सकता है।

टी सुधाकर रेड्डी बनाम स्टेट आफ आध्र प्रदेश ए.आई.आर. 1994 ए.सी. 544 के मामले में आध्र प्रदेश सहकारी समिति अधिनियम, 1964 के अधीन रजिस्ट्री द्वारा किसी वर्ग विशेष की दो महिलाओं के नामनिदेशन को उच्चतम न्यायालय द्वारा उचित ठहराया गया।

कुछ विनिर्णयों में महिलाओं के लिए किये विशेष उपबन्धों को संवैधानिक माना गया है; जैसे–

(1) सविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 5, नियम 15 के अन्तर्गत समन की तामील प्रतिवादी के नहीं मिलने पर उनके परिवार के किसी वयस्क पुरूष सदस्य पर जी जा सकती है, स्त्रियों पर नहीं। स्त्रियों को तामील के मुक्त रखा गया है।

(2) भारतीय दण्उ प्रक्रिया, 1860 की धारा के उपबन्ध विधिमान्य है क्योंकि ये स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा करते हैं।

(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता के अन्तर्गत स्त्रियों का पुरूष से भरण–पोषण पाने का अधिकार विधिसम्मत है।

इसी प्रकार संविधान में बालकों के लिए भी कतिपय विशेष व्यवस्थायें की गयी है, जैसे–

(क) संविधान के अनुच्छेद 45 के अन्तर्गत 14 वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का उपबन्ध;

(ख) अनुच्छेद 39 (च) के अन्तर्गत बालकों की शोषण से रक्षा का उपबन्ध आदि।

लेक नियोजन में अवसार की

<u>प्रश्न न0 8–</u> स्त्रीधन के सिद्धान्त को स्पष्ट कीजिए और विधि के उन उपबन्धों को सन्दर्भित कीजिए जहाँ यह अधिकार स्त्रियों को दिया गया है।

<u>उत्तर–</u> दहेज प्रथा हमारे आधुनिक समाज में व्याप्त सबसे आम सामाजिक बुराइयों में से एक है। इस बुराई ने पहले ही कई लड़कियों की जान ले ली है, हालाँकि कई लड़कियाँ इसके कारण अपने जीवन में धीमे जहर की तरह पीड़ित हैं। हालाँकि हम काफी हद तक जागरूकता पैदा करने में सफल रहे हैं, लेकिन हमारे देश में बड़ी जातीय, भाषाई, सांस्कृतिक विविधताएँ हैं। ऐसे में जब सामाजिक बुराइयों को खत्म करने की बात आती है, तो हमारे समाज में लोग किसी एक समूह या संगठन की माँगों का पालन नहीं कर सकते हैं।

इसलिए यह आवश्यक है कि इन बुराइयों को खत्म करने का काम व्यक्तिगत स्तर पर किया जाए। हालाँकि, एक और कारक है जिस पर हमें विचार करने की आवश्यकता है और वह है स्त्रीधन का उपयोग करने का अधिकार । हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अगर दहेज लेने से मना कर दिया जाता है, तो भी दुल्हन का स्त्रीधन का अधिकार खत्म नहीं होता है और उसका पति इसे अपने पास नहीं रखता है, क्योंकि उसने स्त्रीधन कमाया है। स्त्रीधन शब्द स्त्री शब्द से आया है जिसका अर्थ है महिला और धन जिसका अर्थ है संपत्ति। इसलिए, इन दोनों

अभिव्यक्तियों को मिलाकर, हमें महिला की संपत्ति मिलती है जिसे स्त्रीधन कहा जाता है । यह एक ऐसा शब्द है जो सदियों से हिंदू स्मृतियों से आया है, लेकिन आज यह सभी प्रकार के जातिगत विवाहों में शामिल हो गया है। व्यापक अर्थों में, स्त्रीधन महिला की संपत्ति है, जिस पर उसका पूर्ण स्वामित्व होता है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14 ने महिला की संपत्ति पर हिंदू कानून में महत्वपूर्ण सुधार किए। 1956 से पहले, महिला की संपत्ति दो मदों में विभाजित थीरू स्त्रीधन और महिला की संपत्ति। लेकिन हिंदू कानून में, इसे सभी ने तकनीकी अर्थ दिया है। हिंदू कानून में एक महिला के संपत्ति रखने और उसका निपटान करने के अधिकार को मान्यता दी गई है। किसी भी स्तर पर महिला को पूर्ण मालिक के रूप में संपत्ति के उपयोग से वंचित नहीं किया गया है। स्त्रीधन कोई भी मूल्यवान संपत्ति है, जिस पर केवल महिला का स्वामित्व होता है। यह एक ऐसी संपत्ति है, जिस पर उसका स्वामित्व और अलगाव का पूर्ण अधिकार है । श स्त्रीधनश अन्य संपत्ति से अलग है, जो एक महिला के स्वामित्व में है और जिसे श्महिला की संपत्तिश कहा जाता है स्मृतिकारों के अनुसार, स्त्रीधन में वे संपत्तियाँ शामिल थीं जो उसे रिश्तेदारों से उपहार के रूप में प्राप्त हुई थीं, जिसमें ज्यादातर चल संपत्तियाँ शामिल थीं, जैसे गहने, आभूषण और कपड़े। उसके विवाह समारोह के समय या दुल्हन की बारात के समय अजनबियों द्वारा उसे दिया गया उपहार भी स्त्रीधन माना जाता था ।

स्मृतिकारों ने 'स्त्रीधन' को उस संपत्ति के रूप में परिभाषित किया है जो एक महिला को उसके रिश्तेदारों से उपहार के रूप में मिली है, जिसमें ज्यादातर चल संपत्ति शामिल है। दुल्हन की बारात और शादी समारोह दोनों के दौरान, स्त्रीधन को उसके शादी के मेहमानों द्वारा दिए गए उपहार ले जाते हुए देखा जाता है। भगवानदीन डूबी बनाम माया बाई (1869) के मामले में, प्रिवी काउंसिल ने कहा कि हिंदू महिला द्वारा पुरुषों से प्राप्त की गई संपत्ति स्त्रीधन के अंतर्गत नहीं आती है। इसके बजाय, संपत्तियों को ष्महिलाओं की संपत्तिष के रूप में वर्गीकृत किया जाएगा। कसेर्बाई बनाम हंसराज (1906) के मामले में, बॉम्बे हाई कोर्ट ने बॉम्बे स्कूल सिद्धांत बनाया, जिसके अनुसार अन्य महिलाओं से विरासत में मिली संपत्ति को स्त्रीधन कहा जाता है। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने देबी मंगल प्रसाद सिंह बनाम महादेव प्रसाद सिंह (1912) के प्रसिद्ध मामले में देखा कि विभाजन के माध्यम से महिला द्वारा प्राप्त कोई भी हिस्सा स्त्रीधन नहीं है, बल्कि मिताक्षरा और दयाभागा दोनों स्कूलों में महिलाओं की भूमि है। हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 ने विभाजन से प्राप्त संयुक्त संपत्ति को पूर्ण संपत्ति या स्त्रीधन घोषित किया। पूर्ण संपत्ति की मालिक के रूप में, एक महिला को इसके अलगाव पर पूरा नियंत्रण होता है, जिसका अर्थ है कि वह इसे दे सकती है, बेच सकती है, पट्टे पर दे सकती है, व्यापार कर सकती है, गिरवी रख सकती है या जो चाहे कर सकती है।

स्त्री–सम्पदा– इसे स्त्रीधन के शीर्ष के रूप में जाना जाता है । कुंवारी अवस्था, पतिव्रता अवस्था या विधवा अवस्था के दौरान, ऐसे उपहार महिला को उसके माता–पिता और उनके रिश्तेदारों या पति या उसके रिश्तेदारों द्वारा दिए जा सकते हैं। ऐसे उपहार वसीयत या अंतर–जीवित द्वारा दिए जा सकते हैं। दयाभाग का स्कूल पति द्वारा अचल संपत्ति के उपहार को स्त्रीधन नहीं मानता है । किसी महिला को उसके कुंवारीपन या विधवापन के दौरान अजनबियों द्वारा उपहार या वसीयत के रूप में दी गई संपत्ति स्त्रीधन कहलाती है । 1956 से पहले, कवरचर के दौरान अजनबियों से प्राप्त उपहार स्त्रीधन थे , लेकिन उनके पति के जीवनकाल के दौरान उनके पति के नियंत्रण में थे। पति की मृत्यु के बाद वे स्त्रीधन बन गए । अपने स्वयं के परिश्रम से महिला अपने जीवन के किसी भी चरण में संपत्ति अर्जित कर सकती है, चाहे वह श्रम, नौकरी, गायन, नृत्य आदि के माध्यम से हो या किसी अन्य यांत्रिक कला के माध्यम से। इस प्रकार उसके द्वारा अपने कुंवारीपन या विधवापन के दौरान अर्जित की गई संपत्ति हिंदू विधि के अनुसार स्त्रीधन कहलाती है। ऐसी कोई भी संपत्ति जो उसके द्वारा अपने संरक्षण के दौरान अर्जित की जाती है, उसे मिथिला और बंगाल के स्कूलों के अनुसार स्त्रीधन नहीं माना जाएगा , लेकिन बाकी स्कूलों के अनुसार यह स्त्रीधन है ।हिंदू विधि विद्यालयों के अनुसार यह कहा जाता है कि कोई भी संपत्ति जो स्त्रीधन से खरीदी जाती है, या स्त्रीधन की बचत के साथ –साथ स्त्रीधन राजस्व के संचय और बचत से खरीदी जाती है, वह स्त्रीधन के रूप में गठित होती है । हिंदू कानून के तहत ऐसी कोई धारणा नहीं है कि समझौते के तहत संपत्ति प्राप्त करने वाली महिला इसे सीमित राज्य के रूप में लेती है। समझौते के तहत एक महिला द्वारा प्राप्त संपत्ति जिसके तहत वह स्त्रीधन के अपने अधिकारों को छोड़ देती है, वह भी स्त्रीधन होगी । जब कोई महिला पारिवारिक समझौते के तहत संपत्ति प्राप्त करती है, तो वह संपत्ति स्त्रीधन है या नहीं, यह व्यवस्था की शर्तों पर निर्भर करता है। सभी हिंदू विधि विद्यालयों में यह स्थापित मानदंड है कि कोई भी संपत्ति जो महिला अपने जीवन के किसी भी चरण में प्रतिकूल कब्जे से अर्जित करती है, वह उसका स्त्रीधन है। महिला को उसके भरण–पोषण के लिए एकमुश्त या समय–समय पर किए गए भुगतान, जिसमें ऐसे भरण–पोषण के बकाया भी शामिल हैं, स्त्रीधन का गठन करते हैं। इसके अतिरिक्त, भरण–पोषण के बदले पूर्ण उपहार के रूप में उसे हस्तांतरित सभी चल और अचल संपत्तियां अभी भी स्त्रीधन हैं। ससुर ने अपनी विधवा बहू को उसके भरण–पोषण के लिए कुछ संपत्ति दी थी। 1960 में उनका निधन हो गया और उत्तराधिकार के तौर पर उनका हिस्सा बहू को मिल गया। बहू ने विरासत में अपना हिस्सा पाने के लिए बंटवारे का वाद दायर किया। परिवार के अन्य सदस्यों ने कहा कि उसे अपना हिस्सा केवल इस शर्त पर लेने की अनुमति दी जाएगी कि वह भरण–पोषण विलेख के तहत उसे दी गई संपत्ति को मुकदमे की संपत्तियों में शामिल करेगी । एक हिंदू महिला किसी पुरुष या महिला से संपत्ति प्राप्त कर सकती है। ऐसी संपत्ति उसके माता–पिता या उसके पति की ओर से विरासत में मिल सकती है। मिताक्षरा द्वारा विरासत में मिली संपत्ति को स्त्रीधन माना जाता था । लेकिन कई फैसलों में ऐसी संपत्ति को महिला की संपत्ति माना गया

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के लागू होने के बाद विभाजन द्वारा प्राप्त हिस्सा स्त्रीधन के रूप में जाना जाता है। अधिनियम की धारा 14 के अनुसार, अधिनियम के लागू होने के बाद हिंदू महिला द्वारा विभाजन पर अर्जित कोई भी संपत्ति उसकी पूर्ण संपत्ति मानी जाएगी और इस अधिनियम के लागू होने से पहले उसे जो भी संपत्ति प्राप्त हुई है, वह भी उसकी पूर्ण संपत्ति होगी, यदि वह इस अधिनियम के लागू होने के दौरान भी उस संपत्ति पर काबिज रहती है। कृष्णम्मा बनाम कुमार कृष्णन में, न्यायालय ने माना कि विभाजन पर किसी महिला द्वारा प्राप्त संपत्ति से ऐसा कोई भी हिस्सा भी उसकी पूर्ण संपत्ति होगी। यह स्थापित दृष्टिकोण है कि विभाजन पर प्राप्त हिस्सा स्त्रीधन नहीं बल्कि महिला की संपत्ति है।

उपभोग और प्रबन्ध के अधिकार– स्त्री सम्पदा पर स्त्री के उपभोग के अधिकार कर्ता से भी अधिक है और यही बात उसके प्रबन्ध करने की शक्ति के सम्बन्ध में भी सही है। स्त्री एकाकी स्वामिनी है, जबकि कर्ता केवल सहदायिका का मुखिया है, सहदायिका के अन्य सदसय भी है और इस सदस्यों को भी अधिकार प्राप्त है।

हस्तान्तरण की शक्ति– सीमित संपत्ति की धारक होने के कारण महिला स्वामिनी के पास सीमित अधिकार होते हैं। कर्ता की तरह, उसकी शक्तियाँ सीमित होती हैं और वह केवल 5 अपवादात्मक मामलों में ही संपत्ति का हस्तांतरण कर सकती है। जिस सिद्धांत पर महिला की निपटान शक्ति पर प्रतिबंध लगाए गए हैं, उसे प्रिवी काउंसिल ने इस प्रकार समझाया– यह सभी पक्षों द्वारा स्वीकार किया जाता है कि यदि पति के संपार्श्विक उत्तराधिकारी हैं, तो विधवा अपनी इच्छा से, विशेष उद्देश्यों को छोड़कर संपत्ति का हस्तांतरण नहीं कर सकती है। धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए या जो उसके पति के आध्यात्मिक कल्याण में सहायक होने चाहिए, उसके पास विशुद्ध सांसारिक उद्देश्यों की तुलना में निपटान की अधिक शक्तियाँ हैं। दूसरी ओर, यह स्थापित माना जा सकता है कि उसके द्वारा किया गया हस्तांतरण, जो अन्यथा वैध नहीं होगा, उसके पति के रिश्तेदारों की सहमति से वैध हो सकता है। लेकिन यह निश्चित रूप से इस बाद के प्रस्ताव का आवश्यक या तार्किक परिणाम नहीं है। कि पति के संपार्श्विक उत्तराधिकारियों की अनुपस्थिति में या उनकी विफलता पर, विधवा की हस्तांतरण शक्ति पर बंधन पूरी तरह से समाप्त हो जाते हैं। उसके अलगाव की शक्ति पर प्रतिबंध संपत्ति की एक घटना है, न कि प्रत्यावर्तनकर्ताओं के लाभ के लिए4। वह प्रकल्पित प्रत्यावर्तनकर्ताओं की सहमति से संपत्ति का अलगाव कर सकती है। वह केवल असाधारण मामलों में ही संपत्ति का अलगाव कर सकती है।

प्रतिभा रानी बनाम सूरज कुमार 8 में , सुप्रीम कोर्ट ने देखा कि प्रतिभा रानी को उसके ससुराल वालों ने सताया था और स्त्रीधन देने से इनकार कर दिया था। प्रतिभा रानी के माता–पिता ने उसके पति के परिवार को सोने के गहने, 60,000 रुपये नकद और अन्य सामान देकर उसके ससुराल वालों की मांग पूरी की थी। शादी के कुछ दिनों बाद, उसके ससुराल वालों ने उसे दहेज के लिए परेशान करना शुरू कर दिया और 7 उसे अपने दो नाबालिग बच्चों के साथ घर से निकाल दिया, बिना उनके गुजारा करने के लिए कोई पैसा दिए। उसने अपने पति और ससुराल वालों के खिलाफ दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 125 के तहत दो शिकायतें दर्ज कराई थीं।

भाई शेर जंग सिंह बनाम श्रीमती वीरिंदर कौर 9 के मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने कहा कि अगर कोई महिला शादी के समय उसे दी गई संपत्ति, गहने, पैसे आदि पर दावा करती है, तो पति और उसके परिवार के सदस्य ऐसी संपत्ति वापस करने के लिए बाध्य हैं। अगर वे संपत्ति वापस करने से इनकार करते हैं, तो उन्हें कड़ी सजा का सामना करना पड़ेगा। न्यायालय ने माना कि भाई शेर जंग सिंह और उनके परिवार ने आपराधिक विश्वासघात करने के लिए धारा 406 के तहत अपराध किया है क्योंकि उन्होंने बेईमानी से उन गहनों का दुरुपयोग किया था जो वीरिंदर द्वारा अपने पति को सुरक्षित रखने के लिए दिए गए स्त्रीधन थे।

अभ्यर्पण–अभ्यर्पण का अर्थ है, स्त्री–सम्पदा का अभित्याग। स्त्री, स्त्री–सम्पदा का अभ्यर्पण के निकट के उत्तरभोगियों के पक्ष में कर सकती है। अभ्यर्पण द्वारा वह अपनी सम्पदा को अपनी मृत्यु के पूर्व ही समाप्त कर सकती है और उत्तरभोगियों में उस सम्पदा के स्वामित्व के अधिकारों का सृजन समय से पूर्व ही कर सकती है।

उत्तरभोगी– स्त्री–सम्पदा स्त्री की मृत्यु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों को नही प्राप्त है बल्कि उस व्यक्ति के उत्तराधिकारियों को प्राप्त होती है जिससे स्त्री से सम्पदा प्राप्त की है।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (धारा 14)– हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14(1) के मुताबिक, किसी हिंदू महिला की संपत्ति उसकी पूर्ण संपत्ति होती है. इसका मतलब है कि अधिनियम लागू होने से पहले या बाद में हासिल की गई संपत्ति पर महिला का पूर्ण स्वामित्व होता है, न कि सीमित स्वामित्व। हालांकि, धारा 14(1) में दी गई बातें दान के जरिए, वसीयत या किसी अन्य लिखत के तहत, सिविल कोर्ट के आदेश या डिक्री, या किसी पंचाट के तहत हासिल की गई संपत्ति पर लागू नहीं होतीं. ऐसा तब होता है, जब दान, वसीयत या अन्य लिखत या आदेश, डिक्री या पंचाट की शर्तों में ऐसी संपत्ति में प्रतिबंधित संपदा तय की गई हो।

भरण–पोषण के बदले प्राप्त संपत्ति– हिंदू कानून की सभी धाराओं के तहत, महिला को उसके भरण–पोषण के लिए एकमुश्त या समय–समय पर किए गए भुगतान, जिसमें ऐसे भरण–पोषण के बकाया भी शामिल हैं, स्त्रीधन का गठन करते हैं। इसके अतिरिक्त, भरण–पोषण के बदले पूर्ण उपहार के रूप में उसे हस्तांतरित सभी चल और अचल संपत्तियां अभी भी स्त्रीधन हैं।

चिन्नप्पा गोविंदा बनाम वल्लियाम्मल–1 में, ससुर ने अपनी विधवा बहू को उसके भरण–पोषण के लिए कुछ संपत्ति दी थी। 1960 में उनका निधन हो गया और उत्तराधिकार के तौर पर उनका हिस्सा बहू को मिल गया। बहू ने विरासत में अपना हिस्सा पाने के लिए बंटवारे का वाद दायर किया। परिवार के अन्य सदस्यों ने कहा कि उसे

अपना हिस्सा केवल इस शर्त पर लेने की अनुमति दी जाएगी कि वह भरण–पोषण विलेख के तहत उसे दी गई संपत्ति को मुकदमे की संपत्तियों में शामिल करेगी ।

अधिनियम लागू होने के पश्चात् स्त्री द्वारा सम्पति– हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14(2) के मुताबिक, धारा 14(1) में दी गई कोई बात दान, वसीयत, या किसी अन्य लिखत के तहत हासिल की गई संपत्ति पर लागू नहीं होगी. इसके अलावा, यह बात सिविल कोर्ट के आदेश या डिक्री, या किसी पंचाट के तहत हासिल की गई संपत्ति पर भी लागू नहीं होगी. यह तब लागू होगा, जब दान, वसीयत, या अन्य लिखत या आदेश, डिक्री, या पंचाट की शर्तों में ऐसी संपत्ति में प्रतिबंधित संपत्ति निर्धारित की गई हो।

<u>प्रश्न न0 9–</u>कामकाजी महिलाओं का यौन शोषण मानव गरिमा व आर्थिक समानता दोनों का उल्लंघन है। इस परिदृश्य में भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा दिये गये दिशा–निर्देश की विवेचना कीजिए।

<u>उत्तर</u>– विशाखा निर्णय भारत में कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को पहली बार भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने विशाखा एवं अन्य बनाम राजस्थान राज्य एवं अन्य , एआईआर 1997 एससी 3011 के अपने ऐतिहासिक फैसले में मान्यता दी थी। विशाखा और अन्य महिला समूहों ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 19 और 21 के तहत कामकाजी महिलाओं के मौलिक अधिकारों को लागू करने के लिए राजस्थान राज्य और भारत संघ के खिलाफ जनहित याचिका दायर की थी। यह याचिका राजस्थान में एक सामाजिक कार्यकर्ता भंवरी देवी के साथ बाल विवाह रोकने पर बेरहमी से सामूहिक बलात्कार के बाद दायर की गई थी। भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान के तहत और साथ ही महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव के उन्मूलन पर संयुक्त राष्ट्र कन्वेंशन (सीईडीएडब्ल्यू) के तहत समानता और सम्मान के अधिकार के आधार पर कानूनी रूप से बाध्यकारी दिशानिर्देश बना।

कार्यस्थलों या अन्य संस्थानों में नियोक्ता या अन्य जिम्मेदार व्यक्तियों का यह कर्तव्य होगा कि वे यौन उत्पीड़न के कृत्यों को रोकें या रोकें तथा सभी आवश्यक कदम उठाकर यौन उत्पीड़न के कृत्यों के समाधान, निपटारे या अभियोजन के लिए प्रक्रियाएं प्रदान करें।

यौन उत्पीड़न में इस प्रकार का अवांछित यौन व्यवहार (चाहे प्रत्यक्ष रूप से या निहितार्थ रूप में) शामिल है–

(क) शारीरिक संपर्क और प्रस्तावय

(ख) यौन अनुग्रह की मांग या अनुरोधय

(ग) यौन–रंग वाली टिप्पणीय

(घ) पोर्नोग्राफी दिखानाय

(ङ) यौन प्रकृति का कोई अन्य अवांछित शारीरिक, मौखिक या गैर–मौखिक आचरण।

सभी नियोक्ताओं या कार्यस्थल के प्रभारी व्यक्तियों को, चाहे वे सार्वजनिक या निजी क्षेत्र में हों, यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए उचित कदम उठाने चाहिए। इस दायित्व की व्यापकता के प्रति पूर्वाग्रह के बिना उन्हें निम्नलिखित कदम उठाने चाहिए–

(क) कार्यस्थल पर ऊपर परिभाषित यौन उत्पीड़न के स्पष्ट निषेध को उचित तरीकों से अधिसूचित, प्रकाशित और प्रसारित किया जाना चाहिए।

(ख) आचरण और अनुशासन से संबंधित सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र के निकायों के नियमोंधविनियमों में यौन उत्पीड़न को प्रतिबंधित करने वाले नियमधविनियम शामिल होने चाहिए और अपराधी के खिलाफ ऐसे नियमों में उचित दंड का प्रावधान होना चाहिए।

(ग) निजी नियोक्ता के संबंध में औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम, 1946 के तहत स्थायी आदेशों में उपरोक्त निषेधों को शामिल करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।

(घ) कार्य, अवकाश, स्वास्थ्य और स्वच्छता के संबंध में उचित कार्य स्थितियां प्रदान की जानी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि कार्यस्थलों पर महिलाओं के प्रति कोई शत्रुतापूर्ण वातावरण न हो और किसी भी महिला कर्मचारी के पास यह मानने के लिए उचित आधार न हों कि वह अपने रोजगार के संबंध में वंचित है।

जहां ऐसा आचरण भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य कानून के तहत किसी विशिष्ट अपराध के बराबर हो, नियोक्ता को उचित प्राधिकारी के पास शिकायत दर्ज करके कानून के अनुसार उचित कार्रवाई शुरू करनी चाहिए। विशेष रूप से, उसे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि यौन उत्पीड़न की शिकायतों से निपटने के दौरान पीड़ितों या गवाहों को पीड़ित या भेदभाव नहीं किया जाए। यौन उत्पीड़न के पीड़ितों के पास अपराधी के स्थानांतरण या अपने स्वयं के स्थानांतरण की मांग करने का विकल्प होना चाहिए।

जहां ऐसा आचरण प्रासंगिक सेवा नियमों द्वारा परिभाषित रोजगार में कदाचार के बराबर हो, वहां नियोक्ता द्वारा उन नियमों के अनुसार उचित अनुशासनात्मक कार्रवाई शुरू की जानी चाहिए।

चाहे ऐसा आचरण कानून के तहत अपराध हो या सेवा नियमों का उल्लंघन हो, नियोक्ता के संगठन में पीड़ित द्वारा की गई शिकायत के निवारण के लिए एक उचित शिकायत तंत्र बनाया जाना चाहिए। ऐसी शिकायत प्रणाली को शिकायतों का समयबद्ध निपटान सुनिश्चित करना चाहिए।

उपरोक्त (6) में उल्लिखित शिकायत तंत्र, जहाँ आवश्यक हो, शिकायत समिति, विशेष परामर्शदाता या गोपनीयता बनाए रखने सहित अन्य सहायता सेवा प्रदान करने के लिए पर्याप्त होना चाहिए। शिकायत समिति की अध्यक्षता एक महिला द्वारा की जानी चाहिए और इसके सदस्यों में से कम से कम आधे महिलाएँ होनी चाहिए। इसके अलावा,

वरिष्ठ स्तरों से किसी भी अनुचित दबाव या प्रभाव की संभावना को रोकने के लिए, ऐसी शिकायत समिति में किसी तीसरे पक्ष, या तो एनजीओ या अन्य निकाय को शामिल किया जाना चाहिए जो यौन उत्पीड़न के मुद्दे से परिचित हो। शिकायत समिति को शिकायतों और उनके द्वारा की गई कार्रवाई के बारे में संबंधित सरकारी विभाग को वार्षिक रिपोर्ट देनी चाहिए। नियोक्ता और प्रभारी व्यक्ति सरकारी विभाग को शिकायत समिति की रिपोर्ट सहित उपरोक्त दिशानिर्देशों के अनुपालन पर भी रिपोर्ट देंगे।

कर्मचारियों को श्रमिक बैठक तथा अन्य उपयुक्त मंचों पर यौन उत्पीड़न के मुद्दे उठाने की अनुमति दी जानी चाहिए तथा नियोक्ता–कर्मचारी बैठकों में इस पर सकारात्मक चर्चा की जानी चाहिए।

इस संबंध में महिला कर्मचारियों के अधिकारों के बारे में जागरूकता पैदा की जानी चाहिए, विशेष रूप से दिशानिर्देशों को प्रमुखता से अधिसूचित करके (और इस विषय पर अधिनियमित होने पर उपयुक्त कानून बनाकर) तथा उचित तरीके से।

जहां यौन उत्पीड़न किसी तीसरे पक्ष या बाहरी व्यक्ति के कृत्य या चूक के परिणामस्वरूप होता है, वहां नियोक्ता और प्रभारी व्यक्ति प्रभावित व्यक्ति को सहायता और निवारक कार्रवाई के संदर्भ में सहायता देने के लिए सभी आवश्यक और उचित कदम उठाएंगे।

कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न एक महिला के मौलिक अधिकारों का अपमान है, सुप्रीम कोर्ट ने सिविल अपील संख्या 1809/2020 में पंजाब और सिंध बैंक और अन्य बनाम दुर्गेश कुवर शीर्षक से टिप्पणी की , जबकि एक महिला बैंक कर्मचारी के स्थानांतरण को रद्द करने वाले उच्च न्यायालय के फैसले को बरकरार रखा। उसे इंदौर शाखा में फिर से तैनात करने का निर्देश देते हुए, न्यायमूर्ति धनंजय वाई चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति अजय रस्तोगी की खंडपीठ ने यह भी कहा कि वह 50,000 रुपये के जुर्माने की हकदार होगी।

रत के सर्वोच्च न्यायालय ने खेदत मजदूर चेतना संगठन बनाम मध्य प्रदेश राज्य और अन्य , 1994 ।प्ॅ 4026 में खुद से एक सवाल पूछा कि अगर सम्मान या गरिमा खत्म हो जाए तो जीवन में क्या बचता है?

यह भारत के संविधान के तहत गारंटीकृत जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार का महत्व है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21, जो भारतीय संविधान के भाग–प्प् के तहत गारंटीकृत मौलिक अधिकारों का समूह है, में यह प्रावधान है कि– कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही किसी व्यक्ति को उसके जीवन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित किया जाएगा, सिवाय इसके कि वह ऐसा करे।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 की उत्पत्ति 13वीं शताब्दी के प्रारंभ में मैग्ना कार्टा के 39वें अध्याय में हुई थी, जो अंग्रेजी स्वतंत्रता का चार्टर था। यह वही भूमिका निभाता है जो श्उचित प्रक्रिया खण्डश अमेरिकी संविधान और जापानी संविधान के तहत निभाता है।

सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत श्जीवन के अधिकारश की व्याख्या में कई अवसरों पर इस बात पर बल दिया है कि जीवन के अधिकार की तुलना मात्र पशुवत जीवन जीने से नहीं की जा सकती। ख फ्रांसिस कोरोली बनाम प्रशासक, केंद्र शासित प्रदेश दिल्ली , (1981)1 एससीसी 608य ओल्गा टेलिस बनाम बॉम्बे म्यूनिसिपल कॉर्पोरेशन , (1985) 3 एससीसी 545, जीवन के अधिकार में अनिवार्य रूप से मानव सम्मान के साथ जीने का अधिकार शामिल होगा और इसमें जीवन के वे पहलू शामिल होंगे जो जीवन को सार्थक, पूर्ण और जीने लायक बनाते हैं।

भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत लिंग भेदभाव को जीवन के अधिकार की पूर्ण प्राप्ति में एक बाधा के रूप में मान्यता दी गई है। सी. मसिलामणि मुदलियार बनाम श्री स्वामीनाथस्वामी थिरुकोइफ की मूर्ति , 1996 एआईआर 1697 में, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि समानता, व्यक्ति की गरिमा और विकास का अधिकार प्रत्येक मनुष्य में अंतर्निहित अधिकार हैं। अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार का सार्थक आनंद लेने के लिए, प्रत्येक महिला लिंग के आधार पर बाधाओं और भेदभाव को समाप्त करने की हकदार है। सुप्रीम कोर्ट ने दोहराया कि राज्य का दायित्व है कि वह लिंग आधारित भेदभाव को खत्म करे और महिलाओं के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों सहित आर्थिक विकास के अधिकार को साकार करने के लिए अनुकूल परिस्थितियां और सुविधाएं

तैयार करे, (1996) 1 एससीसी 490, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि महिलाओं को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार है। इसी तरह, उन्हें समान नागरिक के रूप में सम्मान और व्यवहार पाने का भी अधिकार है। सुप्रीम कोर्ट ने माना कि बलात्कार के अपराध महिलाओं को अपमानित करने और अपमानित करने के उद्देश्य से किए गए आक्रामक कृत्य थे। ऐसे अपराध बुनियादी मानवाधिकारों के खिलाफ अपराध थे और अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के मौलिक अधिकार का भी उल्लंघन करते हैं। न्यायाधीशों ने इस बात पर जोर दिया कि ... महिलाओं की गरिमा को छुआ या उसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, जीवन के अधिकार में महिलाओं को सम्मान के साथ जीने और शांतिपूर्ण जीवन जीने का अधिकार शामिल है।

<u>प्रश्न न0 10– निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए–</u>

<u>उत्तर–</u> (1) मातृत्व लाभ– मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 के तहत, महिलाओं को बच्चे के जन्म के दौरान और उसके बाद छुट्टी और वेतन मिलता है. यह अधिनियम महिलाओं की नौकरी को सुरक्षित रखता है और उन्हें अपने बच्चे की देखभाल के लिए समय देता है. इस अधिनियम के तहत, मान्यता प्राप्त संगठनों और कारखानों में काम करने वाली महिलाएं बच्चे को जन्म देने से पहले और बाद में छह महीने तक का मातृत्व अवकाश ले सकती हैं. इस अवकाश के दौरान, नियोक्ता को महिला कर्मचारी को उसका पूरा वेतन देना होता है।

इस अधिनियम के कुछ और प्रावधान ये हैं–

(1) अगर किसी महिला का गर्भावस्था के दौरान गर्भपात हो जाता है या वह गर्भपात करवा लेती है, तो उसे अधिकतम छह सप्ताह की सवेतन छुट्टी मिलेगी।

(2) अगर कोई महिला इस समय से पहले बच्चे को जन्म देती है, तो जन्म प्रमाण पत्र प्रस्तुत करने के 48 घंटे के भीतर वेतन का भुगतान किया जाएगा।

(3) जिन संस्थाओं में 50 या उससे ज्यादा कर्मचारी काम करते हैं, उन्हें एक तय दूरी के अंदर क्रेच (शिशु गृह) की सुविधाएं उपलब्ध करानी होंगी।

(4) अगर किसी महिला के दो या दो से ज्यादा बच्चे हैं, तो उसे 12 सप्ताह का मातृत्व अवकाश दिया जाएगा।

(5) अगर कोई महिला किसी बच्चे को गोद लेती है, तो उसे भी 12 सप्ताह का अवकाश दिया जाएगा।

(2) पारिवारिक न्यायालय– पारिवारिक न्यायालय, विवाह और पारिवारिक मामलों से जुड़े विवादों का त्वरित निपटारा करने के लिए स्थापित किए जाते हैं. पारिवारिक न्यायालय अधिनियम, 1984 के तहत इनकी स्थापना की गई थी. इस अधिनियम के मुताबिक, जिन शहरों या कस्बों की आबादी दस लाख से ज्यादा है, वहां एक पारिवारिक न्यायालय होना जरूरी है. बाकी इलाकों में, अगर राज्य सरकार चाहे, तो भी पारिवारिक न्यायालय बनाए जा सकते हैं। पारिवारिक न्यायालयों का अधिकार क्षेत्र कई तरह के मामलों में होता है, जैसे किरू तलाक, वैवाहिक अधिकारों की बहाली, संरक्षकता, भरण–पोषण, संपत्ति और वैवाहिक स्थिति से जुड़े विवाद। पारिवारिक न्यायालयों में कार्यवाही बंद कमरे में हो सकती है. इन न्यायालयों को समझौते पर पहुंचने में पक्षों की मदद करने की कोशिश करनी होती है. इसके लिए, वे चिकित्सा विशेषज्ञों, कल्याण एजेंसियों, और दूसरे पेशेवरों की मदद भी ले सकते हैं. अगर मामला सुलझ नहीं पाता, तो न्यायाधीश आमतौर पर अंतिम सुनवाई तय कर देते हैं।

(3) दहेज की माँग– दहेज की मांग को रोकने के लिए दहेज निषेध अधिनियम, 1961 लाया गया था. यह अधिनियम जम्मू और कश्मीर को छोड़कर पूरे भारत में लागू है. इस अधिनियम के तहत, दहेज लेने, देने या इसमें सहयोग करने पर 5 साल की जेल और 15,000 रुपये तक का जुर्माना हो सकता है. वहीं, दहेज की मांग करने पर 6 महीने से 2 साल तक की सजा हो सकती है। दहेज के लिए मारपीट करने या कीमती चीजों की मांग करने पर आईपीसी की धारा 498। के तहत भी सजा हो सकती है. इस धारा के तहत, पति या उसके रिश्तेदारों के ऐसे सभी बर्ताव को शामिल किया गया है जो किसी महिला को मानसिक या शारीरिक नुकसान पहुंचाएं या उसे आत्महत्या करने पर मजबूर करें. इस धारा के तहत, दोषी पाये जाने पर पति को अधिकतम तीन साल की सजा हो सकती है। इस अधिनियम की धारा 2 के मुताबिक, दहेज का मतलब है कोई संपत्ति या बहुमूल्य प्रतिभूति देना या देने के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से मांगना. इसमें उन व्यक्तियों के मामले में मेहर या महर शामिल नहीं है जिन पर मुस्लिम पर्सनल लॉ (शरीयत) लागू होता है. हालांकि, इस अधिनियम में वस्त्र, आभूषणों आदि के रूप में भेटों को जो विवाह में रूढ़िगत है, उन्हें 2,000 रुपये से ज्यादा कीमत के अधीन रहते हुए अपवर्जित किया गया है।